सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(AN ANALYTICAL STUDY OF THE NOVELS OF SURENDRA VERMA)

THESIS
SUBMITTED TO

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

संध्या एस

SANDYA S.

Prof. (DR.) A. ARAVINDAKSHAN
HEAD OF THE DEPARTMENT

Prof. (DR.) N. MOHANAN
SUPERVISING TEACHER

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI-682022

2005

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried of by **Ms. Sandya. S** under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science and Technology
Kochi – 682 022

DR.N.MOHANAN
(Professor)
Supervising Teacher

PLACE : Kochi
DATE 10 - 8 - 2005

DECLARATION

I here by declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidance of **Dr. N. Mohanan.** Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin – 68222, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any university.

DEPARTMENT OF HINDI
Cochin University of Science and Technology
Kochi- 682022

SANDYA S.

PLACE Kochi
DATE 10-8-2005

पुरोवाक्

समाज का अक्स ही साहित्य है। समय के अनुसार जिस प्रकार समाज में बदलाव आता है, उसी प्रकार रचना भी परिवर्तित होती है। एक सफल चित्रकार जिस प्रकार किसी दृश्य का यथार्थ चित्रण करता है, उसी प्रकार रचनाकार अपनी रचनाओं में समाज को दर्शाता है। अपने समाज के प्रति रचनाकार का सरोकार इन रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार युग का सत्य रचना से प्राप्त होता है। साहित्य में हर युग की अपनी महत्ता होती है। किसी न किसी प्रकार युगों के बीच संबन्ध बना रहता है। इसलिए बीते हुए कल की ज़रूरत होती है। आज अनिवार्य बन जाता है और आनेवाले कल का इंतज़ार बना रहते हैं। इसलिए हर युग की रचनाओं का विश्लेषण अपने आप में महत्वपूर्ण होता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य जगत में कई निराली प्रवृत्तियाँ जन्मी हैं। जनता के मोहभंग ने जीवन संबन्धी सभी मान्यताओं के सामने सन्देह प्रकट करने के लिए विवश कर दिया। साहित्य में भी जीवन का अर्थ खोजने का कार्य संपन्न हुआ। ऐसी परिस्थिति में सुरेन्द्र वर्मा ने साहित्य जगत में पदार्पण किया था और उस समय उन्होंने जीवन संबन्धी अपने नयी मानसिकता को रचना का विषय बनाया। पचास के बाद के जीवन का रास्ता सीधा नहीं था। अंतर्विरोधों एवं प्रतिकूलताओं का रास्ता था। उस रास्ते से आगे बढकर नए जीवन सत्य को संप्रेषित करने का सराहनीय कार्य उन्होंने किया। यद्यपि वे मुख्यत: नाटककार थे तथापि अच्छे उपन्यासकार भी थे। नाटककार के रूप में उनकी चर्चा एवं मूल्यांकन काफी हो चुके हैं। पर उनका उपन्यासकार रूप अनछुआ रह गया। उस पहलू पर प्रकाश डालना और उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सही मूल्यांकन प्रस्तुत करना ही मेरा लक्ष्य है। अत: मैंने अपने शोध-प्रबन्ध का

विषय रखा है ''सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास एक विश्लेषणात्मक अध्ययन''। अध्ययन की सुविधा को लक्ष्य करके प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

पहला अध्याय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास और सुरेन्द्र वर्मा'। इसमें समकालीनता के तात्विक विश्लेषण के साथ उसकी प्रवृत्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है। वर्मा जी के रचनाकार व्यक्तित्व को भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। दूसरा अध्याय है 'सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवादी संस्कार'। इसमें उपनिवेशवादी संस्कार का विकास और नव-उपनिवेशवादी संस्कार में उनके परिणाम को दिखाते हुए उपन्यासों में उसके प्रभाव पर चर्चा की गयी है। तीसरा अध्याय है 'सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी चेतना'। इसमें नारी जीवन की विडम्बना तथा अपनी अस्मिता के लिए लडनेवाली नारी के जीवन यथार्थ को उपन्यासों के तहत ढूँढ निकालने का प्रयत्न किया गया है। चौथा अध्याय है 'सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगर'। इसमें महानगरीय संस्कार तथा उसके खोखलेपन को सुरेन्द्र वर्मा ने उपन्यासों में किस प्रकार अभिव्यक्ति दी है उसको विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। पाँचवाँ अध्याय है 'सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का संरचनापक्ष'। इसमें संरचना विषयक खूबियों एवं खामियों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। अंत में 'उपसंहार' है। इसमें सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों पर केन्द्रित अध्ययन का निष्कर्ष है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्चिन के प्रोफेसर डॉ. एन. मोहनन जी के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है। समय समय पर उन्होंने जो प्रेरणा मुझे दी है उसके कारण ही मैं आज इस मंजिल तक पहूँच सकी हूँ। इसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद स्वरूप जो भी कहूँ वह अपर्याप्त ही रहेगा। उन्होंने मुझे जो बहुमूल्य सलाह एवं

सुझाव दिए हैं उनसे ही यह कार्य निर्विघ्न संपन्न हो सका है। मैं उनके मंगलमय जीवन की कामना करती हूँ। मेरी यह प्रार्थना है कि आगे भी मेरे जीवन के हर कदम पर उनके आशीष बना रहें। मैं हमेशा उनका आभारी हूँ।

विभागाध्यक्ष प्रोफेसर डॉ. अरविन्दाक्षन जी के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। वे इस शोधकार्य की संपूर्ति के लिए निरंतर प्रोत्साहन देते रहे हैं।

मेरे इस शोध का विषय विशेषज्ञा प्रोफेसर डॉ. शमीम अलियार जी के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ कि उन्होंने अपने उदार एवं प्रतिभापूर्ण मार्गदर्शन से मेरे शोधकार्य को साध्य तक पहूँचाने में बहुत सहायता दी है।

मेरे अन्य सभी गुरुजनों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनके आशीर्वाद एवं प्रेरणा से मैं आज इसके काबिल बनी हूँ।

हिन्दी विभाग के कार्यालय और पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

इस संदर्भ में डॉ. वसन्ती जी के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने स्नेहपूर्ण व्यवहार से अनेक अवसरों पर उचित परामर्श देकर इस कार्य को साध्य बनाया है।

मेरी हर छोटी-मोटी जरूरतों के लिए बिना किसी हिचक के सदा उपस्थित मेरे मित्र जयलक्ष्मी, शुभा, सुबिता, अर्चना, सीमा, अनुपमा, लिना और हर्मन को भी मैं अपना धन्यवाद देती हूँ।

मेरे शोधकाल के हर क्षणों में चाहे वह खुशी का हो या दु:ख का, मुझे सांत्वना एवं प्रेरणा देते रहनेवाली मेरी प्रिय मित्रा हिमा को भी मैं अपना धन्यवाद प्रकट करती हूँ।

मेरे जीवन के हर कदम पर मेरा साथ देकर मुझे प्रेरणा देनेवाले मेरे पति श्री.प्रमोद के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ।

अपने उन समस्त आत्मीय जनों एवं शुभचिन्तकों को भी मैं धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से मुझे सहायता पहूँचायी है।

यह शोध-प्रबन्ध मेरे पूज्य माताजी और पिताजी को समर्पित है जिन्होंने मुझे इसके काबिल बनाया।

मैं यह शोध-प्रबन्ध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। इसकी गलतियों एवं खामियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

सविनय,

हिन्दी विभाग,
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोच्चिन 22
तारीख 10 अगस्त 2005

विषय-सूची

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय 1 59

समकालीन हिन्दी उपन्यास और सुरेन्द्र वर्मा

समकालीनता तात्विक विश्लेषण आधुनिकता और समकालीनता समकालीनता और साहित्य नारी चेतना दलित आन्दोलन स्वत्वबोध फासीवादी ताकतों की पहचान नव-उपनिवेशवादी संस्कृति की पहचान समकालीन उपन्यासकार और उपन्यास सुरेन्द्रवर्मा-रचना व्यक्तित्व रंगकर्मी सुरेन्द्रवर्मा नाटक तीन नाटक (1972) सेतुबंध नायक खलनायक विदूषक द्रौपदी सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (1975) आठवाँ सर्ग (1976) छोटे सैयद बडे सैयद (1981) शकुन्तला की अंगूठी (1990) कैद-ए-हयात (1993) एकांकीकार शनिवार के दो बजे वे नाक से बोलते है हरी घास भर घंटों भर मरणोपरांत नींद क्यों रात भर नहीं आती हिंडोल इंगुर कहानीकार कितना सुन्दर जोडा चैस्टर लेडी किलर मेहमान काउण्टर निगरानी कितना सुन्दर जोडा कॉमिक अक्स घर से घर तक प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ एक हफ्ता सहारा डबल बेड सलाहकार पुष्पशय्या प्यार की बातें व्यंग्यकार उपन्यासकार अंधेरे से परे (1980) मुझे चाँद चाहिए (1993) दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता (1998)

दूसरा अध्याय 60 101

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवादी संस्कार

नव-उपनिवेशवाद और सामाजिक गतिविधि सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवाद का प्रभाव नव-उपनिवेशवादी परिवार और बच्चे नव-उपनिवेशवादी माहौल और ड्रग्स नव-उपनिवेशवाद और बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध नव-उपनिवेशवाद और व्यक्ति नव-उपनिवेशवाद और मीडिया - नव-उपनिवेशवाद और बीमारी नव-उपनिवेशवाद और वेश-भूषा

पृष्ठ-संख्या

तीसरा अध्याय 102 143

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी

हिन्दी उपन्यास में नारी सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी अंधेरे से परे मुझे चाँद चाहिए दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता शिक्षित नारी और रूढ समाज स्वत्वबोध प्राप्त नारी और परिवार विद्रोही नारी और समाज कामकाजी नारी, स्वतंत्र नारी, शोषित नारी

चौथा अध्याय 144 203

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगर

महानगरीय संस्कार भ्रष्टाचारिता शोषण सांस्कृतिक विघटन व्यक्ति का यथार्थ मृत्यु का एहसास परिवार का बदलता स्वरूप स्त्री-पुरुष संबन्धों के बदलते आयाम

पाँचवाँ अध्याय 204 251

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का संरचना पक्ष

संवेदना और संरचना उपन्यास में शिल्प वस्तु विन्यास पात्र चित्रण शैली एकालाप शैली पूर्वदीप्ति शैली/फ्लैशबैक शैली प्रतीकात्मक शैली स्मृति चित्रों का प्रयोग भाषा संकेतात्मक भाषा चित्रात्मकता शब्दात्मकता

उपसंहार 252 253

संदर्भ ग्रन्थ सूची 254 264

पहला अध्याय

समकालीन हिन्दी उपन्यास और सुरेन्द्र वर्मा

समकालीन हिन्दी उपन्यास और सुरेन्द्र वर्मा

समकालीनता वास्तव में आधुनिकता का ही विस्तार है। आधुनिकता में हम दो प्रकार के दृष्टिकोण देख सकते हैं। एक अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित आधुनिकता, दूसरा सामाजिक यथार्थ की पहचान से उद्भूत आधुनिकता जिसका सीधा संबन्ध प्रगतिशील साहित्य से है।

अस्तित्ववादी दर्शन के तहत विकसित आधुनिकता का साहित्य अज्ञेय, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, उषाप्रियंवदा, कृष्णा सोबती जैसी प्रतिभाओं की देन है। सामाजिक यथार्थ की पहचान से विकसित आधुनिकता के क्षेत्र में कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, नरेश मेहता, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, धर्मवीर भारती आदि सक्रिय रहे हैं। पहला दृष्टिकोण लगभग पन्द्रह-बीस साल तक जारी रहा, फिर फीका पड गया। दूसरा दृष्टिकोण अब भी सक्रिय है। उस दृष्टिकोण ने ही विकसित होकर समकालीनता का रूप ले लिया है। इसलिए आज के समकालीन साहित्य की एक लंबी परंपरा है. जो दरअसल भारतेन्दु से शुरू होती है।

समकालीन होने का मतलब है अपने समय के साथ सार्थक सरोकार। समसामयिक मानव जीवन के अंतरंग यथार्थ को पहचानना तथा उसके मानवोचित जीवन जीने के संघर्ष में सक्रिय सहयोग देना समकालीनता का अर्थ बनता है।

काल और परिवेश के अनुसार साहित्य भी परिवर्तित, परिवर्द्धित एवं परिमार्जित होता रहता है। अत: समय-समय पर विभिन्न आन्दोलन होते रहे हैं। स्वाधीनता परवर्ती हिन्दी साहित्य में ऐसे बहुत सारे आन्दोलन हुए हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले के समाज को बहुत कुछ भोगना पडा था। सब कहीं शोषण ही शोषण हो रहा था। तत्कालीन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के ज़रिए उसका प्रस्तुतीकरण तो किया किन्तु उसका खुलासा अंशत: ही हो पाया था। ज़माने के आगे बढने के साथ ही लेखक ज्यादा सजग हो गए और अपने समय के यथार्थ को पूरी बारीकियों के साथ संप्रेषित करने में काबिल हो उठे। वे उपन्यास, कहानी आदि के माध्यम से समकालीन जीवन की विद्रूपताओं को दर्शाने लगे। इस प्रयास में प्रेमचन्द की भूमिका महत्वपूर्ण है। भारत के शोषितों की कथा कहनेवाला उनका उपन्यास 'गोदान' हर काल में हर देश में प्रासंगिक बन गया। यहाँ से अभिव्यक्ति की एक नई शैली का विकास हुआ। बाद के लेखकों ने इस नए रास्ते को आगे बढाने का कार्य किया।

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ लेकिन यह स्वतंत्रता सच्चे अर्थों में स्वतंत्रता नहीं थी। फर्क सिर्फ इतना हुआ कि स्वतंत्रता के पहले शासक अंग्रेज़ी थे, स्वाधीनता के बाद स्वदेशी। इससे बढकर यहाँ कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ। समाज के आदर्श खंडित हो चुके थे। नयी पीढी नये आदर्शों की तलाश में थी। क्योंकि पुराने आदर्श झूठे साबित हो चुके थे। यह भारतीय इतिहास का ही एक संक्रमण का समय था। व्यक्ति अपनी अस्मिता की तलाश में लगा हुआ था। इस तलाश के फलस्वरूप जीवन को लेकर एक नयी चेतना का आविर्भाव हुआ। जीवन की निरर्थकता, विसंगति एवं त्रासदी की पहचान उस समय के साहित्य के मूल में सक्रिय होने लगी। लगभग बीस

साल तक यह प्रवृत्ति जारी रही। इस समय का साहित्य आधुनिक भावबोध का साहित्य था याने कि अस्तित्ववादी दर्शन के तहत विकसित आधुनिकता। लेकिन आधुनिकता का एक दूसरा पक्ष भी है जो जीवन के नए यथार्थ की गहरी पहचान रखनेवाला है। इसने सामाजिक यथार्थ को नए सिरे से पहचानने और संप्रेषित करने का कार्य किया। इसका क्रम यद्यपि भारतेन्दु से शुरू हो चुका था तथापि इसका सीधा संबन्ध वामपंथी दृष्टिकोण से है, प्रगतिवादी आन्दोलन से तथा उसकी समाजवादी, मानवतावादी मानसिकता से है।

यहाँ रचनाकार आम आदमी के पक्ष में खडे होकर उसके लिए संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं। वह अपनी रचना के जरिए प्रतिरोध करता है। आदमी को आदमी के जैसे जीने के अधिकार के लिए संघर्ष करते हैं। यह धारा प्रगतिशील साहित्य की धारा है जो अस्तित्ववादी आधुनिकता की प्रभुता के सन्दर्भ में भी प्रवहित होती रही है और उसका विस्तार एवं विकास समकालीन सन्दर्भ में पाये जाते हैं। इसलिए सन् साठ के बाद के लेखकों में एक अलग प्रकार की मानसिकता उभरकर आई है, वह है विद्रोह की मानसिकता। आधुनिकता में तथ्यों का विश्लेषण है पर दिशा निर्देश नहीं। एक अनिश्चितता छाई हुई है। सातवें दशक के रचनाकार यथार्थ की प्रस्तुति मात्र से दूर नहीं थे। वे अन्वेषी थे। उन्होंने सही मार्ग का अन्वेषण शुरू किया। उन्हें पता चला कि विद्रोह ही एक मात्र उपाय है। अत: उन्होंने विद्रोह के जरिए वर्तमान अतंगति में बदलने का प्रयत्न किया। यह विद्रोह संपूर्ण मानवीयता के लिए था। इसके मू आधुनिक मानव के वर्तमान एवं भविष्य की चिंता अधिक है। उनकी दृष्टि संकुचित थी। उन्होंने अपनी विशाल मानसिकता के तहत मानव राशी की भलाई के लि के रास्ते को अपना लिया था। आधुनिकता के कुछ अंशों को स्वीकार कर

नए को जोडकर उन्होंने एक नई मानसिकता को रूपायित किया वह है समकालीनता। याने कि अपने समय के साथ सीधा सरोकार।

समकालीनता तात्विक विश्लेषण

समकालीनता को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग इसका शाब्दिक अर्थ लेते है तो कुछ लोग आन्तरिक। 'वर्तमान पर टिकी दृष्टि' इसका शाब्दिक अर्थ मान सकते हैं। तत्कालीन समाज से जुडे हुए साहित्य को समकालीन समझनेवाले यह नहीं सोचते कि अतीत के बलबूते पर ही वर्तमान टिका हुआ है और उसीसे भविष्य का निर्वाह हो सकता है। यह तो जरूर है कि रचनाकर जिस परिस्थिति में जी रहा है उसका प्रतिफलन किसी न किसी प्रकार उनकी रचना में अवश्य दिखाई देता है। इसलिए तत्कालीन समय उसमें प्रतिबिंबित होता है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि समसामयिक साहित्य ही समकालीन साहित्य है।

अस्तित्ववादी आधुनिकता में अस्मिता को खोजने का प्रयत्न है। लेकिन इसके लिए कोई सक्रियता उसमें नहीं। सिर्फ अनिश्चितता है। सातवें दशक [illegible] रचना-में दिशाबोध है। उनमें अनिश्चितता नहीं। वे अपनी परिस्थिति से अवगत हैं। दुश्मनों को उन्होंने पहचान लिया है। उनके खिलाफ का रवैय्या भी सुनिश्चित है [illegible] यह पहचान ही दरअसल समकालीनता है। धर्म, जाति और वर्ग में बँटे [illegible] मनुष्य को मानवता की विशाल दृष्टि से देखने-समझने की एक नयी मानसिकता [illegible]। इस मानसिकता के पीछे समकालीनता बोध है। अस्तित्ववादी आधुनिकता [illegible]

अस्थिरता और अनास्था ने समकालीन साहित्य में आस्था, स्थिरता और विद्रोह का रूप अपना लिया। आपात्कालीन परिस्थिति, नक्सलबाडी आन्दोलन आदि भी समकालीन रचना दृष्टि के पोषक तत्व है।

विद्रोह से ही मनुष्य की स्वतंत्रता संभव हो सकती है। इसके लिए रूढ़ सामाजिक बन्धनों को तोडकर उसे प्रगति की तरफ बढ़ना है। मनुष्य की अवमानीय स्थिति के प्रति विद्रोह समकालीनता की सबसे बडी विशेषता है। इसलिए समकालीन साहित्य मनुष्य को उसके यथार्थ रूप में समझने, अन्वेषित करने और पहचानने का साहित्य है। अत: सन् साठ के बाद के साहित्य को जिस अर्थ में हम समकालीन कहते हैं उसी अर्थ में नहीं कुछ अन्य अर्थ में यह सार्वकालिकता के अर्थ में है। प्रेमचन्द का 'गोदान' भी समकालीन है। क्योकि उन्होंने इसमें ऐसी समस्याओं को अनावृत किया है, जो हर काल और हर देश में प्रासंगिक है। इसलिए सार्वकालिकता भी समकालीनता की पहचान है।

गोया कि समय के यथार्थ को उसकी संपूर्ण वास्तविकता के साथ उद्घाटित करने तथा उसके प्रति अपना विद्रोह प्रकट करनेवाला साहित्य ही समकालीन साहित्य है। "समकालीनता, एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता, अपनेकाल की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना है। समस्याओं और चुनौतियों में भी, केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं की समझ से समकालीनता उत्पन्न होता है।"[1] इसलिए समकालीनता को किसी समय के घेरे में समा नहीं सकते, वह गतिशील है और

---

1. डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय समकालीन सिद्धांत और साहित्य, पृ.16

हर काल में होती है। हर युग में समकालीन याने प्रासंगिक साहित्य ही समकालीन साहित्य के अन्तर्गत आता है। इस दृष्टि से समकालीन साहित्य उसे कह सकते है जो अपने समय का अतिरेक कर हर काल में प्रासंगिक बनता है।

आधुनिकता और समकालीनता

आधुनिकता को विगत और आगत के बीच की एक कडी के रूप में देख सकते हैं। इसलिए दिनकर जी के लिए, "वह एक प्रक्रिया का नाम है, यह प्रक्रिया अन्धविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहूँचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं बल्कि उसके कर्म से नापता है।"[2] आधुनिकता को बहुत प्रचार और महत्व मिला। क्योंकि इसने एक नये तरीके से ज़िन्दगी को देखने का प्रयास किया। तब तक का हिन्दी साहित्य सिर्फ अभिजात वर्ग की कहानी कहता था। आधुनिक युग में आकर इसके केन्द्र में मध्यवर्ग और निम्नवर्ग आ गया। जब उसमें लोगों की विभिन्न मानसिकताओं का चित्रण होने लगा तो आधुनिकता का प्रचार तीव्र हो गया, "आधुनिकता का बोध यथार्थ को आन्तरिक जीवन में परिवर्तित कर देना है, जिसकी प्रतिक्रिया सामाजिक, बाह्य जीवन व्यापारों में देखी जा सकती है। आधुनिकता का बोध अवश्य ही आधुनिक अनुभूति के क्षेत्र का बिन्दु होना चाहिए।"[3] साहित्य में नए प्रयोग जाने लगे। विषय के बदलने के साथ-साथ नयी शैली का प्रयोग किया जाने लगा। महानगर

---

2. रामधारी सिंह दिनकर आधुनिक बोध, पृ.36-37
3. डॉ. कान्ति वर्मा स्वातंत्र्य-पूर्व के हिन्दी- उपन्यास, पृ.116

से लेकर गाँव तक को साहित्य में स्थान मिलने लगा। इस प्रकार आधुनिकता तक नया उन्मेष लेकर साहित्य जगत में अवतरित हुई।

किसी भी प्रवृत्ति को काल-सीमा में बाँधना उचित नहीं है। फिर भी एक ही प्रवृत्ति से प्रभावित अनेक रचनाएँ एक कालखंड में होती है तो उसको पढ़न-पाठन की सुविधा के लिए एक नाम देकर एक समय सीमा के अन्दर बांध लेते हैं। आधुनिकता के पहले भी उस प्रकार की रचनाएँ साहित्य में होती थीं बहुत विरले में। किंतु उन प्रवृत्तियों को आगे ले जानेवाले साहित्यकार नहीं के बराबर थे। उस समय की आधुनिक भावबोधवाली रचना को आधुनिकता के अन्दर रखने के बारे में किसी ने सोचा भी नहीं। आधुनिकता को युग संदर्भ की देन न माननेवालों में प्रमुख हैं दूधनाथ सिंह। उनके अनुसार, "आधुनिकता युग-संदर्भ की भावना नहीं हैं यह कथन स्पष्ट संकेत करता है कि आधुनिक होने का मतलब आज का, इस दशक या इस शताब्दी का होना नहीं असल में आधुनिक होना समयहीन (टाइमलेस) होना है और भी सीधे कहें तो कह सकते हैं, आधुनिक होना शाश्वत होना है।"[4]

आधुनिकता की शुरुआत प्रेमचन्द से मानने में कोई अनुचितता नहीं क्योंकि उन्होंने ही मनुष्य जीवन की शाश्वत समस्या को नए ढंग से अनावृत करने का कार्य किया था। मनुष्य का दुश्मन मनुष्य ही है इस शाश्वत सत्य को विभिन्न प्रकार से उ अभिव्यक्ति दी है। यहीं से आधुनिकता प्रारंभ हुई। उन्होंने वर्ग शत्रु को पहचानकर उसका खोखला चेहरा समाज के सम्मुख रख दिया तो एक नया आन्दोलन जन्म लेने

---

4. डॉ. चन्द्रभान रावत एवं डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल समकालीन साहित्य समीक्षा अपनी शताब्दी के नाम, पृ.174

लगा। लेकिन प्रत्यक्ष विद्रोह की भावना उसमें नहीं थी। यही आधुनिकता की सबसे बडी कमी थी। पर विद्रोह की यह भावना परवर्ती साहित्यकारों में पल्लवित होने लगी। इसका प्रमुख कारण यह था, "आधुनिकता की अभिव्यक्ति प्राय: चिन्तन के धरातल पर अधिक और संवेदना के स्तर पर कम हुई है।"[5] आधुनिकता की यह कमी उस समय के लगभग सभी साहित्यकारों की रचनाओं में देख सकते हैं। बाद में आधुनिकता की यह धारा मन्द पड़ने लगी और उसकी जगह समकालीनता ने ले ली। इन रचनाओं को समकालीन कहने की अपेक्षा समसामयिक कहना काफी उचित होगा। समसामयिकता से समकालीन तक जाने के लिए एक लंबे सफर की जरूरत है। तत्कालीन जनजीवन का प्रतिफलन समसामयिक साहित्य में होता है। लोगों की त्रासद दशा पर रचनाकार विद्रोह भी करने लगे। परंपरा के प्रति, समाज के प्रति, वर्तमान व्यवस्था के प्रति संघर्ष का अंकन साहित्य में होने लगा। मध्यवर्गीय जिन्दगी हमारे समाज का प्रमुख हिस्सा है। उन्हीं से सारी बातें शुरू होती है। उनके दबावों को, सीमाओं को कथा साहित्य ने उसके अन्तर्गत शामिल किया। उनका सच्चा, सीधा साक्षात्कार इसलिए साध्य हुआ कि अधिकांश रचनाकार मध्यवर्ग से आये हुए थे। भोगे हुए यथार्थ के चित्रण में उतनी रोचकता थी।

फिर भी समसामयिक से ज्यादा प्रचलित शब्द होने के कारण हम समसामयिक साहित्य को समकालीन साहित्य कहते हैं। अधिकतर विद्वज्जनों द्वारा समकालीन शब्द का प्रयोग करने के कारण सुविधा के लिए हम भी समकालीन शब्द का प्रयोग करेंगे। आधुनिकता की प्रवृत्ति में हम संत्रास, कुंठा, निराशा, अकेलापन, अजनबीपन

---

5. इन्द्रनाथ मदान समकालीन साहित्य एक नई दृष्टि, पृ.63

देखते हैं। रचना की यह प्रवृत्ति जनता में भी फैल जाती है। वे निराशाग्रस्त हो जाते हैं। अपने को आस्थाहीन पाते हैं। पर समकालीन रचनाकार जनता में व्याप्त इन नकारात्मक वृत्तियों को दूर करके उन्हें सक्रिय बनाने का कार्य करते हैं। यह कार्य सक्रिय विद्रोह में परिणत हो गया है। आधुनिकता का व्यक्ति-मानस समकालीनता में समाज-मन के रूप में परिणत हो गया। व्यक्ति से ज़्यादा समाज की चिंता उसमें देख सकते हैं। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' जैसे उपन्यास व्यक्तिवादी होने के बावजूद समकालीन इसलिए माने जाते हैं, क्योंकि उसमें कहीं न कहीं व्यक्ति समाज से जुड़ता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'गोदान' सिर्फ एक होरी की कथा नहीं है उत्तर भारत के तमाम कृषक वर्ग की कहानी है। काल में अंतर होने पर भी वह वर्षों बाद आज भी प्रासंगिक है और इसलिए समकालीन भी।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में नारी चेतना और दलित चेतना को प्रमुखता मिली है। ये दोनों आन्दोलन स्वत्वबोध से उत्पन्न हैं। यह स्वत्वबोध भी आधुनिकता की देन है। पर इसमें वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता को प्रमुखता मिली है। इस प्रकार नई प्रवृत्तियों को लेकर समाज को जागृत करने में समकालीन साहित्य काफी सक्षम निकला है।

इस प्रकार हम कोई स्पष्ट लकीर नहीं खींच सकते कि कौन सी रचना समसामयिक है या समकालीन है। समकालीनता कालातीत होने के कारण आधुनिकता के दौर की रचनाएँ भी समकालीनता में आ सकती हैं और समसामयिक रचना यह एक सर्वसमावेशी शब्द है। इस प्रकार देखा जाए तो कबीर को भी हम समकालीन

कह सकते हैं। उनके दोहे आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' को समकालीन उपन्यास की शुरूआती कडी के रूप में ले सकते हैं। 1950 के पहले रचने पर भी वह इसलिए प्रासंगिक है कि उसने काल का अतिक्रमण किया है। इस प्रकार समकालीनता कोई प्रवृत्ति नहीं बल्कि वह एक विशेष साहित्यिक कसौटी है।

समकालीनता और साहित्य

जबसे सामाजिक जीवन की अवधारणा की गई तब से साहित्य का भी उससे अटूट सम्बन्ध रहा है। साहित्य सृजन के लिए ठोस आधार समाज ही है। अत: साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। साहित्य समाज का पुनर्निमाण करता है। इसलिए समाज का हर परिवर्तन साहित्य में झलकता है। सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं कि साहित्यकार समाज की पुन: रचना को लक्ष्य करते हुए सृजनारत हो उठता है। इसलिए प्रत्येक काल में प्रत्येक प्रवृत्तियाँ साहित्य में उभर आती हैं और साहित्य एक धारा बनकर निरन्तर प्रवाहमान रहता है। सच्चा साहित्य हमारा परिष्कार करता है, हमें सोचने के लिए विवश करता है। जीवन को नए सिरे से मूल्यांकित करने के लिए हमें सक्षम बनाता है। "कथा साहित्य में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ घटनाओं और स्थितियों के ब्यौरों से नहीं उनके दबावों में बदलते हुए मानसिक और आपसी संबन्धों है, चीज़ों और लोगों के प्रति हमारे बदलते हुए सहज रवैये से है। वहीं रचना व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर प्रामाणिक हो पाती है। इसलिए कोई भी अच्छा उपन्यास तभी सार्थक या समय के साथ है जब वह हमें अपने आपसी संबन्धों सिरे से सोचने को बाध्य करे, या स्वीकृत संबन्धों के अनदेखे आयाम खोले।"[6]

---

6. राजेन्द्र यादव उपन्यास स्वरूप और संवेदना, पृ.14

आधुनिक जीवन की भागदौड में व्यक्ति अनास्था, संत्रास, कुंठा, पारिवारिक विघटन आदि विसंगतियों को झेलने के लिए बाध्य हो गया है। इस परिस्थिति में कुछ रचनाकारों ने व्यक्ति की इस मानसिकता को रचना का विषय बनाया। कुछों ने इससे अलग रहकर ग्रामीण जीवन यथार्थ को प्रस्तुत किया। इस प्रकार फणीश्वरनाथ रेणु जैसे लेखकों की एक ऐसी पीढी भी उभर आयी जिन्होंने अंचल विशेष को नायक बनाकर आधुनिक हिन्दी उपन्यास जगत् में उपन्यास रचना का एक नया आयाम खोल दिया। लगभग बीस साल तक यह क्रम चलता रहा। फिर इसका रूप भी बदल गया। अब साहित्य जगत में पर्यावरण को लेकर जो आन्दोलन चल रहा है इसके पीछे आँचलिकता और प्रांतीय अस्मिता का सवाल ही सक्रिय रहता है। यह भी समकालीनता की ओर का प्रवाह ही था। इस प्रकार रचना और आलोचना के क्षेत्र में इस नये दृष्टिकोण ने कारगर परिवर्तन उपस्थित किया।

इस प्रकार देखें तो पता चलता है कि समकालीनता एक पहचान है। एक ऐसी पहचान जिसके तहत सचेत बुद्धिजीवि साहित्यकार आम आदमी को लेकर चिंतित हो उठते हैं। उन्होंने पहचाना कि समकालीन सन्दर्भ में आम आदमी का जीवन बिलकुल खतरे में है। वह खतरा भी सुस्पष्ट या स्थूल नहीं बल्कि सूक्ष्म है। उन सूक्ष्म शोषक तत्वों को पहचानने की क्षमता और उनके खिलाफ बौखला उठने की ताकत वास्तव में रचनाकार की अस्मिता की पहचान का परिणाम है। इसलिए वे अपनी रचना के जरिए जागृत नारी को, अपने हक के लिए लडनेवाली नारी को दिखाते हैं। वैसे ही [illegible] को प्रस्तुत करते हुए उनके जीवन के नए-नए यथार्थों को सुसंस्कृत समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए समकालीन सन्दर्भ में मनुष्य की अमानवीय स्थिति से अवगत कराते हैं।

और एक ज्वलंत समस्या फासीवादी ताकतों के पुन: प्रवेश की है। वे ताकतें बिलकुल सूक्ष्म हैं। वे आधुनिक मनुष्य को चारों तरफ से घेर कर उसका शोषण कर रही हैं। इन शक्तियों को पहचानकर समकालीन साहित्य ने अपनी उपस्थिति जाहिर की है। उपनिवेशवादी शक्तियाँ भी रूप बदलकर आज भी हमारे जीवन क्रम में वर्तमान है। इसलिए हम धीरे-धीरे अपनेपन से अलग होते जा रहे हैं। इसकी चेतावनी भी समकालीन रचनाकार दे रहे हैं। इस प्रकार समकालीन साहित्य बहुस्वरता का साहित्य है। वह अपने समय की बहुस्वरताओं से हमें परिचय कराता ही नहीं हमें अपने को पहचानने की क्षमता भी प्रदान करता है।

नारी चेतना

नारी को पूज्य वस्तु से भोग्य वस्तु बनने में और बनाने में अधिक समय नहीं लगा। शिक्षा का अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्व और समाज के विरोध के कारण स्त्री का व्यक्तित्व एक सीमित दायरे में बंद था। बदलते युग के अनुसार नारी की हालत भी बदल गयी। शिक्षा प्राप्त करने के कारण उसमें परिवर्तन आ गया। वह जागृत हो उठी अपने प्रति जो अत्याचार हो रहा था उसको पहचानकर उसके विरुद्ध आवाज [illegible] लगी। वहाँ से नारी चेतना की शुरुआत हुई। उसको बाज़ारी चीज़ से [illegible] की कोशिश में जो वाद उभर आया उसको नारीवाद या 'फेमिनिस्म' [illegible] गया।

बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में व्यक्ति स्वातंत्र्य और समानता की भावना और ज़ोर पकडने लगी। साहित्य के क्षेत्र में नारी लेखिकाओं का प्रवेश विपुल मात्रा में होने लगा। साहित्य में नारी का रूप बदलने लगा। स्वतंत्र भारत के संविधान के अनुसार स्त्री को पुरुष के बराबर स्थान है। लेकिन भारतीय महिला के भीतर ही भीतर उसकी परंपरा और संस्कृति का महान पक्ष विद्यमान है। इसलिए वह एक तरह के समझौते का जीवन जी रही थी। सचमुच इस समझौते ने उसकी ज़िन्दगी को बर्बाद कर डाला था। अपनी दयनीय स्थिति से विवश होकर जब उसने समाज में अपनी हैसियत के बारे में सोचा तो वह पूर्वाधिक शक्ति के साथ जागृत हो उठी। नगर से लेकर गाँव तक की स्त्रियों में जागरण का यह रूप देख सकते हैं। इस नवजागरण को लेकर कुछ नई लेखिकाएँ तथा कुछ नये लेखक भी आये, जिन्होंने नारी पर लिखने की आवश्यकता महसूस की। इस प्रकार लेखक और लेखिकाओं ने नारी के लिए नारी के बारे में लिखने का कार्य शुरू किया।

अपनी शक्ति के बारे में, स्वातंत्र्य के बारे में, हक के बारे में जानकर, पहचानकर जब नारी जाग उठी तो हमारे पुरुषवर्चस्ववादी समाज ने उसको अहंवादी घोषित करके उसे पुन: दबाकर रखने की कोशिश शुरू की। दरअसल नारी को अपने इस अहं ने ही ज़मीन से आसमान तक पहूँचाया था। आधुनिकता के अंत में तथा समकालीनता के प्रारंभ से ही नारी अपना विद्रोही स्वरूप दिखाने लगी थी। सत्ता के प्रति, सांप्रदायिकता के प्रति विद्रोह करने के साथ-साथ वह अपने ऊपर के बंधनों को तोडने का प्रयास करने लगी। नारी की यह कामयाबी पुरुषमेधा समाज बर्दाश्त नहीं कर सका। [illegible] पीछे हटने के बजाय आगे बढती रही। शने: शने: उसका पराश्रित रूप स्व[illegible] परिणत हो गया।

नारी शक्ति है, साथी है, माँ है, बहन है, प्रेमिका है, पत्नी है। उसके ये विभिन्न रूप नारी की शक्ति को ही प्रमाणित करता है। नारी को अबला बताकर चार दीवारी में बन्द करने से उसके मन की आग बुझेगी नहीं बल्कि वह फफककर जल उठेगी, "प्रेम विश्वास के अतिरिक्त दूसरे किसी बन्धन के पक्ष में नहीं है। विश्वास स्वतंत्रता को कम नहीं करता। धीरे-धीरे स्वतंत्रता में सहृदयता उपजाने का काम करता है। स्वतंत्रता उतनी ही सहृदय हो जाये, तो उससे बडी शक्ति नहीं। आत्मानुशासन उसका अस्त्र है। इसलिए यह शक्ति समाज मर्यादा को भंग नहीं, दृढ़ ही करती है या कहो वह मर्यादा की सृष्टि करती हो।"[7] इसलिए नारी को स्वतंत्र करने तथा समान मानने में कोई आपत्ति नहीं। उसको स्वतंत्र करने पर वह और अधिक मर्यादित हो जाएगी।

नारी विद्रोह एक दिन की सृष्टि नहीं है। युग-युगों से पीडित नारी मानसिकता की सहज परिणति है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की पत्नी सीताजी को भी पति द्वारा तिरस्कृत होकर पृथ्वी में समा जाना पडा। यह पुराण काल से होकर नारी के साथ किए जानेवाले अत्याचार का प्रमाण है। और अन्य अनेक पात्रों से अत्याचारों का सिलसिला प्रमाणित कर सकते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी विद्रोह का [illegible] आधुनिक परिवेश की देन है। शुरू में विद्रोह नहीं था सिर्फ घुटन, दु:ख, विवशता आदि थे। उषाप्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा, कृष्णा [illegible] 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ति, अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की रेखा आदि में विद्रोह [illegible] है, लेकिन वह वैयक्तिक विद्रोह है। समकालीन सन्दर्भ में यह विद्रोह वर्गगत [illegible] जाता है जिसका सन्दर्भ व्यापक है। सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' [illegible]

---

7 जैनेन्द्र कुमार काम, प्रेम और परिवार, पृ 25

चित्रा मुद्गल के 'आवां' की नमिता आदि अपने प्रति होनेवाले अत्याचार का खुलकर विरोध करते हुए सचमुच नारी वर्ग की मुक्ति की कामना करती है। इनके दृष्टिकोण में व्यापकता है जो आधुनिकता के दौर के नारी विद्रोह में नहीं था।

नारी जागरंण ने नारी साहित्य को जन्म दिया। महादेवी वर्मा से लेकर इसका विकासमान रूप द्रष्टव्य है। महादेवी ने नारी शोषण के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है। उसमें विद्रोह की मानसिकता नहीं। पर मन्नुभण्डारी, उषाप्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, मेहरुन्नीसा परवेज जैसी लेखिकाएँ जब अपने कर्म क्षेत्र में सक्रिय होने लगीं तो नारी साहित्य या नारी लेखन साहित्य जगत में अपनी जडें जमाने लगा। समकालीन परिवेश और समाज में नारी को जो अत्याचार झेलने पडे, उसके विरुद्ध इन लोगों ने अपनी आवाज़ उठायी। नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं की भीषणता को अनावृत करने में ये लेखिकाएँ सफल निकली हैं। नारी के बिना समाज का अस्तित्व नहीं है। पुरुष प्रधान समाज में नारी का अपना स्थान है। उसके बिना कोई कार्य संभव नहीं है। स्त्री की इस अनिवार्य भूमिका पर जोर देने में नारी लेखन का बडा योगदान है। इसलिए आधुनिक उपन्यास में नारी को प्रधानता मिलने लगी। उनके प्रति जो अत्याचार हो रहा था उसको दिखाने का सफल किया गया। वह सक्रिय विद्रोही बनकर कथा साहित्य में अवतरित हुई। समकालीन उपन्यास में उसका यही तेवर दिखाई देता है। यह समकालीन मानसिकता का परिणाम है।

दलित आन्दोलन

नारी लेखन के समान ही हिन्दी साहित्य में प्रमुख रूप से चर्चित एक और आन्दोलन है दलित आन्दोलन। यह भारतीय जाति व्यवस्था का परिणाम है। समकालीन हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्य ने जब अपना कदम बढाया तब दलित चेतना और दलित साहित्य को लेकर बहस शुरू हुई। इस पर बहुत सारे लेख भी रचे गये। कुछ विद्वानों के लिए दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। और कुछ लोगों का मानना है कि जिस रचना में दलित जीवन यथार्थ का चित्रण हुआ है वे सब दलित साहित्य है।

लेकिन दलित चेतना और दलित विमर्श दोनों अलग-अलग है। दलित चेतना का वास्तविक अर्थ है दलितों को लेकर सामाजिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक समझ। दलितों को दलित के रूप में देखे समझे बिना मनुष्य के रूप में समझने और स्वीकारने के पीछे दलित चेतना है। उन्हें समाज की मुख्य धारा में ले आने के विचार से किए जाने वाले प्रयत्न भी दलित चेतना का परिणाम है। इस प्रयत्न में गैर [illegible] का योगदान ही प्रमुख रहा है। साहित्य जगत में प्रेमचन्द से लेकर दलित [illegible] रचना की शुरुआत देख सकते हैं। यह सचमुच चेतना का परिणाम है। [illegible] आन्दोलन नहीं। जबकि दलित आन्दोलन इससे भिन्न है। वह दलित की आशाओं, आकांक्षाओं और दु:ख-दर्द के यथार्थ की अभिव्यक्ति के साथ [illegible] सामाजिक, आर्थिक विषमताओं से मुक्ति, शोषण, उत्पीडन के विरुद्ध [illegible] आत्मसम्मान से जीने की प्रबल इच्छाशक्ति लेकर आया है। वह दलितों में अपनी

अस्मिता की पहचान के लिए संघर्ष की चेतना जागृत करता है। इससे दलित साहित्य का आविर्भाव हुआ। दलित साहित्यकारों ने दलितों की असलियत को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करने तथा उन्हें अपनी स्थिति से अवगत कराने तथा सचेत कराने की कोशिश की। हिन्दी साहित्य जगत में प्रेमचन्द के उपन्यासों में ही यह दलित जीवन सर्वप्रथम उभर आया है। वहाँ से लेकर "रामदरश मिश्र कृत 'जल टूटता हुआ', जगदीश चन्द्र कृत 'धरती धन न अपना', आदि उपन्यासों एवं अनेक कथाकारों की जनवादी, वामवादी, नव-वामवादी तथा समकालीन कहानी की प्रवृत्ति-प्रकृति के रूप में प्रकाशित कहानियों में सामाजिक शक्ति के उद्घोष बनते जा रहे दलित-समाज के शोषण-उत्पीडन यातना से मुक्ति के मुखरित स्वर को देखा जा सकता है।"[८]

झूठ को सच बनाकर गौरवान्वित करनेवाले इतिहास के दुष्चक्र को दलित चेतना से काफी हद तक वाणी मिली। दलितों के मन में नवजागरण का बोध जाग उठा। वर्तमान इतिहास के प्रति उन्हें घृणा है। क्योंकि वह अपना इतहिास नहीं। अत: वे अपने वैकल्पिक इतिहास खोजने तथा पुन: सृजित करने के लिए कार्यक्षेत्र में आ गये। दलितों की विषमता, उनकी स्थिति का बयान प्रस्तुत करने का कार्य दलित साहित्यकारों द्वारा होने लगा। अपने साहित्य द्वारा अपने पर होनेवाले अत्याचारों को प्रत्यक्ष करने का कार्य वे लोग कर रहे हैं। इससे स्पष्ट है दलित-जीवन का असली संप्रेषण दलित से ही संभव है। यहाँ दलित साहित्य और गैरदलितों के दलित साहित्य का [illegible] स्पष्ट कर सकते हैं कि एक भोगा हुआ यथार्थ प्रस्तुत करता है तो दूसरा [illegible] गया यथार्थ। भोगे हुए यथार्थ का चित्रण हृदय स्पर्शी है और उसमें जो [illegible]

---

८ डॉ. मुन्ना तिवारी दलित चेतना और समकालीन हिन्दी उपन्यास, पृ.७।

अन्य किसी में नहीं हो सकती। उसका अपना एक सौंदर्य है। दूर खडे होकर किसी चीज का रस लेने से बेहतर है पास जाकर, चखकर रस का अनुभव करना। इस प्रकार "दलित साहित्य भारत की वर्णीय व्यवस्था पर चोट करके मनुष्य की सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय की लडाई लड रहा है। जिस प्रकार प्रगतिशील जनवादी साहित्य वर्गीय संघर्ष और वर्गीय समानता के लिए प्रतिबद्ध है, उसी तरह दलित साहित्य सामाजिक समानता, भाईचारा और मनुष्य की आजादी के लिए प्रतिबद्ध है। इसके साथ-साथ वह ऊपर वर्णित साहित्य की तरह ही वर्गीय भेद-भाव रहित जातिविहीन समाज बनाने का लक्ष्य भी रखता है।"[9]

दलित चेतना से अनुप्राणित बहुत सारे उपन्यास हिन्दी में लिखे गए हैं। प्रेमचन्द का 'रंगभूमि', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', नागार्जुन का 'बलचनमा', जगदीशचन्द्र का 'धरती धन न अपना' गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' जैसे उपन्यास दलित जीवन यथार्थ की गहराई को संप्रेषित करने वाले हैं। लेकिन ये लेखक दलित नहीं हैं। उन्हांने दलित चेतना से प्रभावित होकर उनके जीवन को सुधारने के उद्देश्य को लेकर उपन्यास लिखे थे। इन्हें समकालीन सन्दर्भ के दलित साहित्यकार मानने के लि[illegible] नहीं। कारण और कुछ नहीं सिर्फ इतना है कि वे दलित जाति के नहीं हैं। दलित साहित्यकार का दावा है कि उनका साहित्य भोगे हुए यथार्थ का साहि[illegible] ईमानदारी है। ओमप्रकाश वाल्मीकी, जयप्रकाश कर्दम, पुरुषोत्तम [illegible] मोहनदास नैमीशराय, रघुनाथ व्यासा, शिवचंद्र उमेश, कालीचरण स्नेही जै[illegible]

9 रमणिका गुप्ता दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, अपने [illegible]
पृ 161

दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में दलित जीवन के अनदेखे एवं अनछुए पहलुओं को प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में "वही साहित्य दलित-साहित्य की श्रेणी में आ सकता है, जो उपरोक्त मानवता को ऊपर उठाने की ओर अग्रसर हो। इसलिए आवश्यक है कि मानवीय संसाधनों और विकास की दृष्टि से उसमें तर्कशीलता, स्वाभिमान व आत्मविश्वास पैदा करने की सामर्थ्य हो, वह उसमें महत्वाकांक्षा पैदा करे, सत्ता में भागीदारी प्राप्त करके अपने जीवन व राज्य व्यवस्था संबन्धी फैसले करने की शक्ति से संपन्न होने की ललक पैदा करे, वह शोषण रहित मानववादी व्यवस्था को समर्पित हो, जनता में अपने लिए और अपने जैसे लोगों के लिए सुंदर, नवीन व सुडौल मानवीय जीवन की तीव्र इच्छा पैदा करने में सहायक हो, वह भाग्यवाद की जगह कर्मशीलता को, अगले-पिछले जन्मों के जमाजोड के मकडजाल की जगह निरे इसी (वर्तमान) जीवन के हिसाब-किताब को प्रमुखता दे, वह फिरका परस्ती, जातिवाद व धर्मविशेष के उन्माद से मुक्त करे, क्योंकि ये वस्तुएँ वंचित मानवता को यथास्थिति में बनाए रखने की हथियार हैं और मानववाद का विलोम हैं।"[10] इस प्रकार एक नई मानसिकता को लेकर दलित साहित्य सामने आया। वह साहित्य समकालीन साहित्य का प्रमुख स्वर भी बन गया।

स्वत्वबोध

अपने स्वत्व और अधिकार का बोध हर मनुष्य के मन में है। स्त्री-पुरुष भेद उसमें नहीं है। अपने विचार को बिना किसी हिचक के प्रकट करने का स्वातंत्र्यबोध

---

10. हंस जनवरी 2001, पृ.37

इसमें आता है। आधुनिक मनुष्य हमेशा अपनी अस्मिता की खोज में व्यस्त है। इसलिए कि उनका सारा विश्वास नष्ट हो गया। सारे मूल्य सन्दिग्ध रह गए। वर्तमान प्रतिकूल सिद्ध हुआ और भविष्य अंधकारपूर्ण। ऐसी स्थिति में वह अपने को, अपनी अस्मिता को तथा जीवन के अर्थ को तलाशने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साहित्य के क्षेत्र में ऐसे कई लेखकों ने पदार्पण किया जिन्होंने यह मानसिकता लेकर कलम चलायी थी। उनके द्वारा लोगों की समझ में आ गया कि अस्मिता किसी की दया और कृपा का फल नहीं बल्कि अपना हक है। अपनी अस्मिता तथा दूसरों की अस्मिता की रक्षा करना हर एक का दायित्व है। यह आधुनिक भावबोध का परिणाम था।

समकालीन सन्दर्भ में व्यक्ति जीवन की विसंगतियों से अवगत हो गया। इस यथार्थ को कबूल करते हुए, प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए वह जिन्दा रहने की कोशिश करने लगा। यह कोशिश उसका स्वत्वबोध है। आधुनिकता में अस्मिता की जो तलाश थी वह समकालीनता में स्वत्वबोध बन गया। मनुष्य अपनी विसंगत स्थिति को स्वीकार करके उसके प्रति तटस्थ दृष्टिकोण अपनाते हुए आगे जीने का प्रयत्न करने लगा। जीवन का अर्थ ढूँढते-ढूँढते उसने जान लिया कि अपने स्वत्व को बनाए रखने का संघर्ष ही जीवन है। समकालीन संदर्भ में व्यक्ति के इस स्वत्वबोध की अवधारणा का परिणाम है नारी मुक्ति आन्दोलन और दलित साहित्य।

समकालीन स्त्री वर्षों की दासता से परे जाने के लिए तैयार हो गयी। यह भी वास्तव में स्त्री की स्वत्वबोध संबन्धी नई पहचान का परिणाम ही था।
आदिवासियों, अल्पसंख्यकों की भाँति औरतों का अपने स्वत्व का [illegible]
लोकशाही के सयाने हो जाने से कम महत्वपूर्ण बात नहीं।"[11] स्वत्वबोध [illegible] पहचान से उसे समाज में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खडे होने की [illegible]

---

11. के. सच्चिदानंद समकालीन भारतीय कविता और स्त्री, पूर्वग्रह 104, पृ.51

आ गयी। अपने भोगे हुए जीवन यथार्थ का चित्रण वे करने लगी। वह नियति पर रोने के बजाय हक के लिए विद्रोह करने लगी। दलित जागरण और दलित साहित्य के पीछे भी यही स्वत्वबोध सक्रिय रहा था।

फासीवादी ताकतों की पहचान

बेरोज़गारी, आर्थिक शोषण, विचार हीनता आदि फासीवाद की उपजाऊ ज़मीन है। वह अपने समय की ज्वलंत समस्याओं से जनता का ध्यान हटाने का कोई न कोई तंत्र रचाता ही रहता है। सांप्रदायिकता और राष्ट्रवाद उनके हाथ के मुख्य औजार हैं। फासीवाद का उदय जर्मनी से है। वहाँ इस तरह का संकट हुआ था। तब जनता का ध्यान किसी दूसरे मुद्दे पर याने जर्मन नैशन पर केन्द्रित किया गया। यही जर्मन राष्ट्रवाद धीरे-धीरे फासीवाद के रूप में बदल गया। जिस प्रकार जर्मनी ने फासीवाद को बढावा दिया, उसी प्रकार अन्य देश भी फासीवाद का सहारा लेकर चलने लगे। फासीवाद एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है, जो भेदभाव पर आधारित है। इसमें समानता के स्थान पर जातिभेद और धर्मभेद है। फासीवाद से संघर्ष करने का एकमात्र उपाय है एक सुदृढ जनतंत्र। उसकी कमी ही फासीवाद का पोषक तत्व है।

भारतीय इतिहास पर नज़र डालने पर पता चलता है कि फासीवाद इस देश में भी पनपा है। इसके कारण लोगों को बहुत कुछ भोगना भी पडा है। अंग्रेज़ों के शासन काल में इसका तीव्र रूप देख सकते हैं। आज़ादी का नारा जब बुलन्द [illegible] तो जनता का ध्यान इससे हटाने के लिए अंग्रेज़ों ने हिन्दु-मुस्लीम के बीच फूट पैदा की। फिर हिन्दु-मुस्लीम दंगे का सिलसिला जारी रहा। उसका अंतिम परिणाम निकला भारत विभाजन। अंग्रेज़ों की इस कूटनीति को प्रकाश में लाने का कार्य

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत बहुत सारे साहित्यकारों ने किया है। रेणु, यशपाल, राही मासूम रज़ा, मंज़ूर एहतेशाम, अब्दुल बिस्मिल्लाह, अल्का सरावगी, विनोद कुमार शुक्ल जैसे लेखकों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से इस यथार्थ का चित्रण ही नहीं किया बल्कि इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने का कार्य भी किया है । हर प्रतिबद्ध लेखकों की रचना में किसी न किसी प्रकार फासीवाद का विरोध देख सकते हैं। फासीवादी ताकतें आज भारत में सक्रिय है। समकालीन रचनाकारों ने इस मानवशोषक तत्व को पहचान लिया और उसको अपनी रचना के ज़रिए जन सामान्य के सामने नंगा करके अपने को समकालीन जाहिर किया है।

नव-उपनिवेशवादी संस्कृति की पहचान

दो सौ वर्षों की लंबी दासता के बाद ही भारत स्वतंत्र हुआ है। वह भी अनेक महान नेताओं के अथक प्रयास से। आखिर अंग्रेज़ सरकार को यहाँ से भगा तो दिया गया लेकिन कुछ ऐसी बातें यहाँ हमेशा के लिए रह गयी, जिसने हमारे सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक- आर्थिक सभी क्षेत्रों को अपने वश में कर लिया। युगों से भारत अपनी संस्कृति की महानता के कारण बहुत सम्मान्य रहा है। लेकिन के संपर्क के कारण यहाँ की संस्कृति में काफी बदलाव आ गया। आज भी बनकर यह संस्कृति हमारा पीछा कर रही है।

व्यापार के क्षेत्र में भारत बहुत पहले ही सक्रिय रहा था। चौदहवीं शती विदेशी लोग यहाँ आया करते थे और उनके संस्कार धीरे-धीरे भारत को प्रभा

करते रहे। अठारहवीं शती में अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। उन्नीसवीं शती के पूर्वार्ध तक पहूँचते-पहूँचते उन्होंने पूरे भारत पर कब्जा जमा लिया। उनकी संस्कृति भी अपने आप ही फैल गयी। सभ्यता के साथ-साथ संस्कृति में भी बदलाव आने लगा। उसका अच्छा और बुरा असर लोगों पर पडने लगा। सामाजिक जीवन का ताना-बाना नष्ट हो गया। पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध में भारतीय संस्कृति डूब गयी। पराधीन देश पर शासक राष्ट्र का प्रभाव पडना स्वाभाविक ही है। इसको सही ढ़ंग से देख-परख करके अपनाना चाहिए था। पर भारतीय जनता ने उस संस्कार को आँखें मूँद स्वीकार कर लिया।

उपनिवेशवादी संस्कृति महानगरों में बढ़ रही है। परिणामत: हमारे सांस्कृतिक मूल्य भी परिवर्तित हो रहे हैं। पारिवारिक संबन्धों में शिथिलता आ गयी है। लेकिन लोग इससे अवगत नहीं है। हम अब भी पाश्चात्य देशों पर नजर रखे हुए हैं। वहाँ जो परिवर्तन होते रहते हैं हम उन्हीं के अनुकरण में लगे हुए हैं। उचित अनुचित की चिंता नहीं। जो कुछ विदेशी है वे सब श्रेष्ठ है की गलत धारणा में हम घिरे हुए हैं।

मतलब कि हम अपनी भाषा व संस्कृति को भूल गए। उसके बुरे असर ने हमारी संस्कृति को ही नहीं दैनिक जीवन को भी कलंकित कर दिया। साहित्कारों ने इस गलती को पहचान लिया। वे उसको सुधारने का कार्य अपनी रचनाओं के जरिए क इसलिए समकालीन साहित्य में नव-उपनिवेशवादी संस्कार के प्रति असंतोष और विद्रोह की चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। पहले साहित्यकारों की दृष्टि इस पर पर्याप्त मात्रा में नहीं पडी थी लेकिन बाद में अनेक साहित्कार इस सच्चाई से अवगत हो गए और उन्होंने

लोगों को इसके प्रति सचेत करना आवश्यक समझा। आधुनिक युग की सबसे सशक्त विधा के रूप में उपन्यास को माना जाता है। लोगों को जागृत करने तथा अपने अधिकारों के लिए लडने की ताकत देने की क्षमता इसमें है। इस प्रकार समकालीन साहित्य में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देने लगी है। अपनी संस्कृति से बिछुडे लोगों को अपनी गलती से अवगत कराने का महान कार्य समकालीन साहित्यकार कर रहे हैं। अत: समकालीनता की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है नव उपनिवेशवादी संस्कृति की पहचान। ज़ाहिर है कि समकालीन उपन्यास की ये प्रवृत्तियाँ अपने समय के मानव जीवन की ज्वलन्त समस्याएँ हैं जिन्हें समकालीन उपन्यासकारों ने बडी बारीकी के साथ अभिव्यक्त करने का कार्य किया है। समकालीनता, कोई सन्देह नहीं, सतत जागरूकता का ही परिणाम है। आज का बुद्धिजीवि अपने समय को लेकर, मानव जीवन को लेकर जितना जागरूक है, सचेत है इसके लिए उनकी रचनाएँ पर्याप्त प्रमाण हैं।

समकालीन उपन्यासकार और उपन्यास

साहित्य का परम लक्ष्य मनुष्य को अपनी स्वार्थवृत्तियों के संकुचित दायरे से ऊपर उठाकर उसे मानवीयता के उदात्त शिखर पर पहूँचाना तथा उसका आंतरिक संस्कार करना है। साहित्यकार का दायित्व भी समाज सापेक्ष्य होना चाहिए। इस दृष्टि से देखें तो जन-जीवन का संस्पर्श करनेवाली एक सशक्त साहित्यिक विधा है उपन्यास।

हिन्दी उपन्यास का कलात्मक विकास प्रेमचन्द से शुरू होता है। हिन्दी कथा साहित्य को तिलस्मी-जासूसी के कुहासे से बाहर निकालकर उसे यथार्थ की पृष्ठभूमि पर खडा करने का कार्य उन्होंने ही किया है। नारी की मुक्ति, समाज के शोषित-पीडित

जनता का, विशेषकर किसानों का उत्थान, शोषणमुक्त समाज की स्थापना आदि उनका प्रमुख लक्ष्य था। प्रेमचन्दजी ने देश के हर हलचल को अपने में समाहित किया। वे अपने सहजीवियों के प्रति दायित्व का बोध रखनेवाले थे। इसीलिए उनकी रचनाएँ बृहत्तर जनसमुदाय की आशा और अभिलाषा, आशा और निराशा का साहित्य बन गई हैं। प्रमचन्द ने एक विशाल मानसिकता को लेकर सृजन के क्षेत्र में पदार्पण किया था। क्योंकि वही एक सृजनात्मक प्रतिभा का असली दायित्व माना जाता था, "जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देशबंधुओं के कष्टों में विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रुदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौम रहता है।"[12]

सन् 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। लेकिन उसके साथ विभाजन की त्रासदी जुडी हुई थी। इससे जनता में असुरक्षा का बोध उत्पन्न हुआ। इस समय के साहित्य में कुछ नई प्रवृत्तियों के साथ ही प्रेमचन्दयुगीन प्रवृत्तियों का विकास भी हुआ है। लेकिन सन् साठ के बाद के साहित्य में जन-जीवन की जटिलताओं को उसकी समग्रता में अभिव्यक्त करने का कार्य हुआ है। यह दरअसल वर्तमान जीवन की सही पहचान का परिणाम है। वैसी रचनाओं और वैसे रचनाकारों को हम समकालीन मानते हैं। ऐसे कुछ उपन्यासकार हैं मोहन राकेश, नरेश मेहता, जगदम्बा प्रसाद दीक्षित, सुरेन्द्र वर्मा, कृष्णा सोबती, विनोद कुमार शुक्ल, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, प्रभा खेतान आदि।

---

12. प्रेमचन्द कुछ विचार, पृ.6

अपने आस-पास की तनावग्रस्त ज़िन्दगी से ऊबकर समाजोन्मुख कार्य करने के लिए कुछ साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। उन लोगों ने पहचान लिया कि साहित्य ही वह विधा है जिसके द्वारा वे लोगों तक अपनी बात को सही अर्थ में पहूँचा सकते हैं। क्योंकि, "साहित्य राजनीति (और समाज) के पीछे चलनेवाली चीज नहीं है, उसके आगे-आगे चलनेवाली 'एडवांस गार्ड' है। वह उस विद्रोह का नाम है, जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरुचि से उत्पन्न होता है।"[13] उपन्यास वह शक्तिशाली विधा है जो मानव जीवन के बृहत्तर यथार्थ का चित्रण करता है। उपन्यास विधा की महत्ता को स्वीकार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने कहा है, "साहित्य में वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास में बहुत कुछ कह देने की क्षमता है। जगत, समाज और व्यक्ति का जितना खुलकर चित्रण उपन्यास में संभव है उतना किसी भी विधा में इतने सशक्त ढंग से नहीं हो सकता। समाज जो रूप ग्रहण करता जा रहा है और उसके वर्गों में जो नाना प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हो रहा है, केवल इसका चित्रण और प्रत्यक्षीकरण ही उपन्यास साहित्य नहीं करता वरन् आवश्यकतानुसार सुधार व निराकरण भी प्रस्तुत करता है।"[14]

पांचवें दशक से लेकर हिन्दी उपन्यास जगत में सकमालीनता का स्वरूप देख सकते है। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोडा' (1952) और फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आंचल' (1955) जैसे उपन्यासों में इसकी झलक देख सकते हैं। रेणु के 'मैला आंचल' का केन्द्र एक विशेष भूभाग है। इसके द्वारा आंचलिकता नामक एक

---

13. प्रेमचन्द कुछ विचार, पृ.74
14. आ. रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.513

नयी धारा ने औपन्यासिक क्षेत्र में जन्म लिया। यथार्थ और मूल्य के संबन्ध निरूपण की दृष्टि से धर्मवीर भारती का उपन्यास 'सूरज का सातवाँ घोडा' (1952), भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'भूले बिसरे चित्र' (1959) और उपेन्द्रनाथ अश्क का 'बडी-बडी आँखें' (1955) उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

यशपाल ने तथ्य को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संबन्धों और स्थितियों, वर्गों और संप्रदायों से निष्पन्न सांप्रदायिक विभीषिका जैसी क्रूर स्थिति को पहली बार एक विशाल कैनवस पर 'झूठा-सच' के दो भागों में चित्रित किया। विभाजन की समस्या को बाद में भीष्म साहनी ने एक नये ढंग से 'तमस' में चित्रित किया है। मध्यवर्गीय परिवार और उनकी समस्या हर जमाने में है। एक बच्चे की मन:स्थिति को बीच में रखकर मध्यवर्गीय परिवेश की अराजक स्थिति को कृष्ण बलदेव वैद ने 'उसका बचपन' (1957) में चित्रित किया।

1960 के बाद उपन्यास में एक ऐसा मोड आ गया कि लेखक उसे मानव जीवन की समस्याओं से जोडकर खोजने का प्रयास करने लगे। मध्यवर्गीय पारिवारिक परिवेश में हरबंस-नीलिमा की कहानी कहते हुए मोहन राकेश ने दाम्पत्य जीवन की तनावपूर्ण स्थिति को व्यक्त किया। नरेश मेहता ने अपने उपन्यास 'यह पथ बन्धु था' (1962) में मूल्यविघटन का चित्रण किया है। स्थिति और चरित्र के तनावपूर्ण रिश्ते और टकराहट ममता कालिया का 'बेघर', निरुपमा सेवती का 'मेरा नरक अपना है', रमाकांत का 'छोटे-छोटे महायुद्ध', मेहरुन्नीसा परवेज का 'उसका घर', मंजुल भगत का 'अनारो',

शशिप्रभा शास्त्री का 'सीढियाँ' और सिम्मि हर्षिता का 'संबन्धों के किनारे' आदि में देख सकते हैं।

जगदीश चन्द्र का 'धरती धन न अपना' (1972) दलित जीवन को चित्रित करनेवाला उपन्यास है। विष्णु प्रभाकर के उपन्यास 'कोई तो' में मध्यवर्ग को केन्द्रीकृत करके पूरी वर्गीय व्यवस्था का खाका प्रस्तुत किया गया है। महेन्द्र भल्ला के उपन्यास 'दूसरी तरफ' में 'रंग भेद' की समस्या प्रस्तुत है। इस समस्या का संगत समाधान आज भी नहीं है। यह मात्र भारत में ही नही विश्व भर में व्याप्त है। इस श्रेणी के और भी उपन्यास हैं जैसे मन्नु भण्डारी का 'महाभोज' मृदुला गर्ग का 'अनित्य' मुद्राराक्षस का 'मेरा नाम तेरा नाम', दुर्गाप्रसाद शुक्ल का 'जोगती' आदि।

व्यंग्यात्मक शैली में मूल्य और आदर्शहीनता का चित्रण श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास 'रागदरबारी' (1968) में किया है। इसी प्रवृत्ति को फैंटेसी के रूप में बदीउज्जमां ने 'एक चूहे की मौत' (1971) में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार अनेक शैलियों में समाज की मूल्यहीनता का चित्रण हिन्दी उपन्यास में देख सकते हैं। जगदम्बा प्रसाद दीक्षित का 'मुर्दाघर', रवीन्द्र कालिया का 'खुदा सही सलामत है', पंकज बिष्ट का 'लेकिन दरवाजा' आदि कुछ उदाहरण मात्र हैं। सतीश जमाली का उपन्यास 'प्रतिबद्ध' कारखाने के जीवन पर आधारित है। मालिक-मजदूर के तनाव और संघर्ष का चित्रण इसमें है। युवा छात्र आंदोलन से संबन्धित काशीनाथ सिंह का उपन्यास 'अपना मोर्चा' छात्रों की मानसिकता को उद्घाटित करता है।

प्रांत-विशेष की ज़िन्दगी को चित्रित करनेवाले उपन्यासों में भीष्म साहनी का 'मय्या दास की माडी', अब्दुल बिस्मिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चादरिया', राजी सेठ का 'तत्सम', कुसुम कुमार का 'हीरामन हाईस्कूल', नासिरा शर्मा का 'सात नदियाँ एक समन्दर', मृदुलागर्ग का 'मैं और मैं', प्रयाग शुक्ल का 'गठरी' आदि उल्लेखनीय हैं। विनोद कुमार शुक्ल के 'नौकर की कमीज' में एक मध्यवर्गीय क्लर्क की यातना को व्यक्त करते हुए भारतीय व्यवस्था की नौकरशाही विडम्बना को प्रस्तुत किया गया है। बुंदेलखंड की सीमा पर स्थित बेतवा नदी पर बाँध बनाने की योजना के दुष्परिणाम को वीरेन्द्र जैन ने अपने उपन्यास 'डूब' में चित्रित किया है। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' कलाकार जीवन को चित्रित करते हुए मध्यवर्गीय नारी की तनावपूर्ण स्थिति को व्यक्त करता है।

इस प्रकार समकालीन उपन्यासकार अपने उपन्यासों में समाज में व्याप्त स्थूल एवं सूक्ष्म समस्याओं से सचेत कराते हुए अपने समय के जीवन की भीषणता का एहसास दिलाने तथा उस पर चिंतन करने के लिए पाठकों को विवश कराने का कार्य करते हैं। "आज के हिन्दी उपयासों के चित्रित जीवन में संक्रमण और संघर्ष का सत्य गहरी छटपटाहट के रूप में उभरता है। हर छटपटाहट में कोई न कोई खोज होती है। नये मूल्य, नये सन्दर्भ, नये सामाजिक न्याय, नये मनुष्य से लेकर नये पेंतरे, नये प्रहार, नई लडाइयों के लिए नये हथियार और नये पक्षधर तक और नये शब्द, नये अर्थ और नयी जमीन से लेकर नये गाँव, नये शहर, नये संबन्ध और नये अनुबंध तक की खोज में

कथाकार जीवन की गहराइयों का अवगाहन करता है।"[15] समकालीन उपन्यास में आज की ज़िन्दगी और उसके फैलाव को विविधता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

इस सन्दर्भ में सुरेन्द्र वर्मा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की अलग प्रासंगिकता है। क्योंकि वर्माजी ने अपने समय के साथ समझौताविहीन संघर्ष किया है। उन सारे संघर्षों का दस्तावेज़ उनकी रचनाएँ ही हैं। आधुनिकता के दौर में उन्होंने सृजन का कार्य शुरू किया था। पर बाद में आधुनिकतावादी निष्क्रियता से ऊपर उठकर उन्होंने प्रतिरोध के समकालीन रास्ते को अपना लिया। वर्माजी 'रिबेल' है। जीवन में, साहित्य में और समाज में। ऐसी एक प्रतिभा का जीवनवृत्त अवश्य उनकी सृजनात्मकता के आकलन के लिए उपयोगी होगा।

सुरेन्द्र वर्मा रचना व्यक्तित्व

सुरेन्द्र वर्मा आज के रचनाकारों से बिलकुल भिन्न है। क्योंकि वे अपने को बोस्ट करना नहीं चाहते। इसलिए वे अपने बारे में कुछ भी नहीं लिखते। जो कुछ वे लिखते हैं दूसरों को लेकर, वर्तमान जीवन की असंगतियों को लेकर। इसलिए वैयक्तिक जीवन की जानकारियाँ कम मात्रा में उपलब्ध हैं। शायद वे यश के पीछे नहीं होंगे।

7 सितंबर 1941 को सुरेन्द्र वर्मा का जन्म हुआ। उन्होंने भाषाविज्ञान में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। कहानी, उपन्यास, नाटक और व्यंग्य के क्षेत्र में ही नहीं कविता के

---

15. आलोचना अंक 76 मार्च 1986, पृ.34

क्षेत्र में भी वे सिद्धहस्त हैं। अज्ञेय के 'नया प्रतीक' में सुरेन्द्र वर्मा की कविताएँ छपी हैं। वे एक समीक्षक भी हैं। मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कवि सुभाष दशोत्तर की कविताओं का मूल्यांकन करते हुए "सुभाष दशोत्तर का मृत्युबोध"[16] और "देवराज के काव्य में मानवतावादी दृष्टि"[17] जैसे लेख लिखकर उन्होंने अपने समीक्षक व्यक्तित्व को प्रमाणित किया है। 'प्रकर', 'नटरंग', 'आजकल' जैसी पत्रिकाओं में उनके कविता, नाटक और विचारपूर्ण लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

आपात्काल के समय भी सुरेन्द्र वर्मा का रचनाकार चुप नहीं रहा। लोकतांत्रिक अधिकारों के छिन जाने के विरोध में उन्होंने लेखकीय स्वतंत्रता की ज्वलन्त समस्या को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

'आठवाँ सर्ग', 'सेतुबंध' आदि नाटकों से स्पष्ट है कि इतिहास में सुरेन्द्र वर्मा की दिलचस्पी कितनी गहरी है। 'संस्कृति का अर्थ भारतीय परंपरा' शीर्षक लेख के जरिए उन्होंने इतिहास क्रम के आधार पर संस्कृति और परंपरा की नई दृष्टि को पाठकों के सामने रखा। हिन्दी रंगमंच तथा अंतर्राष्ट्रीय फिल्म जगत में भी उनका महत्वपूर्ण स्थान है। केन्द्र संगीत नाटक अकादमी तथा भारतीय परिषद् द्वारा भी वे सम्मानित हुए हैं।

सुरेन्द्र वर्मा सफल नाटककार तथा रंग निर्देशक भी हैं। उनके 'तीन नाटक', 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक', 'आठवाँ सर्ग', 'छोटे सैयद बडे सैयद' आदि ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित समकालीन जीवन यथार्थ के सशक्त

---

16. नया प्रतीक नवम्बर-दिसम्बर 1978, पृ.114
17. नया प्रतीक अक्टूबर 1970, पृ.39

नाटक हैं। इसके अलावा 'शकुंतला की अंगूठी', 'एक दूनी एक', 'कैद-ए-हयात' आदि नाटक भी उनके रचनाकार व्यक्तित्व की अद्वितीयता को प्रमाणित करनेवाले हैं।

रंगकर्मी सुरेन्द्र वर्मा

सुरेन्द्र वर्मा के बहुआयामी व्यक्तित्व में रंग-संपृक्ति महत्वपूर्ण स्थान रखती है। रंगचेतना संपन्न नाटककार होने के कारण उन्होंने नाटकों के मंचन में भी अपनी अर्थवत्ता एवं सार्थकता प्रमाणित की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले तक नाटक कथा कथोपकथन शैली में प्रस्तुत करते थे। इस कमी से अवगत होकर उपेन्द्रनाथ अश्क, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मी नारायण मिश्र, धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, लक्ष्मी नारायण लाल और सुरेन्द्र वर्मा जैसे नाटककार अलग ढंग से सोचने लगे और उन्होंने महसूस किया कि रंगमंच से कटकर नाटक का कोई अस्तित्व नहीं। शायद मोहन राकेश ही हिन्दी के प्रथम नाटककार हैं जिन्होंने नाटक की कसौटी के रूप में रंगमंच को स्वीकार किया।

मोहन राकेश के नाट्यप्रयोगों के आगे की कडी के रूप में सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों को ले सकते हैं। राकेश के नाटक पर्दे से प्रकाश तक यात्रा कर चुके हैं तो प्रकाश के जटिल प्रयोगों तक पहूँचने का कार्य सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों ने किया। राकेश एक ही कमरे में नाटक को समेट लेते थे और प्राय: एक ही दृश्यबन्ध को प्रकाश एवं अन्धकार के माध्यम से ध्वनि, संगीत, मौन एवं सन्नाटे के बल पर अनेक दृश्यबंध युक्त होने का आभास देते थे। सुरेन्द्र वर्मा का रंगबोध अनुभूति और संवेदनात्मक संस्पर्शों से नाट्यधर्मी युक्तियों का सहारा लेकर प्रेक्षक-रंजन की क्षमता प्राप्त कर लेता है।

सुरेन्द्र वर्मा के एकांकी भी बहुमंचित है। "आक्रामक कथ्य और अभिनय रंगप्रयोगों के कारण ये एकांकी अपनी तीव्रनाट्यानुभूति से दर्शक पाठक को उत्तेजित कर देते हैं।"[18]

नाटक को लोगों तक पहूँचाने का एकमात्र माध्यम भाषा ही है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटकों में काव्यात्मक क्षमता के साथ-साथ अभिनयात्मक रूपक्षमता भी है। "सुरेन्द्र वर्मा के पास नाटकीय और रंगमंचीयबोध तथा पैनी सक्षम भाषा है जो प्रभावित करती है।"[19] सुरेन्द्र वर्मा का रंगतंत्र या रंगकर्म नाटक को प्रभावित ही नहीं कंट्रोल भी करता है।

नाटक

तीन नाटक (1972)

1972 में यह संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें 'सेतुबंध', 'नायक खलनायक विदूषक' तथा 'द्रौपदी' जैसे तीन नाटकों का संकलन हुआ है।

सेतुबंध

गुप्तकालीन इतिहास के उपेक्षित प्रसंगों को लेकर इस नाटक की रचना हुई है। वाकाटक नरेश प्रवरसेन तथा उनकी माता महाराज चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती के बीच का

---

18. जयदेव तनेजा समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ.62
19. नेमीचन्द्र जैन आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ.127

वार्तालाप ही नाटक का मुख्य विषय है । 'सेतुबंध' काव्य के रचयिता कौन हैं, कालिदास है या प्रवरसेन । इस विषय को लेकर जो मतभेद था उसको भी इस नाटक में स्पष्ट किया है ।

इतिहास का एक पन्ना जिसे सभी समझ नहीं सके, उसे खुल्लमखुल्ला लोगों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास नाटककार ने किया है । महाराजा चन्द्रगुप्त की पुत्री प्रभावती को अपने गुरु कालिदास के प्रति प्रेम था, लेकिन चन्द्रगुप्त इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे । उन्होंने गुप्त साम्राज्य का विस्तार ही चाहा और विदर्भ राज्य के वाकाटक नरेश पृथ्वीसेन से ब्याह का प्रस्ताव रखा । प्रभावती को राजाज्ञा का पालन करना पडा । प्रभावती के पुत्र प्रवरसेन का 'सेतुबंध' काव्य का संशोधन महाकवि कालिदास ने ही किया और सभी लोगों से प्रशंसा भी मिली । अपनी माता और कालिदास के बारे में सुन-समझकर प्रवरसेन बेचैन हो गये । अपने को वह औसत व्यक्ति समझकर घृणा की दृष्टि से देखने लगा और जीवन की सफलता रूपी सेतु को पार करने में अपने आपको उसने असफल महसूस किया । नाटक के अंत में अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन की झलक प्रवरसेन के द्वारा मिलती है । इतिहास के तहत आधुनिक मानव की बेचैनी एवं छटपटाहट को चित्रित करना वास्तव में सुरेन्द्र वर्मा का उद्देश्य था । अपने अस्तित्व की तलाश करनेवाले प्रवरसेन के माध्यम से नाटककर ने मानव अस्तित्व की समस्या को उभारने का प्रयास किया है ।

नायक खलनायक विदूषक

इसमें भी इतिहास के माध्यम से आज के मनुष्य की आकांक्षा तथा नियति के साथ के संघर्ष का सजीव चित्रण हुआ है। आज के अभिनेता वर्ग की त्रासदी को इसमें व्यक्त किया गया है। विदूषक की भूमिका निभानेवाला कपिंजल बार-बार वही भूमिका निभाने से इनकार करता है। क्योंकि वह 'टाइप्ड' पात्र बनना नहीं चाहता। वह "मंच पर भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से जीवन को समझना चाहता है।"[20] कुमार भट्ट नामक पात्र के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा यह दिखाना चाहते हैं, "नायक खलनायक और विदूषक एक ही व्यकित्व के तीन पक्ष हैं और परिस्थितियों के परिवर्तन से हर व्यक्ति में इनका दर्शन हो सकता है।"[21] रंगमंच का विदूषक और वास्तविक राजविदूषक के बीच का संवाद यह स्पष्ट करता है कि जीने के लिए कोई-न-कोई भूमिका अवश्य निभानी पड़ेगी और एक में से दूसरे का परिवर्तन लोग स्वीकार भी नहीं करते। इसलिए हमें उसी के अनुसार जीना है और अपनी आजीविका पा लेनी है। नाटक में कलाकार की आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को भी उभारा गया है। समकालीन संदर्भ में यह सार्थक भी है।

द्रौपदी

आधुनिक सामाजिक व्यवस्था तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष साक्षात्कार का नाटक है 'द्रौपदी'। यह नाटक सर्वप्रथम त्रैमासिक नटरंग के 1970 के अंक 14 में प्रकाशित हुआ था। बाद में 1972 को 'तीन नाटक' में इसको स्थान दिया गया। नाटक का नायक मनमोहन एक फर्म का अधिकारी है। उसके जीवन का एकमात्र

---

20. सुरेन्द्र वर्मा तीन नाटक, पृ.66
21. वही, पृ.8

लक्ष्य है ऊँचे पद प्राप्त करना और धन कमाना। मनमोहन और पत्नी सुरेखा अपने बच्चे अनिल, अलका दोनों के साथ बहुत खुशी से जीवन बिता रहे थे। जिन्दगी की तेज़ रफ्तार में आगे बढ़ने की धुन में अपने परिवार को, रिश्ते को भूलकर दौडने की कोशिश मोहन करता है। लेकिन वह इस दौड में पराजित हो जाता है और ज़िन्दगी में भी। अपने पल-पल में बदलनेवाले व्यक्तित्त्व को एक साथ निभाने में वह असफल हो जाता है। अलका-राजेश और अनिल-वर्षा पारिवारिक बिखराव एवं दिगभ्रमित युवावर्ग की उच्छृंखलता के प्रतीक हैं। मनमोहन की पत्नी सुरेखा महाभारत की द्रौपदी की भाँति मनमोहन में पाँच पति याने जीवन के पाँच पहलुओं को एक साथ झेल रही है। मनमोहन को अपना जीवन नीरस लगने के कारण वह सुरेखा से ऊबकर अंजना और रंजना के पास जाता है। लेकिन प्यास बुझती नहीं। थका-हारा मनमोहन प्रकृति की गोद में लौट आना चाहता है। उनका लडका नगर जीवन की समकालीन आदतों का शिकार है। बेटी 'एक्स्ट्रा क्लास' के बहाने प्रेम के साथ पिक्चर जाना चाहती है। इस प्रकार टूटे बिखरे पारिवारिक संबन्धों को नाटक में चित्रित किया गया है।

सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (1975)

इसमें यौन-सम्बन्धों के आधार पर स्त्री-पुरुष सम्बंधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। नाटक की नायिका मल्लराज्य की रानी है। रानी की शादी एक नपुंसक राजा ओक्काक से हुई थी। राज्य के लिए उत्तराधिकारी की आवश्यकता आ गयी तो प्रजा को संतुष्ट करने के लिए रानी को 'नियोग' विधि के लिए बाध्य किया जाता है। तत्कालीन सामाजिक परंपरा के अनुसार सन्तानहीन विवाह की समस्या का समाधान 'नियोग' (एक रात के लिए उपपति का चुनाव) द्वारा सन्तान प्राप्ति था। रानी को अमात्य परिषद की आज्ञा माननी पडती है। राजा ओक्काक भी मजबूर होकर सहमति देता है।

लेकिन उस रात राजा आत्मपीड़ा का अनुभव करता है। रानी अपने पुराने प्रेमी को उपपति के रूप में चुन लेती है। पुंसक आर्य प्रतोष के स्पर्श और संभोग से रानी को नए भाव-बोध का ज्ञान होता है। पांच वर्ष तक वह पतिव्रता धर्म निभाती रही, लेकिन उस रात के बाद उसका जीवन दर्शन बदल जाता है। उसका मन पुंसक आर्य के प्रति समर्पित होता है।

आठवाँ सर्ग (1976)

महाकवि कालिदास के 'कुमारसंभव' महाकाव्य के आठवाँ सर्ग को आधार बनाकर इस नाटक का सृजन हुआ है। स्त्री-पुरुष संबन्ध, लेखकीय स्वतंत्रता, साहित्य, राजनीति, सत्ता और साहित्कार जैसी समस्याओं से युक्त यह नाटक ऐतिहासिकता की सीमा को पार करके आधुनिक तथा समकालीन भावबोध को अपने में समेटा हुआ है।

यह पुस्तकाकार रूप ग्रहण करने से पूर्व 'हत्या' नाम से 'कथा' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। फिर रेडियो में इसका प्रसारण हुआ। 'हत्या' दो अंकीय नाटक था। दूसरे अंक के अंत में कालिदास 'कुमारसंभव' को अधूरा छोड देता है। यह सुरेन्द्र वर्मा को बैचैन करता रहा। "एक सुबह 'टाइम' में सोत्झोनित्सिन पर एक लेख पढ रहा था। कि एकटक रोशनी सी कौंध उठी। हाँ यही है वह बिन्दु, जहाँ

से बात आगे बढ सकती है।''[22] इसके बाद तीसरे अंक के दो दृश्य उन्होंने लिखे और वह नाटक 'हत्या' से 'आठवाँ सर्ग' बन गया।

नाटक का आरंभ प्रियंवदा और अनसूया के संवाद से होता है। ये संवाद प्रियंगु और कालिदास के प्रथम मिलन का सौंदर्यपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है। इसीके साथ कालिदास के सम्मान समारोह का प्रसंग आता है। रचनाकार की पीडा और व्यवस्था का निर्मम रूप तब और भी उभरकर सामने आता है जब न्याय समिति के सदस्य के रूप में संपन्न व्यवसायी, आयुर्वेदाचार्य और न्यायाधीश आते हैं। कालिदास के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा साहित्यकार की सृजनात्मकता पर प्रश्नचिह्न डालते हैं। इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने लेखक की रचनाधर्मिता, उसके व्यक्तित्व, अहं एवं गौरव को प्रतिष्ठित किया है। इसमें पति-पत्नी का संबन्ध सौहार्दपूर्ण है। 'आठवाँ सर्ग' कालिदास की पैरवी और पक्षधरता के बहाने से स्वयं अपने नाटकों के नर-नारी संबन्धों और उनकी विलास क्रीडाओं की तर्क सम्मत और विश्वसनीय व्याख्या भी प्रस्तुत कर देता है।''[23]

छोटे सैयद बडे सैयद (1981)

इस नाटक की पहली प्रस्तुति नवम्बर 1980 में हुई। पुस्तकाकार रूप में इसका प्रकाशन 1981 में हुआ। 'छोटे सैयद बडे सैयद' उत्तर मुगलकालीन भारतीय इतिहास के नाजुक मोडों और घटनाओं का दस्तावेज है। हिंसा, घृणा, राजनीतिक गठबन्धन, रक्तपात, कूटनीति, विलास में घिरे बादशाहों, कमजोर शासन व्यवस्था आदि में अब्दुल्ला खाँ उर्फ हसन अलि उर्फ बडे सैयद ने एक नया मोड दिया। बडे सैयद साहसी थे। उन्होंने हिन्दु मुस्लीम एकता और राष्ट्रीयता का महान लक्ष्य समझ रखा था।

---

22. सुरेन्द्र वर्मा आठवाँ सर्ग निर्देशकीय वक्तव्य
23. नैमीचन्द्र जैन आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ.161

अकबर बादशाह की तरह वे भी हिन्दु मुस्लीम विवाह को प्रोत्साहन देते हैं। लेकिन हुसैन उर्फ छोटे सैयद की अपरिपक्वता और गुस्से भरी जल्दबाज़ी बडे सैयद के महान लक्ष्य में रुकावट पैदा करता है। यह नाटक भी इतिहास के माध्यम से समसामयिक समस्याओं की ओर इशारा करनेवाला है।

शकुन्तला की अंगूठी (1990)

अपने कार्य साध्य के बाद स्त्री को छोडकर चले जानेवाले पुरुष पौराणिक युग से लेकर आज भी देखने को मिलते हैं। 'शकुंतला की अंगूठी' नाटक में नायक कुमार नट, बोल्ट और स्क्रू की बिक्री के हिसाब का काम करता है और साथ ही वह नाटक का निर्देशक भी है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' नाटक का मंचन करने के लिए एक कैंप भी है। वह अपने काम में होशियार नहीं है और पहाडे और हिसाब में बहुत कमजोर भी। कुमार के मैनेजर के अनुसार, "सुखी जीवन की कुंजी हिसाब है और हिसाब का राज पहाडे।"[24] "पहाडे जिन्दगी की बुनियाद भी है।"[25] नाटक की नायिका के रूप में कनक आ जाती है और आते ही नाटक के बारे में कुमार से पूछती है तो कुमार जवाब देता है, "यह नाटक नियति यानी डैस्टिनी के बारे में है कि किस तरह सितारों की चाल हम पर असर करती है यह नाटक दु:ख झेलने की मजबूरी के बारे में है कि चाहे हम कहीं, किसी भी हैसीयत में हो, रंजोगम की अंधेरी सुरंग से हमें निकलना ही है यह नाटक औरत और आदमी के रिश्ते के बारे में है, जिसके ताने-बाने चाहत और तनाव, सुख और घुटन, सपनों और सिसकियों से गूंथे गये हैं।"[26]

---

24. सुरेन्द्र वर्मा शकुन्तला की अंगूठी, पृ.80
25. वही, पृ.24
26. वही, पृ.16

नारी वर्ग का अभिशाप है कि एक बार घोखा खाने के बाद भी वह सीखती नहीं बल्कि फिर भी उसी रास्ते से चलकर और भी गहरे अंधकार में पड जाती है। कुमार और कनक प्यार के जाल में फँस जाते हैं। लेकिन नियती ने कुमार के लिए कुछ और ही एखा था कि वह एक फैलोशिप से अमेरिकन थियेटर की स्टडी के लिए जाता है और कनक किसी दूसरे के साथ शादी करती है। दुष्यंत याने कुमार, शकुन्तला याने कनक का तिरस्कार करता है तो कनक शकुन्तला की तरह इन्तजार नहीं करती । कुमार जाने के लिए तैयार हो जाता है तो निरंजन उससे कहता है, "सर आपको एक बेहद डरावनी सच्चाई का एहसास है? अगर शकुन्तला एबॉर्शन करवा लेती, तो भारतवर्ष दैट ईज़ इंडिया नहीं होता।"[27] नाटक में कनक एबॉर्शन करती है। कुमार से अपनी अंगूठी लेकर सुदर्शन को पहनाती है। समकालीन सन्दर्भ की नारी को यहाँ कनक के ज़रिए प्रस्तुत किया गया है।

कैद-ए-हयात (1967)

मिर्ज़ा गालिब की जिन्दगी पर आधारित यह नाटक उनके जीवन के ऐतिहासिक दस्तावेज़ के परे समकालीन युग-पुरुष के बहुआयामी तनावों को लोगों के सम्मुख व्यक्त कराने की कोशिश है। एक रचनाकार के रूप में समाज के विभिन्न स्तरों के बारे में लिखने या कहने के लिए वे विवश हो जाते हैं और इसी कारण अपने परिवार के बीच, समाज के बीच, मित्रों के बीच और खुद ही बहुत कुछ झेलना पडता है। इस तथ्य को

---

27. सुरेन्द्र वर्मा शकुन्तला की अंगूठी, पृ.112

केन्द्रीकृत करके मिर्ज़ा गालिब की ज़िन्दगी का पर्दाफाश करने का प्रयास सुरेन्द्र वर्मा ने किया है।

यहाँ मिर्ज़ा गालिब शायरी में अपनी ओर से नया कुछ जोडना चाहता है। लेकिन अपने को इस प्रयास में कभी-कभी अकेला महसूस करता है। उनकी निजी समस्या से, समाज की समस्या से मुक्ति पाने की उनकी कोशिश नाटक में चित्रित की गयी है। अपनी शायरी को सही अर्थ में पहचाननेवाली औरत से वह संबन्ध रखता है। मानसिक तौर पर वह पत्नी से बहुत दूर था। वह अपनी पत्नी से कहता है, घर के बाहर मैं अजूबा था, घर के अन्दर अजनबी मुझे कहीं चैन नहीं था। हर तरफ घुटन, हर स्मित अंधेरा।''[28] घर में भी अंधेरा पाकर वह रोशनी की तलाश में बीवी से अलग हो जाता है और उसकी यह खोज उसे एक दूसरी औरत तक ले जाती है और वह भी बीमारी के मारे मर जाती है। यहाँ नाटक समाप्त होता है।

पुराने ढ़ाँचे से निकलकर अपनी एक स्वतंत्र रचना के लिए निकल जानेवाले रचनाकार को कदम-ब-कदम अनेक तनावों और मुश्किलों का सामना करना पडता है। सुरेन्द्र वर्मा रचनाकार के उन संघर्षों और तनावों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि रचना का यथार्थ रचनाकार का युग परिवेश मात्र नहीं उसके सामाजिक पारिवारिक और वैयक्तिक संसार का भी पर्दाफाश है।

---

28. सुरेन्द्र वर्मा कैद-ए-हयात, पृ.71

एकांकीकार

सुरेन्द्र वर्मा का पहला एकांकी संग्रह 1979 में 'नींद क्यों रात भर नहीं आती' शीर्षक से पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ। इसमें छ: बहुचर्चित एकांकी संकलित हैं। 'शनिवार के दो बजे' 'वे नाक से बोलते हैं', 'हरी घास भर घंटों भर', 'मरणोपरान्त', 'नींद क्यों रात भर नहीं आती', 'हिंडोल इंगुर'।

शनिवार के दो बजे

इस एकांकी में 35 वर्षीय विवाहित पुरुष और 30 वर्षीय अविवाहित नौकरी पेशा स्त्री के नाजायज संबन्ध का चित्रण है। पुरुष अपने वैवाहिक जीवन से तृप्त नहीं है, लेकिन उसे अपने परिवार से बाँधकर रखनेवाली कडी है उसका एक मात्र बच्चा। नारी के परिवार का संपूर्ण दायित्व उसके कंधों पर है। दोनों अनी परिस्थितियां से ऊबे हुए हैं। ऐसी स्थिति में दोनों हर शनिवार के दो बजे दोस्त के खाली कमरे में अपनी शारीरिक जरूरतें पूरा कर लेते हैं।

वे नाक से बोलते है

इसमें पारिवारिक विघटन को एक लडकी के माध्यम से चित्रित किया गया है। वह बाप से बहुत प्यार करती है। माँ और बाप अलग-अलग रहते हैं। इसी कारण बच्ची बहुत दु:खी है और माँ से नफरत करती है। परिवार के महत्व को एक वृद्धा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। स्त्री का पर-पुरुष संबन्ध भी एक समस्या है।

हरी घास भर घंटों भर

इसमें विभिन्न आयु वर्ग के तीन दम्पतियों को जोडकर दांपत्य की दिशाओं को चित्रित किया गया है। युवा, प्रौढ और वृद्ध दम्पतियों के वार्तालाप से जीवन के प्रति लेखक का दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है। युवावर्ग तो सिर्फ आज के बारे में सोचते हैं। लेकिन प्रौढ़ दम्पति को अपनी ज़िन्दगी के बारे में और बच्चों की शिक्षा और भविष्य के बारे में भी सोचना है और वे लोग अपनी-अपनी दुनिया में व्यस्त हैं और इसको लेकर व्याकुल हो जाते हैं। वृद्ध दम्पति अपना दायित्व निभाने के बाद आराम की जिन्दगी जी रहे हैं। इस प्रकार तीन अवस्थाओं में कैसा बदलाव आ जाता है इसका चित्रण एकांकी में किया गया है।

मरणोपरान्त

इसमें स्त्री-पुरुष संबन्धों को चित्रित किया गया है। स्त्री, पत्नी और प्रेमिका की भूमिका एक साथ निभाती है। स्त्री के एक एक्सिडेंट में मर जाने के बाद पति और प्रेमी एक जगह मिल जाते हैं। मानवीय स्वभाव को दो पुरुषों अर्थात् पति और प्रेमी के माध्यम से व्यक्त किया गया है। स्त्री के मर जाने के बाद दोनों पुरुष सुखी नहीं है। एक तो कसैलेपन से भरा है तो दूसरा ग्लानी और अपराध बोध से।

नींद क्यों रात भर नहीं आती

इसकी नायिका अपने पति से अलग है। अकेलेपन की यंत्रणा भोगनेवाली इस युवति को टेलीफोन ही एकमात्र सहारा है। अपना एकाकीपन मिटाने के लिए वह टेलीफोन के नम्बर घुमाती है। इन नंबरों पर उसका संवाद एक विवाहित पुरुष, एक आदमी, आत्महत्या करने को आतुर असफल प्रेमी तथा एक बच्ची से होता है। सभी के प्रश्नों को सुन-समझकर कुछेक को निराशा से बचाते हुए वह फोन पर बात करती है। इसके बाद वह आत्महत्या कर लेती है।

हिंडोल इंगुर

स्त्री पति से तलाक लेकर अपने बच्चे के साथ मायके चली जाती है। वह दूसरा संबन्ध स्थापित करने की इच्छा में है। परिवार का सबसे बडा लडका प्रेम में धोखा खाकर रोमांस और प्रेम के दिवास्वप्नों के मायाजाल में उलझा हुआ है। इसप्रकार परिवार का टूटन इसमें चित्रित किया गया है।

कहानीकार

साहित्य के सभी क्षेत्रों में सुरेन्द्र वर्मा ने अपनी छाप छोडी है। उनके दो कहानी संकलन हैं 'कितना सुन्दर जोडा' और 'प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ'।

कितना सुन्दर जोडा

समकालीन तनावपूर्ण ज़िन्दगी के कुछ सघन क्षण इस कहानी संग्रह के ज़रिए सुरेन्द्र वर्मा प्रस्तुत करते हैं। मानवीय संबन्धों के विभिन्न पहलुओं को चाहे वे पारिवारिक हो या उसके बाहर के हो उनकी विवशता, घुटन,कुंठा, परिवर्तनशीलता, विघटन आदि का संवेदनशील एवं कलात्मक अंकन इसमें है।

इसके अन्दर चैस्टर, लेडी-किलर, मेहमान, काउण्टर, निगरानी, कितना सुन्दर जोडा, अक्स, घर से घर तक जैसी आठ कहानियाँ संकलित हैं।

चैस्टर

पिता की मृत्यु के कारण चाचा के घर में रहने के लिए मजबूर उम्मी कहानी का केन्द्र पात्र है। सर्दी के कारण बिना चैस्टर के वह बाहर नहीं निकल सकती। स्कूल भी उसके लिए नष्ट हो जाता है। घर का सारा काम करने के बाद स्कूल जाने के लिए उसके पास टाइम नहीं है और साथ ही साथ फीस का पैसा भी नहीं है। उम्मी को चैस्टर की ज़रूरत पडी तो चाची उसे मंझली चाची के यहाँ भिजवा देती है। बीच में उम्मी की दीदी, जो शादी-शुदा है, घर आ जाती है और उम्मी केलिए चैस्टर खरीदकर देती है। उम्मी कुछ कहती नहीं है। सब सहनकर जी रही है। मंझली चाची उम्मी के चैस्टर देखकर हैरान हो जाती है तो चाची कह देती है कि चैस्टर उन लोगों ने ही खरीदकर दिया है। मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति को दिखाने के साथ ही साथ पारिवारिक संबन्धों के स्वार्थपरक पहलू को भी प्रस्तुत किया गया है।

लेडी किलर

एक ही कालेज में साथ-साथ पढनेवाले राजीव और नीला अच्छे दोस्त हैं। राजीव नाम से नीला की सहेली प्रभा प्रभावित हो जाती है। लेकिन रूप देखकर उसे लगता है कि राजीव जैसा खूबसूरत नाम 'ऑर्डिनरी' दिखनेवालों में शोभा नहीं देता। रूप के अनुसार ही नाम रखना चाहिए। नीला मंजुल से प्यार करती थी। यह राजीव नहीं जानता था। उसके मन में नीला के प्रति प्यार था। नीला के घर जब वह जाता है तो उसके नाम को लेकर नीला और प्रभा के बीच की बातचीत वह सुन लेता है और वह दु:खी हो जाता है। बाद में मंजुल से मुलाकात हुई तो नीला और मंजुल के बीच का संबन्ध भी समझ लेता है। इससे दु:खित राजीव नीला द्वारा दिया गया नाम, कालीचरण, अपना लेना चाहता है। लेकिन अंत में उसे पता चलता है कि ऐसी बातें सोचने के बजाय पढना ही बहतर है। फिर भी अपने अन्दर ही अन्दर वह दु:ख महसूस करता है।

मेहमान

मोती और कौशल की दोस्ती बहुत पहले ही शुरू हो चुकी थी। कौशल बड़ा अफ्सर था, गाड़ी-वाडी सब था। मोती साधारण सा कर्मचारी था। कौशल मोती के घर परिवार समेत आ जाता है और बातों बातों में अपनी दोस्ती को सुदृढ बनाने के लिए बच्चों की शादी के बारे में भी कहते हैं। लेकिन कौशल की पत्नी को यह पसन्द नहीं आता। वह बडे घर की लडकी है और इन छोटी-मोटी बातों को वह पसन्द नहीं

करती। कौशल के आने की खुशी में मोती ने 'कैजुअल लीव' लिया था। नाश्ते के बाद कौशल विदा लेता है। मोती कौशल से कह नहीं पाता कि थोडा और रुके। वह चला जाता है और मोती अपनी 'कैजुअल लीव' को बेकार समझता है। घर के बाहर कौशल के कार के टायरों के अधमिटे निशान अपने चबुतरे के नीचे धूल-भरी सड़क पर खोजते हुए रह जाता है।

काऊण्टर

यह काफी हाऊस के काऊण्टर पर बैठनेवालों की कहानी है। काऊण्टर पर जो व्यक्ति है वह सब कुछ देखता-सुनता है। फिर भी आँखें मूँदकर अपना काम करता जाता है। लोगों के बर्ताव बैरों के बीच की लडाई और मालिक का चेहरा सब कुछ देख-समझकर भी वह कुछ करने में विवश है। हर रोज़ जो आते हैं महीने भर का उनका हिसाब करना और जिनके पास पैसा नहीं है उनका आना-जाना बन्द करना सब उन्हीं का काम है। उनके मन की हालत को कहानी के द्वारा व्यक्त किया गया है।

निगरानी

परीक्षार्थियों की निगरानी करनेवाला युवा और उनके विचार कहानी का मूल है। परीक्षार्थी के रूप में जो भी लोग बैठे हैं उनके हाल-चाल तथा भविष्य को युवा के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

कितना सुन्दर जोडा

निंदी तथा उसके भाई के माध्यम से पारिवारिक संघर्ष की कथा कही गयी है। पारिवारिक विघटन के कारण निंदी की बच्ची कभी पापा और कभी मम्मी के साथ रहती है। बच्ची आशू की चिट्ठी से पता चलता है कि वह दोनों से बहुत प्यार करती है। लेकिन मम्मी पापा के अलग रहने के कारण वह भी विवश है। निंदी के कारण भाई का परिवार भी बिखर जाता है। भाभी-भैया का निंदी के साथ का बर्ताव ठीक नहीं है। निंदी पर ज्यादा ध्यान देना भाभी पसन्द नहीं करती थी। पैसे को लेकर भी भाभी निंदी से दूर हो जाती है।

कॉमिक

आज के युवा लोगों की ज़िन्दगी को इस कहानी के माध्यम से लेखक व्यक्त करते हैं। एक प्रेमिका के नष्ट हो जाने पर दूसरी प्रेमिका की तलाश करने में किसी को भी संकोच नहीं है। स्वार्थलोलुप आधुनिक पीढी का चित्रण इसमें है।

अक्स

दो लडकियों को लेकर कथा आगे चलती है। एक का भाई दूसरे से प्रेम करता था और दूसरी भी पहले के भाई को चाहती थी। लेकिन बीच में दूसरी की शादी किसी ओर से हो जाती है। उसके बहुत दिन बाद दोनों लडकियों की मुलाकात हो जाती है और अपने भाई की हालत सोचकर पहलीवाली दु:खी हो जाती है।

घर से घर तक

एक ही छत के नीचे रहने पर भी अपने पति से अलग होकर बच्ची से प्यार करती हुई बुलू दूसरे आदमी से संबन्ध रखती है। जो नमी उसे अपने घर से नहीं मिली वह किसी दूसरे से मिलने के कारण बार-बार बुलू उस आदमी से मिलना चाहती है। दोनों के बीच शारीरिक संबन्ध भी हो जाता है। बुलू जिस ऑफीस में काम करती है वह आदमी भी उस ऑफीस में काम करनेवाला है। संबन्ध की मांग बढ जाने के कारण वह तबादला लेकर दूसरे शहर चला जाता है। फिर किसी कारणवश पुरानी स्मृतियोंवाले शहर में वह आ जाता है। दोनों की मुलाकात एक होटल में हो जाती है और बुलू अपने को संभाल नहीं पाती। उसी क्षण अपने को भूल जाती है और उस आदमी से शारीरिक संबन्ध भी करती है। वापस घर जाकर पहले की तरह व्यवहार करती है। बच्ची के साथ मिलती-जुलती है। पति से कोई संबन्ध नहीं रखती। समाज के ह्रास का चित्रण करते हुए सुरेन्द्र वर्मा हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

प्यार की बातें तथा कहानियाँ

प्रत्यक्ष वर्तमान में घटित कहानियों की रचना इस संकलन में की गयी है। रचनाकार वास्तविक घटनाओं को फैंटसी का आभास देकर पाठकों के लिए समस्याएँ छोड देता है। सहज मानवीय इच्छा के रूप में प्रेम को लिया गया है। जीवन की जटिल उलझनों को समझने और मूर्त को अमूर्त बनाने का कार्य उन्होंने इसमें किया है। 'कितना सुन्दर जोडा' कहानी संकलन की दो कहानियाँ 'कॉमिक' और 'काउण्डर' भी

इसमें है। इसके अलावा एक हफ्ता, सहारा, डबल बेड, सलाहकार, पुष्पशय्या, प्यार की बातें आदि कहानियाँ संकलित हैं।

एक हफ़्ता

पारिवारिक टूटन को बच्चे के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। अतुल अपनी माँ के घर से वापस जा रहा था। ट्रेन में बैठकर वह बीते हुए दिनों में खो जाता है। बचपन की याद करते वक्त उसे हर कहीं अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है। माँ और बाप के बीच कोई संबन्ध नहीं था। माँ बीमारी के कारण लेटी पडी है और वह डॉ. निखिल के साथ संबन्ध रखती है। दूसरों के घर की बात जानने के लिए उत्सुक लोगों की ओर ध्यान दिलाने के लिए कहानीकार अतुल की अध्यापिका को कहानी में ले आते हैं। अतुल के बडे होने के बाद माँ और बाप का तलाक हो जाता है। पारिवारिक टूटन बच्चे की मानसिकता को कैसे मोड देता है यह इस कहानी द्वारा स्पष्ट किया गया है। माँ डॉ. निखिल के साथ दूसरी शादी कर लेती है और माँ के टेलीग्राम मिलने पर माँ को देखने के लिए वह एक हफ़्ते के लिए जा रहा है। और वापसी में बीच बीच में उन सात दिनों की याद करता रहता है।

सहारा

कभी-कभी अजनबी होकर आनेवाले लोग ज़िन्दगी में कितने निकट के हो जाते हैं इसके लिए यह कहानी अच्छा उदाहरण है। नीरू पिता का तबादला हो जाने पर नये शहर आ गयी है। कॉलेज में दाखिले के लिए मिस. कश्यप के पास जाती है और

धीरे-धीरे दोनों के बीच सुदृढ पनपने लगता है। मिस. कश्यप अकेली रहती है और नीरू के आने पर उसे सहारा मिलता है। नीरू भी उसके साथ समय बिताना पसन्द करती है। जुलाई से लेकर अगले अप्रैल तक नीरू और मिस. कश्यप एक दूसरे का सहारा बन जाते हैं। अप्रैल में पिता का तबादला लखनऊ में हो जाता है। इससे दोनों दुखी थे। दोनों का संबंध इससे स्पष्ट हो जाता है, "नीरू को लगा उनके बीच के रेशमी ताने-बाने टूटते जा रहे हैं जैसे वे हर क्षण उनसे दूर होती जा रही है और अब कभी उसने घबराकर उनकी बँह छुई और एकदम टूटकर बोली, "आप मेरे खतों का जवाब तो देंगी न? आप मुझे भूलेंगी तो नहीं ?"

उन्होंने रुँधी आवाज में बडी मुश्किल से कहा, "न कभी नही तुम जानती हो आगे कुछ कहना असंभव था ।"[29]

डबल बेड

इसमें परपुरुष, परनारी संबन्ध के बारे में कहा गया है। डबल बेड को पति-पत्नी के बीच का समझौता कहा गया है और उसको हटा देने से संबन्ध में आनेवाली दरार को सूचित करते हैं। विश्वविद्यालय का अध्यापक.पत्नी रीना और बच्ची नीना के साथ ज़िन्दगी बिता रहा था। वह अपनी पत्नी के चिरपरिचित जिस्म से कभी-कभार ऊब जाता है। पडोस में आये रमन की पत्नी स्मिता के साथ उसका संबन्ध शुरू होता है और इस बीच रमन को अलग विश्वविद्यालय से नियुक्ति पत्र आता है और जाने के लिए

---

29. सुरेन्द्र वर्मा प्यार की बातें तथा अन्य कहानियाँ, पृ.36

तैयार हो जाता है। एक दिन रमन और रीना घर में नहीं थे और उस दिन स्मिता और उसके बीच शारीरिक संबन्ध संपन्न होता है। बाद में स्मिता के मन में पछतावा होता है और वह डॉक्टर से बचकर रहती है। स्मिता और रमन चले जाते हैं। दु:खी डॉक्टर को थोडी देर बाद जीवन की सच्चाई का एहसास हुआ कि कुछ ही दिनों बाद स्मिता स्मृति बन जाएगी। जीवन की वास्तविकता को यहाँ चित्रित किया गया है।

सलाहकार

समाज में ऐसे बहुत सारे लोग होते हैं जो दूसरों को सलाह देते रहते हैं। ऐसे एक युवक चिंतामणी को कहानी में चित्रित किया गया है। उसको कुछ काम नहीं था। दूसरों को सलाह देना उसका काम है। घर में भी कुछ सहायता नहीं करता बस खाते-पीते सोते रहते हैं। सलाह देना बहुत आसान कार्य है। लेकिन सहायता करना मुश्किल काम है।

पुष्पशय्या

बचपन में सुख-सुविधा में पली लडकी को वह सब नष्ट होने पर बुरा लगता है। कॉलेज में पढते वक्त बीमार बुआ की देख-भाल करने के लिए लखनऊ चली जाती है और पढाई उधर शुरू करती है। वह बहुत सुन्दर थी और अपने सौंदर्य पर खुद मुग्ध थी। सहेली नीना के घर में अमित से मुलाकात होती है। अमित को वह धनी लडका समझती है और दोनों के बीच घनिष्ठ मित्रता होती है। अमित के दो कमरों वाला घर देखकर वह कुछ विचलित हो जाती है। पडोस के घर की शादी में भाग लेने के लिए

आया ब्रज, जो बहुत धनी है, शादी का प्रस्ताव रखता है और घर वाले खुश हो जाते हैं। उसको भी इसमें दु:ख नहीं था। लेकिन शादी के पहले अमित को वह समर्पित करती है। उसको अमित के साथ का संबन्ध पुष्पशय्या लगती है। और ब्रज के साथ शादी करने के बाद उसकी जिन्दगी में पुष्पशय्या की जगह अंधेरा छा जाता है।

प्यार की बातें

रेस्तराँ में प्रेमिका की प्रतीक्षा में प्रेमी बैठा हुआ है। एक और युवती किसी और की प्रतीक्षा करते हुए उसकी बगलवाली कुर्सी पर बैठती है। दोनों अलग-अलग ढंग से प्रतीक्षालीन हो जाते हैं। पहले प्रेमिका आ जाती है, और फिर लडका। कहानीकार कहानी को इस प्रकार आगे बढाता है कि अंत में ही हमें पता चलता है कि वह लडका युवती का बेटा है। दो प्रकार के संबन्धों के बीच की बात-चीत को इसमें चित्रित किया गया है। माँ-बेटे के प्यार और प्रेमी-प्रेमिका के प्यार की बातों को हम इसमें देख सकते हैं।

व्यंग्यकार

व्यंग्य आज की ज़िन्दगी की नब्ज को पकडने का एक सक्षम माध्यम है। सुरेन्द्र वर्मा के बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण उन्होंने इस क्षेत्र में भी प्रवेश करने का साहस किया है। उनका एक ही व्यंग्य निबन्ध है 'जहाँ बारिश न हो'। इसमें नये तेवर और नयी भंगिमाओं के साथ समकालीन ज़िन्दगी की विद्रूपताओं को विसंगतियों को उभारा है। इसके माध्यम से खुद को और आस-पास की दुनिया को भी देख-परख कर सकते हैं। मीठे के साथ-साथ कडवाहट की रुचि भी चख सकते हैं। इसमें 16 निबंध

संकलित हैं। अपनी रोज़मर्रा की जिन्दगी में जो भी दृष्टिगत होता है, उसका समावेश इनमें हुआ है।

भीड में अकेलापन महसूस करते हुए, जीवन में आस्था रखनेवाली कुछ चीजें ढूँढकर समकालीन जिन्दगी की पहचान वे करते हैं। अपने-अपने काम में व्यस्त लोगों की पंक्ति में पीछे रहने से कोई फायदा नहीं। वर्तमान में एक पैर है तो भविष्य में भी एक रखना चाहिए जो स्थिर है। अपने अधिकारों का दायित्व अपने ही ऊपर निहित है। दायित्व निभाते वक्त यह सोचना ज़रूरी है कि बीच में कोई आ जाए तो क्या करना है? उससे बचकर रहने से अच्छा है संघर्ष करना।

उपन्यासकार

नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त सुरेन्द्र वर्मा सभी विधाओं में अपनी क्षमता व्यक्त कर चुके हैं। उनका पहला उपन्यास है 'अंधेरे से परे'। इसके बाद उन्होंने 'मुझे चाँद चाहिए', 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' जैसे उपन्यास भी लिखे हैं।

अंधेरे से परे (1980)

आज की मजबूर भागती-हॉफती ज़िन्दगियों को केन्द्र बनाकर इस उपन्यास की रचना की गई है। टूटते हुए पारिवारिक संबन्ध इसकी मूल समस्या है। अपने ही घर में अजनबी की तरह रहनेवाला बेरोज़गार युवा है गुलशन। घर में माँ, बहन, बहन का पति और बच्चा सोमु और एक बिल्ली है। बहन पति से अलग होकर अपनी पसन्द की ज़िन्दगी जी रही है। यह सब देखकर गुलशन उर्फ गुल्लू अपने अन्दर ही अन्दर सिमट जाता है। गुल्लू को नौकरी नहीं थी और पापा के दोस्त के दफ्तर में मामूली रकम के

लिए 'टाइपराइटिंग' कर रहा था। वह अपने को अकेला और कायर महसूस करता था। वह अंधेरे का साथी था। अपने कमरे के बारे में उसका ख्याल था, "एकटक अपने कमरे की चारों दीवारें देखता हूँ आठ बाई दस का फैलाव, पीछे खुलनेवाली काली सलाखों की खिडकी एक बिस्तर, एक मेज, एक आलमारी बाई दीवार में बनी आलमारी में किताबों की कतारें और गंध बोझिल अतीत की गंध। दुष्कर वर्तमान की गंध। सूनापन वीरानी चौबीस सालों के अनचाहे, असह्य बोझ की बू. ।"[30] एक दिन उसने अपने हिसाब से ज्यादा रोटी खा ली थी। तभी माँ की नजर उस पर पडी। गुल्लू उसे सह नहीं पाता और वह आत्महत्या की कोशिश करता है। लेकिन बच जाता है।

गुलशन को कॉपी राईटर की छोटी सी नौकरी मिल जाती है। विज्ञापन से संबन्धित कार्यक्रम में भाग लेते वक्त उसका परिचय एक शादी-शुदा औरत मधु से हो जाता है और वह संबन्ध सीमा लांघ जाता है। अपने अंधेरे पलों से बाहर आने की ललक उसमें आ जाती है। मधु उससे अंधेरे का संबन्ध मात्र चाहती थी। लेकिन गुल्लू जानना चाहता था कि उनका संबन्ध कैसा था, "अपने संबन्धों को लेकर हमें अब कुछ फैसला कर लेना चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है, मैं बिल्कुल निश्चित हूँ कि तुम्हारे बिना अब "[31] इसका जवाब मधु दे नहीं पाती। उस दिन के बाद वह मधु से दूर रहने लगता है।

---

30. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.3
31. वही, पृ.144

जिस प्रकार गुल्लू एक विवाहित औरत से संबन्ध स्थापित करके उसे एक थियेटर ले जाता है उसीप्रकार होटल में वह अपनी बहन को अन्य पुरुष के साथ देखता है। गुल्लू को मालूम है कि बहन पति से इसलिए दूर है कि पति की नौकरी उसके हाथ से छूट गयी और वह दूसरी नौकरी करना नहीं चाहता है। पहली नौकरी से उसे 'सस्पेंड' कर दिया गया था। वह अभी भी उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। बिंदो इसलिए अपना अस्तित्व खोजकर अन्यपुरुष के साथ निकल जाती है। अपने बच्चे पर भी वह ध्यान नहीं देती।

गुलशन की दोस्ती दफ्तर की नलिनी से होती है। नलिनी अपने प्रेमी से गर्भवती हो जाती है और 'एबोर्शन' के लिए वह गुलशन का सहारा लेती है। मधु से संबन्ध टूटने के बाद वह अंधेरे में रहना नहीं चाहता वह नलिनी के साथ अंधेरे से बाहर आ जाता है। अंधेरे से परे जाने का निश्चय उनका आशावादी दृष्टिकोण है।

मुझे चाँद चाहिए (1993)

'मुझे चाँद चाहिए' सुरेन्द्र वर्मा का लोकप्रिय उपन्यास है। अभाव-जर्जर, पुरातनपंथी ब्राह्मण परिवार की महत्वाकांक्षी लडकी वर्षा वसिष्ठ की कहानी इसमें है। अपना भविष्य खुद तय करने के कारण उसे बहुत कुछ सहना पडा। मध्यवर्गीय परिवार की रूढिवादी परंपरा में फंसे वर्षा के पिता तथा घरवाले उसके एक-एक कदम पर जंजीर डालते हैं। लेकिन इसको तोड़कर वह आगे चलने का निश्चय करती है।

मिश्री लाल डिग्री कॉलेज की अध्यापिका दिव्या कत्याल ने ही उसका ध्यान नाटक की ओर खींच लिया था। सकुची मध्यवर्गीय कन्या की महत्वाकांक्षा की

सीमा को पार करने की ताकत उसे दिव्या ने दी थी। दिव्या ही वर्षा का सहारा थी। डिग्री के बाद वह नाट्य विद्यालय में दाखिले की कोशिश करती है। लेकिन घरवाले इसके विरुद्ध थे। अपने परिवार के तीखे विरोध का पात्र बनने पर भी वह आगे चलने को तैयार हो जाती है। नाटक से शुरू करके सिनेमा तक उसने अपना कदम बढ़ाया। कला-कुंठा में तपते हुए उसने आगे चलने का प्रयास किया। नायिका वर्षा के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने मध्यवर्ग की सच्चाई को साबित किया है।

नाटक के क्षेत्र में काम करनेवाले कलाकारों की ज़िन्दगी को, उनकी दुःखद परिस्थितियों को इसमें व्यक्त किया है। नाट्यविद्यालय की शिक्षा के बाद काम की तलाश करनेवालों की दुःखद स्थिति को और नाकामयाबी पर जीवन समाप्त करने की कोशिश को वास्तविकता के साथ चित्रित किया गया है। प्रेमी हर्ष से मुलाकात नाट्य विद्यालय में हुई थी। सर्वोच्च अभिनेता था हर्ष। लेकिन उसका अहम उसे कालिगुला की तरह कुत्तों के बीच मरने को विवश करता है। साथियों की कामयाबी औरअपनी नाकामयाबी पर हताश होकर 'ड्रग्स' के 'ओवरडोज' के कारण वह मर जाता है। लेकिन तब तक वर्षा की कोख में हर्ष का बच्चा जन्म ले चुका था। अविवाहित नारी का गर्भवति होना समाज सह नहीं सकता। फिर भी वर्षा बच्चे को जन्म देने के लिए तैयार हो जाती है।

सिनेमा के क्षेत्र में कलाकारों को जिन-जिन विसंगतियों का सामना करना पडता है और पत्र धर्म का फिसलन कैसे और क्यों हो रहा है आदि को भी उपन्यास के माध्यम से लेखक ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। समाज में निरंतर चली आने वाली रूढ़ीवादी

ताकतों के परे जाने की प्रेरणा नारी को इसमें से मिलती है। नारी के अंतरंग को तन्मयता के साथ प्रस्तुत करने का कार्य उन्होंने किया है। इसके पात्रों के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने एक सर्वथा नई तथा प्रासंगिक समस्या को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता (1998)

सुरक्षा और समृद्धि का सपना संजोते हुए शिक्षित-सुंदर नील और अल्पशिक्षित भोला अवसर और समृद्धि के महानगर मुंबई पहूँचते हैं। भोला को 'अंडरवार्ल्ड' पनाह देता है तो नील मिसेज़ दस्तूर का शोध सहायक। अंडर्वार्ल्ड भोला का विश्वास बढाता है और वह तरक्की करता जाता है। वहाँ नील असंतुष्ट अधेड धनाढ्य महिलाओं के लिए पुरुष-वेश्या बन जाता है। उसका सितारा ऊँचा चढता जाता है। 'फ्लैट', 'टेलीफोन', गाडी, विदेशी प्रसाधन और काम सिर्फ आत्म को दबाकर शरीर को बेचना। सोमपुरिया सेठ की बेटी पारुल उससे प्रेम करके गर्भवती हो जाती है। पारुल तो जयंत की पत्नी थी। और नील नैन से प्यार करता था। वह विवाहित पारुल से शादी करना नहीं चाहता था। नील और नैन के बारे में पता चलने पर पारुल नैन से यह सब बता देती है और पारुल का घराना नील को कुचल देता है। नील भोला के जरिए माफिया तक जाता है तो माफिया भी हत्या की सुपारी लेकर नील को मार डालता है। भोला हतप्रभ और सुन्न हो जाता है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफसर से प्रतिशोध करने की ताकत इकट्ठा करने के लिए आया नील मायानगरी के जाल में फँस जाता है। नील सब कुछ खो देता है। अपनी माँ को, प्यार को, इज्ज़त को।

वर्तमान उपभोक्तावादी समाज में जीने की एक ही शर्त है अपनी किसी योग्यता को बाज़ार में बेच देना। छोटे बाजार में छोटी कीमत बडे बाज़ारों में ऊँची कीमत। लेकिन अपनी पूरी कीमत वसूलता है चाहे गन्ने की तरह निचोडना ही क्यों न पडे। इस उपन्यास के द्वारा आधुनिक जीवन के खोखलेपन को खुल्लम-खुल्ला प्रस्तुत किया गया है।

इसप्रकार उनका रचना व्यक्तित्व बहुआयामी एवं विराट है। साहित्य की सभी विधाओं में रुचि रखने के कारण सभी में काम करने का प्रयास उन्होंने किया है। समकालीनता के दौर में बिल्कुल भिन्न तीन कथानकों को लेकर उनके उपन्यास तीन खंभों की तरह खडे हैं। सुरेन्द्र वर्मा निस्सन्देह समकालीन रचनाकार हैं। उन्होंने अपने समय के जीवन यथार्थ की अंतरंगता को पहचानने तथा उसको सशक्त ढ़ंग से संप्रेषित करने का कार्य भी किया है। इसके लिए उन्हें सक्षम और सफल बनाया उनकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समझ ने। इस समझ के बिना समकालीन बनना नामुमकिन है। क्योंकि समकालीनता गतिशीलता है जैसे नरेन्द्रमोहन ने कहा, "समकालीनता का अर्थ किसी कालखंड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान भर नहीं हैं बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल स्रोत तक पहूँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है।"[32] यह विवेक उनकी रचनाधार्मिता का मूल मंत्र है। इसलिए वे अपने समय के साथ सार्थक सरोकार रख सके हैं।

---

32. डॉ. नरेन्द्र मोहन समकालीन कहानी की पहचान, प्रस्तावना

दूसरा अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवादी संस्कार

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवादी संस्कार

किसी भी देश को अधीनस्थ करके उस पर अपना सब कुछ थोपना वास्तव में उपनिवेशवाद है। शासक राष्ट्र के अनुरूप पराधीन देश में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आ जाते हैं। शासक राष्ट्र अपना अधिकार पराधीन देश पर जमाते हुए अपने को सर्वोच्च साबित करने का प्रयास करता है। शासक वर्ग के चले जाने के बाद भी उनके संस्कार का कुछ अंश पराधीन देश और जनता पर हमेशा के लिए रह जाता है। उपनिवेश में पले ये लोग जल्दी उससे मुक्ति नहीं पा सकते। उन पर उसका प्रभाव बना रहता है। नए परिवेश में भी उनकी ओर का लगाव मज़बूत बनता जाता है। यही बात भारत में घटित हुई है। अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी उनके संस्कार के प्रति अब भी मानसिक गुलामी बनी रहती है। अब भी भारतीय उनके सब कुछ को श्रेष्ठ मानते हैं, उन्हें स्वीकारते रहते हैं। यही नव-उपनिवेशवादी संस्कार है।

"अठारहवीं सदी के मध्य से और विशेषकर उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही भारत क्रमश: आधुनिक पूँजीवाद का अंग बन गया, हालांकि उसकी स्थिति अधीनस्थ अथवा उपनिवेश की थी।"[1] एक ही देश में साथ-साथ रहने से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होना स्वाभाविक ही है। पूरे इतिहास में संस्कृतियों के बीच आदान-प्रदान होने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। विभिन्न संस्कृतियों से तत्वों को ग्रहण करके विभिन्न संस्कृतियाँ समृद्ध हुई हैं। फिर भी हर राज्य की अपनी मूल संस्कृति होती हैं। भारतीय संस्कृति की भी अपनी मूल संस्कृति होती है। हमारे अपने आचार-विचार होते हैं। उसमें दीगर

---

1. बिपन चंद्र भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृ.2

संस्कृतियों एवं आचार-विचारों के प्रवेश होने पर हमारी संस्कृति की असलियत में परिवर्तन होने लगता है। चौदहवीं शती से अनेक लोग व्यापार के लिए यहाँ आया करते थे। पर उन्नीसवीं शती के मध्य तक आते-आते अंग्रेजों ने पूरे भारत को अपने कब्जे में कर लिया। अत: भारतीय संस्कृति में उस समय तक आए विभिन्न देशों की संस्कृति का प्रभाव हम देख सकते हैं। पर विशेष रूप से कुछ अधिक गहराई में अंग्रेज़ों का प्रभाव अधिक पडा था। इस प्रभाव ने भारतीय संस्कृति पर बुरा असर डाल दिया। सामाजिक जीवन का मूल्य नष्ट हो गया। पुरातन निष्ठा एवं नैतिक आदर्शों का ह्रास हुआ। परिणरमस्वरूप समाज में संकीर्णता और आदर्शहीनता बढ गयी। भारतीय जनता विदेशी संस्कार को ही अनूठा एवं अपूर्व मानकर उसे यों ही अपनाने तथा उसका अनुकरण करने लगी। परिणामत: भारतीयों को भारत का अपना सब कुछ धीरे-धीरे नष्ट होने लगा। वह अपनी अस्मिता को खोने लगा। वास्तव में उपनिवेशवादी समाज के केन्द्र में पूँजीवादी दृष्टिकोण है। वह जानबूझकर अधीनस्थ देश की हर गतिविधि को अपनी मानसिकता के अनुकूल ढाल लेने का प्रयत्न करता है। वह सुनियोजित है, ''उसका एक सुनियोजित संपूर्ण ढाँचा होता है, एक विशिष्ट सामाजिक रचना (व्यवस्था) होती है जिसमें अर्थव्यवस्था और समाज का संचालन ऐसे विदेशी पूँजीपति वर्ग के हाथ में होता है जो उपनिवेश (अथवा अर्ध-उपनिवेश) में एक अधीनस्थ, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक ढाँचे के माध्यम से काम करता है। इस ढाँचे का स्वरूप विश्वव्यापि व्यवस्था के रूप में पूँजीवाद के ऐतिहासिक विकास की अवस्थाओं के

अनुरूप परिवर्तित होता रहता है।''[2] इसी पूँजीवादी मानसिकता की सुनियोजित वृत्ति का परिणाम है भारत की उपनिवेशवादी व्यवस्था।

अंग्रेज़ों ने भारत को पूर्णत: बदलने का षड्यंत्र रचा था। उसने भारतीयों को अपनी संस्कृति से अलग करके उनकी संस्कृति की ओर आकृष्ट कराने का तंत्र सबसे पहले रचा था। इसके लिए उन्होंने अनेक उपाय लिये हैं, ''मैकाले की शिक्षा नीति ने औपनिवेशिक तानेबाने में प्रभेद के साथ पश्चिमीकरण का तत्व भी जोड दिया था, 'हमें भारत में इस तरह की एक श्रेणी पैदा कर देने का भरसक प्रयास करना चाहिए जो कि हमारे और करोडों भारतवासियों के बीच जिन पर हम शासन करते हैं, समझाने-बुझाने का काम करे। ये लोग ऐसा होने चाहिए, जो केवल रक्त और रंग की दृष्टि से हिन्दुस्तानी हो, किन्तु जो अपनी रुचि, भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अंग्रेज़ हो।' (भारत में अंग्रेज़ी राज, सुन्दरलाल)''[3] भारत के लोग इस षड्यंत्र से अनजान थे। हमें एक फायदा तो यह हुआ कि शिक्षा के स्तर पर लोग आगे बढे। लेकिन हमारी कमज़ोरी यह थी कि जो कुछ वे यहाँ लाए सबको हमने यों ही स्वीकार किया। कुछ लोगों ने इसका विरोध तो किया था लेकिन ताकतवर अंग्रेज़ों के सामने कुछ कर नहीं पाये। यह क्रम लगभग दो सौ साल तक रहा। 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ। अंग्रेज़ चले गए। पर उनका और उनकी संस्कृति का प्रभाव अब भी भारत में बना रहता है। अब भी पाश्चात्य देशों में जो परिवर्तन होता रहता है उसीके अनुरूप अपने को ढ़ालने में भारतवासी दत्तचित्त हैं।

---

2. बिपन चंद्र भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृ.23
3. नया ज्ञानोदय, सितंबर 2004

यह भी नहीं भारतीयों को अभारतीय बनाने का बोधपूर्वक परिश्रम अब भी पाश्चात्यों की ओर से होता ही रहता है। यह उतना प्रत्यक्ष नहीं जितना अस्वतंत्र भारत में विद्यमान रहा। ये प्रभाव ही सचमुच नव-उपनिवेशवादी ताकतों के जनक हैं।

स्वतंत्र भारत की स्थिति उतनी ही दर्दनाक थी, जितनी पहले थी। सत्ता का हस्तांतरण मात्र हुआ। एक नये पूँजीपति वर्ग ने अपने लिए जगह बना ली। अंग्रेज़ों के जैसे वे भी राज करने लगे। आम जनता को यह एहसास दिलाया गया कि पश्चिनी सभ्यता और संस्कृति ही श्रेष्ठ है। वे उसके पीछे पड गए और अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गए। प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा उसकी संस्कृति है। आत्मा में परिवर्तन लाना असंभव है। लेकिन भारत की आत्मा में परिवर्तन लाने की कोशिश तब से जारी है जब से पश्चिमी संस्कृति का आतंक भारत पर होने लगा था। भारतीय जनता, विशेष कर नगरवासी उससे प्रभावित होने लगे हैं। विश्व की अन्य संस्कृतियों से मिलते-जुलते रहना सराहनीय कार्य है। लेकिन इस पर ध्यान देना जरूरी है कि हमारा अस्तित्व संकट में न पड जाए। हमें अपनी आत्मा को संजोकर रखना अनिवार्य है।

यह तो ठीक है कि भारत ने पश्चिमी संस्कृति से बहुत कुछ पाया है। पश्चिम में नारी शिक्षा और जागरण को देखकर भारत ने इस मानसिकता को अपनाया और यहाँ भी नारी को शिक्षित और जागृत करने का कार्य शुरू हो गया। गद्य साहित्य की लगभग सभी विधाओं को पश्चिम से स्वीकार किया गया। उसमें उपन्यास की बात विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि भारत में औपनिवेशिक दासता के प्रति असंतोष और विद्रोह की चेतना से उसका जन्म हुआ हो। इसप्रकार पश्चिम से बहुत सी बातें आ गयीं जिससे

भारत की भलाई ही हुई थी। लेकिन यहाँ के लोग मात्र इससे तृप्त नहीं रहे। वे पाश्चात्य सभ्यता के पीछे पडकर उनका अन्धानुकरण करने लगे तो भारतीय संस्कृति में दरारें पडने लगीं।

आज भारतीय पाश्चात्य संस्कृति के जाल में फँसे हुए हैं। सामाजिक व्यवस्था का आधार ही बदल गया है। समाज में, व्यक्ति में, परिवार में इसका असर देख सकते हैं, "औपनिवेशिक व्यवस्था व्यक्ति और समाज के बीच की खाई को हमेशा और चौडा करती जाती है और दोनों ही एक-दूसरे को अपरिचित या प्राय: शत्रुता की दृष्टि से देखते हैं।"[4] भारतीय संस्कृति, चिंतन और जीवन मूल्यों का आज पतन हो रहा है। पश्चिमी सभ्यता के बाह्याकर्षण से अभिभूत होकर जब लोग उसके पीछे भागने लगे तो उसके खोखलेपन को दर्शाने और समझा देने के लिए समकालीन साहित्यकारों ने साहित्य को माध्यम बनाया। उन्होंने अपनी संस्कृति की गरिमा को ऊँचा दिखाने तथा अपने पथभ्रष्ट होने की बात से लोगों को अवगत कराने का कार्य किया। विनोद कुमार शुक्ल के 'दीवार में खिडकी रहती थी', कृष्णा सोबती के 'समय सरगम', रवीन्द्र वर्मा के 'निन्यानबे' जैसे उपन्यास इस ओर के कुछ प्रयत्न मात्र हैं।

नव-उपनिवेशवाद और सामाजिक गतिविधि

औपनिवेशिक दासता से पीडित समाज ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मुक्ति की सांस लेना चाहा। लेकिन यहाँ एक ऐसे पूँजीपति वर्ग का उदय हो चुका था जिसके

---

4. राजेन्द्र यादव उपन्यास स्वरूप और संवेदना, पृ.143

फलस्वरूप आम जनता की वास्तविक मुक्ति असंभव हो गई। आर्जित स्वतंत्रता में उन्हें कोई फरक दिखायी नहीं दी। संत्रास, कुंठा, घुटन आदि से लोग तडपने लगे। पूँजीपति वर्ग अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए समाज पर शासन करते रहे। उनके लिए आसान मार्ग था अंग्रेजों के कार्य-कलापों का पीछा करना। वे उसीके अनुसार समाज का संचालन करते रहे। लेकिन स्वार्थ के कारण उनमें अंतर्विरोध पनपने लगा और इसके फलस्वरूप प्रशासन, राजनीति, अर्थव्यवस्था आदि भी बदलने लगे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राष्ट्र का संचालन करने के लिए एक प्रशासनिक ढाँचा होना ज़रूरी था। हमारे देश में आज जिस प्रशासनिक ढाँचे का अनुसरण हो रहा है, वह अंग्रेज़ों द्वारा बनाये गये कानूनों का अनुकरण ही है। पर अजीब बात यह है कि उनमें भारतीयता नहीं के बराबर है। सत्ता और जनता की भाषा में अंतर आ चुका है, "हमारी राजनीति अब योरोप से आयातित राजनीति हो गयी है और पश्चिमी तौर-तरीकों की नकल करके हम अपने भविष्य का निर्माण कर लेना चाहते हैं।"[5] इसमें ध्यान देने की बात यह है कि पश्चिम के राजनीतिक चिंतन का जन्म जिस परिस्थिति में हुआ था उससे बिलकुल भिन्न परिस्थिति थी भारत की। हमें स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अंग्रेजियत से जर्जर हमारी संस्कृति को आधार बनाकर राजनीतिक-प्रशासनिक ढाँचे का निर्माण कर लेना चाहिए था। लेकिन किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया, "यह अजीब बात रही कि भारत के संविधान निर्माताओं ने भारतीय लोकतंत्र की संरचना करते समय विदेशियों के

---

5. नरेन्द्र मोहन आज की राजनीति और भ्रष्टाचार, पृ.17

इस षड्यंत्र को अनदेखा कर दिया, जिनका उद्देश्य भारत को बुरी तरह विभाजित कर डालना था।''[6]

यहाँ के राजनीतिज्ञों का राजनीतिक चिंतन भारतीय संस्कृति से कम और पश्चिम से अधिक प्रभावित था। जातिवाद भारत का अभिशाप था। अंग्रेज़ों ने ही भारत का विभाजन किया था,वह भी हिन्दु-मुस्लीम दंगे के माध्यम से। भाई-भाई की तरह रहे हिन्दु-मुस्लीम के मन में सांप्रदायिकता की आग लगाकर उसमें तेल डालने का कार्य अंग्रेजों ने किया कि हमारी एकता में दरार पड़ जाए। लोग इससे अवगत नहीं थे और अंग्रेज़ों ने जो चाहा वह हो गया। आज की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। फिर भी इसको अनदेखा करके पश्चिमी संस्कृति के पीछे लोग भागे जा रहे हैं। भारतीय समाज का विश्लेषण जिस रूप में अंग्रेजी उपनिवेशवादियों ने किया है, वह आज भी जारी है। आज भी भारत के प्रबुद्ध वर्ग का बहुमत यह मानता है कि भारत की वर्तमान राजनीतिक एकता अंग्रेज़ों की देन है। लेकिन यह षड्यंत्र भारतीयों ने देखा नहीं कि भारतीय संस्कृति और इतिहास का विभाजन हुआ है साम्प्रदायिकता के तहत।

इसप्रकार देखें तो पता चलता है कि उपनिवेशवादी संस्कृति का असर आज भी भारत में बुलन्द है और उसका नया नाम है नव-उपनिवेशवाद। इसका प्रसार हर पल होता ही रहता है। भारतीय जनता को इससे अवगत कराने के लिए समकालीन साहित्यकार कर्मक्षेत्र में आ गये। महर्षि अरबिन्दो कहा करते थे, ''युगों का भारत

---

6. नरेन्द्र मोहन आज की राजनीति और भ्रष्टाचार, पृ.38

मृत नहीं हुआ है और न उसने अपना अंतिम सृजनात्मक शब्द उच्चरित ही किया है, वह जीवित है और उसे अभी भी स्वयं अपने लिए और मानव लोगों के लिए बहुत कुछ करना है और जिसे अब जागृत होना आवशयक है, वह अंग्रेज़ियत अपनानेवाले पूरब के लोग नहीं, जो पश्चिम के आज्ञाकारी शिष्य हैं बल्कि आज भी वही पुरातन अविस्मरणीय शक्ति, जो अपने गहनतम स्वत्व को पुन: प्राप्त करे, प्रकाश और शक्ति के परम स्रोत की ओर अपने सिर को और ऊपर उठाये और अपने धर्म के संपूर्ण अर्थ और व्यापक स्वरूप को खोजने के लिए उन्मुख हो।''[7] इसी उद्देश्य से साहित्य जगत में सृजनात्मक कार्य हो रहे हैं। हमारी अपनी आत्मा को पुनर्जीवित कराने तथा हमारी संस्कृति की गरिमा विश्व में फैलाने का दायित्व साहित्यकारों के हाथों में है। समकालीन साहित्य में इसका प्रयास हम देख सकते हैं। हमसे छूटे मूल्यों को वापस लाने का प्रयत्न यहाँ देख सकते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नव-उपनिवेशवाद का प्रभाव

अपने समय के यथार्थ का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में उपन्यास काफी समर्थ है। इसलिए समाज का सीधा साक्षात्कार इस विधा में देखा जा सकता है। अपने समय के साथ संबन्ध रखने वाले साहित्यकार समाज के अहित तथ्यों से लोगों को परिचित कराने का कार्य करते हैं। समकालीन साहित्यकार इसके विरुद्ध विद्रोह करने की ताकत भी प्रदान करते हैं। उनकी यह कोशिश अपनी रचनाओं में देख सकते हैं। पाश्चात्य संस्कृति में डूबे भारतीयों को उससे बचाने का कार्य रचनाकार करते हैं। औपनिवेशिक दासता के कारण अंग्रेज़ों ने जो भी दान में दिया उन सबको भारत ने स्वीकार किया।

---

7. नरेन्द्र मोहन आज की राजनीति और भ्रष्टाचार, पृ.17

अंत में भारत को विभक्त करके स्वतंत्रता भी दी। यह सबसे बडी अमानवीय वृत्ति थी। यह सचमुच अंग्रेज़ों का षड्यंत्र था। उस समय किसी ने इस पर अधिक ध्यान नहीं दिया था। उसने हमें जो कुछ दिया उससे अधिक हमने ग्रहण किया। हम उनकी संस्कृति के बडे भक्त बन गए।

भारतीय संस्कृति का यह ह्रास कुछ लोगों के मन को चुभता रहा। इसके प्रति आवाज उठाने के लिए कुछ साहित्यकार आगे आए। हमारी संस्कृति की महानता को दिखाने तथा पाश्चात्य संस्कृति के बुरे प्रभाव को अपनी रचना द्वारा लोगों को दिखाने का कार्य इन रचनाकारों ने किया है। समकालीन रचनाकार सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में यह प्रयास देख सकते हैं। अपने उपन्यासों में अलग-अलग घटनाओं एवं सन्दर्भों के माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति के पीछे की भागदौड पर उन्होंने परिहास किया है।

'अंधेरे से परे' में परपुरुष संबन्ध, अविवाहित नारी का गर्भवति होना तथा उसका एबोर्शन कराना, विज्ञापन जगत में सेक्स आदि की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश आदि इसका परिणाम है। उपन्यास में बिंदो विवाहित है और एक बच्चे की माँ भी है। उसका पति नौकरी से सस्पेंड हो चुका है। जित्तन की नाकामयाबी पर बिंदो दु:खी थी। लाख कोशिश के बावजूद दूसरी नौकरी केलिए जित्तन तैयार नहीं हो जाता। गोलियाँ खाकर बिंदो अपने आत्मसंघर्ष और पीडा को दबाने की कोशिश करती है। बाद में वह अपनी ज़िन्दगी अपनी शर्तों पर जीने केलिए तैयार हो जाती है। वह परपुरुष के साथ घूमने जाती है। घर-परिवार की परवाह किए बिना वह शहरी परिवेश के अनुसार जीने लगती है। इससे उसका परिवार टूट जाता है। बच्चे की हालत बुरी

हो जाती है। हमारी संस्कृति का विघटन यहाँ देख सकते हैं। परिवार का महत्व नष्ट हो गया है। मधु का परिवार स्वस्थ था। पति-पत्नी और एक बच्ची है। पर पत्नी पति के अलावा गुलशन के साथ भी शारीरिक संबन्ध रखती है। वह पति और प्रेमी दोनों को एक साथ अपने पास रखती है। नलिनी अपने प्रेमी से गर्भवति हो जाती है। प्रेमी से तिरस्कृत होने पर वह निराश नहीं होती। वह एबोर्शन के लिए तैयार हो जाती है और दूसरी जिन्दगी खुशी के साथ बिताना चाहती है। पूरे उपन्यास में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देख सकते हैं।

'मुझे चाँद चाहिए' में पारंपरिक मूल्यों पर अधिष्ठित परिवार की लडकी की मानसिकता महानगर में आकर किस प्रकार बदल जाती है इसका चित्रण हुआ है। महानगरीय परिवेश की पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उपन्यास में पाया जाता है। इसी कारण लोग उस संस्कृति के अनुसार जीने के लिए विवश हो जाते हैं। कभी-कभी समाज की गति के अनुसार जीना पडता है। अविवाहित नारी का गर्भवति होना, अपनी पसंद के अनुसार पत्नी की उपेक्षा करके अन्य नारी के साथ जिन्दगी बिताना, अफीम का इस्तेमाल जैसी असामाजिक वृत्तियाँ इसमें चित्रित की गयी हैं। उपन्यास में हॉलीवुड का अभिनेता रोबर्ट और चतुर्भुज के चरित्र में समानता देख सकते हैं। रोबर्ट की दो भूतपूर्व पत्नियाँ हैं और एक भूतपूर्व प्रेमिका भी। उसी प्रकार चतुर्भुज भी अपनी पत्नी की उपेक्षा करके पहले अनुपमा के साथ मंदिर में शादी कर लेता है और फिर रंभा के साथ। उपन्यास की नायिका वर्षा में पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति का संघर्ष चलता रहता है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में पुरुषवेश्या बनने केलिए विवश नील की ज़िन्दगी को प्रस्तुत किया गया है। यह वर्तमान समाज की विवशता है। नील के पास समाज के अमीर घराने की नारी, जो कामपूर्ति के लिए व्यग्र है, आती है और हाइरेट का मेहनताना भी देती है। पैसे के बलबूते पर परिवार बनाने वाले लोग भी उपन्यास में आते हैं। अपनी पत्नी के परपुरुष संबन्ध पर बाधा डालना वह चाहता भी नहीं। इसप्रकार समाज में दिखायी देनेवाला एक ऐसा संस्कार चित्रित किया गया है जो भारतीय संस्कृति से बिलकुल भिन्न है। इसमें पाश्चात्य संस्कृति का ही प्रभाव है। कैबरे, स्त्री-पुरुष का एक साथ मदिरा पान, पुरुषवेश्या के 'बुकिंग' के लिए खुली एक संस्था ये सब वर्तमान समाज में पनपती सांस्कृतिक विकृतियों की ओर इशारा कर रहे हैं। उपन्यास के अंत में अपने इस धंधे से बचने के लिए तरसते नील को दिखाया गया है। महानगरीय संस्कृति (जो पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित है) की विडम्बना है कि जो भी इस जाल में फँस जाता है उसकी मुक्ति की गुंजाइश बहुत कम है।

इसप्रकार सुरेन्द्र वर्मा अपने उपन्यासों के माध्यम से आज हमारे समाज में पनपनेवाली एक नयी सांस्कृतिक विकृति का दस्तावेज प्रस्तुत करते हैं जो हमारी संस्कृति से कोसों दूर है। इसप्रकार हमारी संस्कृति का विघटन दिखाकर हमें अपनी संस्कृति से सजग कराने का कार्य वर्मा जी ने किया है। देश की आत्मा संस्कृति में है। उस आत्मा की रक्षा करना हर एक का दायित्व है। उसके प्रति सचेत कराना रचनाकार का दायित्व है। सुरेन्द्र वर्मा इसमें सफल सिद्ध हुए हैं।

नव-उपनिवेशवादी परिवार और बच्चे

महानगरों में एक अलग संस्कृति पनप रही थी। इसमें पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव अधिक है। लोगों की मानसिकता में उसके चाल-चलन में, व्यवहार में यह बदलाव दृष्टव्य है। नागरिक पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध में डूब गये हैं। पारिवारिक संबन्धों में बदलाव आ गये हैं। संबन्धों का महत्व विलुप्त हो गया। एक ही छत के नीचे रहनेवाले माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नि अपनी-अपनी दुनिया खुद रचाकर एक अलग ज़िन्दगी जीते रहते हैं। इसका बुरा असर बच्चों पर पड़ता है। घर में बच्चे अकेले हो जाते हैं। इनसे निषेधियों की एक नई पीढ़ी की शुरुआत होती है।

'अंधेरे से परे' उपन्यास में बिंदो और जित्तन का बेटा सोमू अकेलेपन का शिकार है। उसके लिए घर में कोई नहीं है। माँ और बाप अपने-अपने काम में व्यस्त हैं। एक दादी है जो किसी से संबन्ध नहीं रखती । वह सिर्फ अपने ऊपर निर्भर रहती है। सोमू का एक मात्र सहारा जुगनू नामक बिल्ली है। गुलशन जब शाम को घर पहूँचा तो घर सुनसान था, "पैरों पर किसी मुलायम चीज का स्पर्श एकदम झपटकर सीधा हुआ। पंजे सीधे किए, पूँछ उठाए जुगनू तनकर खडी थी कान चौडे। मुझे चौंका देख उसने मुंह खोला और जैसे आश्वासन के लिए म्याऊ कहा।

'तू कहाँ थी?' उसे गोद में ले लिया और पीठ सहलाई, 'सोमू कहाँ है?'

सोमू दरवाजे पर दिखाई दिया, 'घर में कोई नहीं?' स्वर में हल्की निराशा, जैसे कोई वादा पूरा न किया गया हो।

उसकी ओर न देखते हुए इनकार में सिर हिलाया।''[8]

सोमू की ज़िम्मेदारी बिंदो और जित्तन एक दूसरे पर आरोपित करते हैं। परायी संस्कृति की देन है कि अपनी-अपनी जिन्दगी खुद जी लेने का विचार। इसमें एक दूसरे पर भरोसा नहीं,संबन्ध नहीं। जित्तन की नाकामयाबी पर बीच-बीच में बिंदो उसकी हँसी उडाती है। जित्तन घर से रूठकर निकल पडता है। सोमू जित्तन को चाहता है तो गुलशन जित्तन के पास सोमू को ले चलता है। गुलशन जित्तन से कह देता है, ''आपकी इस हालत का बहुत बुरा असर पड रहा है।'

'किस पर?'

'आम तौर से घर पर और खास तौर से सोमू पर।'

वे कुछ तीखे स्वर में बोले, 'इसके लिए मैं जिम्मेदार हूँ या इसकी माँ?'

मौन। जिसमें सोमू ने बारी-बारी से कुछ नासमझी भरे डर से हमारे चेहरे देखे और उन पर का भाव उसे हमसे दूर ले गया।''[9]

नौकरी के लिए जित्तन चला जाता है और उसके तुरंत बाद बिंदो पिकनिक जाने के लिए तैयार हो जाती है। सोमू के बारे में गुलशन पूछता है तो बिंदो बता देती है,

---

8. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.14-15
9. वही, पृ.158

''नहीं, उसकी कोई मुश्किल नहीं। थोडी बाद बालभवन जा रहा है। लौटकर बबलू के साथ रुद्रा के यहाँ चला जाएगा। चार तक मैं वापस आऊँगी तो ले लूँगी।''[10]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नील पुरुष वेश्या है और उसके पास अमीर घराने की बहुत युवतियाँ आती है। अपने परिवार से दूर ये लोग अपनी एक अलग दुनिया बसाती है। पारुल जो बहुत बडे कंपनी की एम.डी. है, नील से संबन्ध स्थापित करती है। पारुल की बेटी की देखभाल आया करती है। नील से पारुल गर्भवति हो जाती है। यह बात सुनकर नील पारुल के पास चला जाता है और पूछता है, ''तुम्हारी बेटी क्या सोचेगी?''

''मेरी अपनी भी जिन्दगी है।''[11] अपने बच्चे पर क्या गुज़रता है यह कोई सोचता नहीं है। सभी को अपनी ज़िन्दगी की फिक्र है। इससे बच्चों में ज़िन्दगी के प्रति आस्था नष्ट हो जाती है और वे भी इस उपनिवेशवादी संस्कृति का हिस्सा बन जाते हैं।

नव-उपनिवेशवादी माहौल और ड्रग्स

ज़िन्दगी की खुशी के लिए, चैन से रहने के लिए, मनुष्य हमेशा प्रयत्नरत है। इसके लिए वे संस्कृति को कभी भुला देते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास इसका परिणाम है। आज की ज़िन्दगी में कोई भी चैन से नहीं रह पाता। परिवेश के अनुसार

---

10. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.180
11. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.211

जीने के लिए वह भ्रष्टाचारिता और अनैतिकता के वश में पड जाते हैं। फिर भी वे शान्ती की खोज में भटकते रहते हैं।

आज-कल बाज़ार में अनेक प्रकार की गोलियाँ प्राप्त हैं। सोने के लिए गोली है, चैन के लिए गोली है, तनाव दूर करने के लिए गोली है। लोग इसका उपयोग करते हैं। 'अंधेरे से परे' की बिंदो अपने तनाव को दूर करने के लिए, अपनी निजी ज़िन्दगी से छिप जाने के लिए इसका इस्तेमाल करती है। "बिंदो ने पर्स से दो स्ट्रिप निकालीं। रैपर से पहचाना, छोटी गुलाबी गोली चिंता या उसकी आशंका से बचाव की थी। दूसरी पीली थी डिप्रेशन के लिए। एक पल सोचा, फिर गुलाबी गोली मुँह में रख ली। कप उठाकर एक घूँट भरा, ।"[12]

'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा नींद की गोलियों का उपयोग करती है। कोई भी ज़िन्दगी में 'रिस्क' लेना नहीं चाहता। "वर्षा ने पर्स से कांपोज़ की टिकिया निकाली और पानी का गिलास उठाया। "तुम सोने के लिए गोली लेती हो?" रीटा उसकी और देख रही थी।

"कभी-कभी। फिर आज सोने की जगह भी बदल गयी है न! मैं चांस नहीं लेना चाहती।"[13]

---

12. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.38
13. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.456

लोग अफीम लेते हैं। कभी मन की शान्ति के लिए कभी जीवन यथार्थ से पलायन करने के लिए। 'मुझे चाँद चाहिए' में हर्ष और उसके दोस्त 'चरस' का उपयोग करते थे। पहले कम मात्रा में। पर हर्ष नव-अभिनेता के रूप में असफल हो जाते हैं तब इसका उपयोग ज़्यादातर करने लगते हैं। वर्षा के घर पहूँचकर एक बार हर्ष बेहोश हो जाता है, "सिद्धार्थ ने हर्ष का सिर सीधा किया, उसका मुँह सूँघा, एक पलक थोडी खोलकर आँख देखी। फिर बोला, "इन्होंने कोई ड्रग ले रखा है। ऐसे ही सोने दो। सुबह तक ठीक हो जायेंगे।"[14] और बाद में हर्ष ड्रग एडिक्ट्स के एक अड्डे में फँस जाता है। वर्षा बहुत कोशिश करके उसको वहाँ से निकालती है। लेकिन अंत में ड्रग्स का ओवरडोज लेकर वह आत्महत्या करता है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में माफिया के बारे में कहा गया है जिनका संबन्ध अफीम से है। ये लोग खुद इसका उपयोग भी करते हैं। "घनघनाते फोनों के बीच बैठे-बैठे इलियास ने छह बोतल बियर पी ली थी। गफूर ने कोकीन के तीन पानों के साथ पौन बोतल व्हिस्की खतम की थी और मुर्तजा ने चरस मिली सिगरेट के पूरे पैकेट के साथ आधी बोतल।"[15]

कैबरे और मदिरापान साधारण-सी बातें हो गयी हैं। रात को स्त्री-पुरुष होटल में, निशा क्लब में जाकर एक साथ मदिरापान करते हैं और डांस में भाग लेते हैं। 'अंधेरे से परे' में गुलशन, नलिनी और राजवंश एक पार्टी के लिए ऐसी एक जगह पहूँचते हैं और मदिरा पान करते हैं। "पहले पैग मैंने दस मिनट में ही खाली कर दिया।

---

14. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.372
15. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.79

नलिनी ने अभी दो घूँट लिए थे और राजवंश ने पाँच-छह ।''[16] उसी जगह कैब्बरे हो रहा था, ''संगीत का ऊँचा शोर था विचित्र ध्वनियाँ, जिनमें लय-ताल कुछ नहीं था। उन्मादी स्वर, जो निरंकुश, बौराये हाथियों-से इधर-उधर दौडते चीत्कार कर रहे थे। इस पर क्षण-क्षण जलने-बुझने वाली प्रकाश-व्यवस्था अजीब रूपाकारोंवाला वह आलोक कांच-जडी दीवारों में प्रतिबिंबित होकर पल-पल एक नई कौंध को जन्म देता जा रहा था। उस रोशनी में कुछ भी निरंतर गतिमान नहीं था एक क्षण गति, एक क्षण ठिठक, एक क्षण गति, एक क्षण ठिठक ।''[17] इस प्रकार जलकर बुझनेवाली ही है पाश्चात्य संस्कृति। लेकिन लोग इस नृत्य की गति के अनुसार नाचते रहते हैं। बीच में थक जानेवाले फिर उस लय को पकड नहीं पाते।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नंगा डांस करनेवाली शालू और जूली है। उनका नाच देखने के लिए लोग आते हैं। ''सुरों की एक इकाई पूरी होते ही पल-भर को मौन छा गया। शालू ने अपने कंधों से एक वस्त्र निकालकर नीचे फेंक दिया।

कुछ विरामों के बाद शालू के सिर्फ दो अंतर्वस्त्र ही बचे रहे। अब उसके साँवले तन पर जहाँ-तहाँ पसीने की नमी उभर आयी थी

---

16. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.105
17. वही, पृ.103

धुन की इकाई पूरी हुई, तो छोटे-से विराम के बीच शालू ने अपना आखिरी अंतर्वस्त्र उतारकर फेंक दिया। भरा होने के बावजूद हॉल निस्तब्ध था। हल्की मुस्कान वाली चपल भंगिमा से अनावृत देह के पिछले और अगले हिस्से का प्रदर्शन करते हुए शालू ने अँगडाई ली ''[18]

'मुझे चाँद चाहिए' में खुशी की वेला में सभी लोग मदिरापान करते हैं। वर्षा का नाटक सफल होने पर, फिल्म शूटिंग समाप्त होने पर, तनाव आ जाने पर सभी अवसरों में स्त्री-पुरुष इकट्ठे होकर मदिरापान करते हैं। जब पिता को पता चला कि वर्षा मदिरापान कर रही है तो उन्होंने वर्षा से इसके बारे में पूछा तो वर्षा ने जवाब दिया, ''शुरुआत जिज्ञासा व एडवेंचर से हुई थी।''[19] इस पर पिता क्रुद्ध हो गये। वर्षा ने जवाब दिया कि अनुभव के लिए वह मदिरापान करती है। और जोड दिया, ''अभिनेता का शराबी होना जरूरी नहीं, पर अगर उसे मदिरा के आस्वाद की जानकारी हो, तो उसे अभिनय को प्रामाणिक बनाने में मदद मिलेगी।'' वर्षा ने नरमी से कहा, ''चरित्र में सेंध लगाने के लिए सभी संजीदा अभिनेता ऐसी युक्तियाँ अपनाते हैं।''

''स्वांग को संजीदगी से भी लिया जाता है?''

''हाँ।'' वर्षा ने कैसेट उठाकर दिखायी, ''रेज़िंग बुल' की भूमिका के लिए डि नीरो ने बॉक्सिंग सीखी और अधेड उम्र को प्रामाणिक दिखाने के लिए बियर पी-पीकर अपने सपाट पेट पर तोंद ले आया।''

---

18. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.41
19. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.525

पिता पल भर कैसेट पर डि नीरो का चेहरा देखते रहे। फिर बोले, "अब तो तुम्हें अनुभव हो चुका है। अब मदिरा क्यों ज़रूरी है?"

"ज़रूरी तो नहीं! पर जब मैं थकी हुई या तनाव में होती हूँ, तो रिलैक्स करने में उससे मदद मिलती है।"[20]

सिगरेट पान भी आम बात हो गयी है। 'अंधेरे से परे' में बिंदो गुलशन के पास आ जाती है। "बडी सर्दी है।' एक हाथ तत्क्षण बाहर निकाला और पैकेट की ओर संकेत किया, 'एक सिगरेट

सामने बढाए गए पैकेट से सिगरेट निकालकर मुंह में दबाई। तीली की लौ में लंबी सांस के साथ गोलाकार सुलगन। लंबे कश के साथ पीछे टिक गई और आँखें बंद किए धीरे-धीरे धुआं छोडा-व्हिस्की की बहुत हल्की गंध के साथ।"[21]

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा जब तनाव से भर रही थी, तब हर्ष से भरा हुआ सिगरेट लेकर पी जाती है। "हर्ष ने सिगरेट बढायी तो वर्षा ने आतुरता से थाम ली। उसने एक के बाद एक दो लंबे कश लिए।"[22]

इस प्रकार अपने तनावों और ज़िन्दगी के याथार्थ्य से बचने के लिए नशीले चीज़ों का इस्तेमाल करनेवाली युवा पीढी उपनिवेशवादी संस्कृति की संतान है। ये सब उन्हें

---

20. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.525-526
21. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.114
22. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.350

कहाँ से कहाँ तक पहूँचायेगा यह वे खुद नहीं जानते। इसका नतीजा दिखाना हर लेखक का फर्ज़ बनता है।

नव-उपनिवेशवाद और बदलते स्त्री-पुरुष संबन्ध

महानगरीय संस्कृति असंस्कृत होती जा रही है। यहाँ व्यक्ति अकेला है। संबन्धों में तनाव और परायापन आ गया है। अब नारी चाहती है कि वह पुरुष के बराबर हो। एक हद तक नारी उस रास्ते तक आ गयी है। लेकिन जब वह अपने हक के लिए, स्वातंत्र्य के लिए लडने निकलती है तब वह अपने परिवार को, समाज को भूल जाती है। उसे सिर्फ अपने सुख की चिंता है। अपना जीवन खुशी से जीने के लिए वह कहीं भी जाने के लिए तैयार हो जाती है। इसी कारण परपुरुष संबन्ध और अन्य पुरुष के साथ दोस्ती का मुखौटा पहनकर एक ही घर में जीने के लिए वह सहमत हो जाती है। इस नव-उपनिवेशवादी माहौल में नारी को अतिरिक्त स्वतंत्रता मिलती है। अत: वह अपने दायित्व को भूलकर अपनी खुशी के बारे में सोचती रहती है।

'अंधेरे से परे' के गुलशन की माँ और बिंदो इस नव-उपनिवेशवाद की संतानें हैं। दफ्तर से आ जाने के बाद भी वे घर में बैठे रहना पसन्द नहीं करती। "पहले ममा बाहर निकली-औसत चाल से। जैसे यह भी सुबह दफ्तर की तरह का एक अनिवार्य प्रस्थान हो। गाडी का दरवाज़ा खुला, बंद हुआ। इंजिन की यकायक घरघराहट गाडी बाहर निकली और दाई और मुड गई।

दृश्य के फ्रेम में जैसे क्षण भर कंपकंपाहट रही एक तत्व के बाहर निकल जाने पर।

फिर बिंदो एक हाथ में पर्स लिए। दूसरे से पल्लू संभालती। चाल में हल्की उतावली, जैसे देर होने पर अपना दाय मिलने में कोई कमी रह जाएगी। लहर-सी सीढियाँ उतरी, गेट से आगे बढते हुए हाथ हिलाया।''[23]

बिंदो मानसिक रूप से अपने पति से अलग हो चुकी थी। उसकी भावात्मक ज़रूरतों के लिए वह एक अलग पुरुष से संबन्ध रखती है। मम्मी इसके बारे में पूछती है तो वह सीधे कह देती है, ''मैं अपनी भावनाओं का कुछ नहीं कर सकती।''[24] बिंदो मम्मी से पूछती है, ''क्या तुम कह सकती हो कि तुम अस्थिर नहीं हो, भावना की दृष्टि से ?''[25] मम्मी कहती है, ''मैं सिर्फ अपने पर निर्भर करती थी।' सपाट आवाज। बेलौस

बिंदो ममा की ओर देखती रही। धीमे स्वर में बोली, 'एक बात पूछूँ?'

ममा ने सवाल की निगाह से देखा।

'तुम पापा के प्रति फेथफुल रही हो?'

फिर वक्फा। लंबा। गहरा।

---

23. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.43-44
24. वही, पृ.102
25. वही, पृ.103

'नहीं।''[26]

पति और बच्ची के साथ आराम की ज़िन्दगी जीने पर भी मधु गुलशन के साथ अनैतिक संबन्ध रखती है। वह अपने पति और बच्ची को छोड़ना नहीं चाहती। गुलशन को भी वह चाहती है। गुलशन उससे पूछता है कि मधु की ज़िन्दगी में उसका स्थान क्या है। गुलशन हर रोज़ उससे मिलना चाहता है। मधु कहती है, मेरा घर है, पति और बच्चा है। यह कैसे हो सकता है कि मैं हर रोज तुमसे मिलूँ? जब सहूलियत होगी, तब ही तो

'यानी यह सहूलियत का रिश्ता है?'

पल भर मौन रहा, जिसमें गुंबद के ऊपर कोई अबाबील बोल उठी।

'यह लिमिटेड कमिटमेंट का रिश्ता है।''[27]

नलिनी अपने प्रेमी से गर्भधारण करती है। वह गुलशन से कहती है कि उसकी शारीरिक ज़रूरतों ने ही उससे यह सब करवाया, ''मैं ज़िन्दगी के उस पैटर्न से आजिज आ चुकी थी, जिसमें कहीं कुछ नहीं होता था। आखिर यह बदन मेरे साथ है और अपनी ज़रूरत की बात कहता है। मैं कब तक उस एक सही आदमी के इंतज़ार में रहूँ, जो पता नहीं, कभी आएगा भी या नहीं, या जब आएगा भी, तो उतनी देर हो चुकी

---

26. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.103-104
27. वही, पृ.151-152

होगी कि ।''[28] नलिनी गुलशन से एबोर्शन के लिए मदद माँगती है। ''अगर तुम ठीक जगह का पता कर सको और मुझे ले चलो, तो ' चेहरे पर एक पतली पर्त अभी भी उसी सख्ती की थी, जैसे मेरे उत्तर के बाद ही उसे हटाना या जमाए रहना हो।''[29] यह एक ऐसी नारी है जिन्हें अपनी ही अनैतिकता का शिकार बनना पडा है। यहाँ तो पुरुष को याने गुलशन को नलिनी अपने अच्छे मित्र के रूप में देखती है। वह अपनी मानसिकता तथा जरूरतों को खुल्लम खुल्ला प्रकट करती है।

विवाह के पहले किसी पुरुष के साथ सहशयन करना हमारी संस्कृति के खिलाफ है। चाहे जितना भी परिष्कृत क्यों न हो, हर एक की दृष्टि में इस तरह का व्यवहार अनैतिक ही है। फिर भी पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उन्हें दुबारा सोचने के लिए मजबूर करता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा अपने प्रेमी हर्ष के साथ सहशयन करती है। यह सुनने पर वर्षा के अंतरंग मित्र व अध्यापिका कहती है, ''वर्षा अनुभव तुम्हारे लिए अभी कच्चे माल की तरह है। फिलहाल विविध और रंगारंग अनुभवों से गुज़रना तुम्हारी एक आंतरिक जरूरत है। लेकिन साथ ही मैं मानती हूँ कि ज़िन्दगी में कुछ नैतिक आधार, कुछ मूल्य, कोई विश्वास तुम उसे कुछ भी नाम दे लो भी होना चाहिए। तुमने अपनी भावना की गहराई और ऊष्मा के साथ यह संबंध अर्जित किया है। व्यक्तिगत तौर पर मैं इसमें कुछ भी अनुचित नहीं मानती। मेरे लिए तुम पहले की तरह निष्पाप और पवित्र हो ।''[30]

---

28. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.164
29. वही, .पृ.165-166
30. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.142

विवाह और साथ-साथ रहने को लेकर भी हर एक का मत अलग-अलग है। अपने हितानुसार पत्नी को बदलना और कई नारियों के साथ जीना पाश्चात्य संस्कार है। इसी संस्कार को हॉलीवुड के एक्टर रॉबर्ट के माध्यम से दिखाया गया है। रॉबर्ट वर्षा से कहता है, ''मैंने न्यूयार्क अपनी भूतपूर्व पत्नी को फोन किया। मैं अपने बेटे से बात करना चाहता था। पर उस चुड़ैल ने उसे लाइन पर नहीं आने दिया।'' रॉबर्ट ने सिगरेट सुलगायी, ''फिर मैंने दूसरी भूतपूर्व पत्नी को शिकागो फोन किया। मैं अपनी बेटी से बात करना चाहता था। पर वह घर पर नहीं थी।''[31] इसके अलावा रॉबर्ट को एक भूतपूर्व प्रेमिका भी है। यही है पाश्चात्य संस्कृति। इसका प्रभाव चतुर्भुज की ज़िन्दगी में झलकता है। वह अनुपमा के साथ शादी करते वक्त वर्षा से कहता है, ''सुशीला मुझसे दो साल छोटी है। दिल्ली आने के बाद मेरी विचारधारा, मेरा व्यक्तित्व सब बदल गया है। सुशीला मेरी भावात्मक जरूरत पूरी नहीं कर सकती। मुझे उसके लिए अफसोस है, लेकिन मैं विवश हूँ।''[32] बाद में अनुपमा के साथ जिन्दगी सुगम न होने के कारण दोनों अलग हो जाते हैं और चतुर्भुज रंभा के साथ रहने लगा, ''अब तक वर्षा की मान्यता थी कि असफल प्रेम देवदास के समान आत्म-संहारक होता है, पर चतुर्भुज का बंबइया उत्थान देखने के बाद उसने यह स्वीकार कर लिया था कि भग्न भावनाओं तथा विदग्ध जीवन-शैली का आई कोक के समान 'क्राइसिस मैनेजमेंट' नवजीवन भी प्रदान कर सकता है।''[33]

---

31. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.472
32. वही, पृ.225
33. वही , पृ.443

उसी प्रकार अनुपमा की भी दूसरी शादी हो रही है। "बधाई अनुपमा !" वर्षा ने हाथ मिलाया। मुस्कुराती अनुपमा के हाथ की पकड़ में उंमग का दबाव था। आँखें खिली हुई। वर्षा के सामने पल भर के लिए अनुपमा की पुरानी छवि कौंधी-मंदिर में चतुर्भुज को माला पहनाते हुए । फिर वह आज की सादी अनुपमा में विलीन हो गयी।"[34]

एक पुरुष और स्त्री का एक ही फ्लैट में अलग-अलग कमरे में जीना हमारी संस्कृति के अनुकूल नहीं है। पाश्चात्य देशों में ऐसा होता है। वहाँ अपने दोस्त चाहे वह पुरुष हो या नारी एक साथ एक ही फ्लैट बाँट सकते हैं। आज-कल हमारे यहाँ भी यह आम बात बन गई है। हर्ष अपने दोस्त रंजना के साथ रहता है। वह वर्षा से कहता है, "मैं रंजना के साथ माहिम में रहता हूँ।"

"साथ रहने का मतलब है उसके फ्लैट के एक कमरे में।"[35]

वर्षा अपने प्रेमी हर्ष के होते हुए भी निदेशक सिद्धार्थ के साथ प्रेम व्यवहार करती है। हर्ष के बारे में पता चलने पर सिद्धार्थ इसके बारे में पूछता है तो वर्षा जवाब देती है, "जब हम रेगिस्तान में मिले, तब मैं लंबे समय से भावात्मक अनिश्चय में थी ।"[36]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नील पुरुष वेश्या है जो समाज के अधेड उम्र की स्त्रियों को तृप्त करता है। पति और परिवार से जो तृप्ति उन्हें नहीं मिलती उसकी खोज

---

34. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.482
35. वही,पृ.352
36. वही, पृ .403

में ये नारियाँ निकल पड़ती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पति ये सारी बातें जानते हुए भी चुप्पी साधने के लिए विवश हो जाता है। उन्हें सिर्फ पैसा ही चाहिए। पारुल सोमपुरिया घराने की है और उसके पति और एक बच्चा है। वह नील पर आकृष्ट हो जाती है। पारुल के पति जयंत नील से कहता है कि वह लालच को पवित्र भावना मानता है। और इसीके सहारे वह खडा है। वह आराम से काम करना चाहता है। इसके लिए पारुल कभी-कभी उसकी एकाग्रता तोड़ती है। लेकिन वह पारुल से अलग होना भी नहीं चाहता क्योंकि पारुल के अलग होने से उसके एसैट्स का बँटवारा होगा। ''अब जयंत के चेहरे पर अंधेरे रिश्ते की वही छाया घिर आई थी, जिससे नील ग्रसित था।

जयंत ने घडी पर निगाह डाली। फिर जेब से एक बंडल निकालकर उसके हाथों में रखते हुए आवेग से कहा, ''मेरा घर न टूटे, इसके लिए मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।''[37]

अपनी पत्नी को नील के साथ होटल के कमरे में देखकर पुरुष जल उठता है। पत्नी खुल्लमखुल्ला कह उठती है कि पुरुष उसे तृप्ति नहीं देता।

''एक मरद काफी नहींहै तेरे लिए?''

''तुम्हें कुछ नहीं आता। तुम वन-टू-थ्री की तरह पीटी करते हो और सो जाते हो।''

---

37 सुरेन्द्र वर्मा दो सुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.165

"और तुम्हें क्या चाहिए?" पुरुष गुर्राया।

"तुम नहीं समझोगे।"

"हाँ बडे तत्व-ज्ञान की गुत्थी है न, जो मैं नहीं समझूँगा। गू की ढेरी में मुँह मारते बच्चों के बारे में नहीं सोचा?"

"मेरी अपनी भी जरूरतें हैं।"[38]

कुमुद, जिसने नील को कामसूत्र का पाठ सिखाया था अब शादी करने वाली है। वह नील से कहती है, "विश्वास करो," कुमुद उसकी और देख रही थीं,"उनके साथ के रिश्ते की प्रकृति बिलकुल दूसरी रही है।" फिर चिरपरिचित चंचल मुस्कान आ गई, "कुछ पुरुष सिर्फ प्रेमी हो सकते हैं और कुछ सिर्फ पति।" फिर पहले-जैसी संजीदगी आ गई, "उन्हें सिर्फ पत्नी की तलाश थी और मैं जानती हूँ, वे आदर्श पति साबित होंगे।" दो पल ठिठककर जोडा, "अब जो आशंका तुम्हारे मन में है, उसे भी जुबान पर लाकर साफ कर दूँ। कल सुहाग रात में मैं पहली बार आत्मसमर्पण करूँगी।

वैसे भी आदर्श पति को शादी से पहले होनेवाली जीवन-संगिनी को गर्दन से नीचे नहीं छूना चाहिए।"[39] पाश्चात्य और भारतीय संस्कृति का मिला जुला रूप यही है।

---

38. सुरेन्द्र वर्मा दो सुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.142
39. वही, पृ.89

नारी और पुरुष के बीच का नैतिक संबन्ध नष्ट हो चुका है। पति के होने पर भी परपुरुषों की खोज में नारी निकल जाती है और पत्नी के होने पर पुरुष भी। यहाँ कोई पवित्र संबंध नहीं है।

नव-उपनिवेशवाद और व्यक्ति

व्यक्ति अपने में सिमट गया है। उसने समझ लिया कि पूँजीवादी समाज में जीने के लिए स्वार्थ सेवा अनिवार्य है। सभी लोग अपने लिए जी रहे हैं। अपनी ज़रूरतों को लेकर सब चिंतित है। इसके लिए कुछ भी वे करते हैं। दूसरों की परवाह करना कोई चाहता नहीं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के नील पी-एच.डी. से निकाले जाने पर एक नौकरी की तलाश में है। बंबई के बारे में लोगों से सुनकर वह उसके लिए तैयार हो जाता है। नील स्टोर मालिक के चचेरे भाई घनश्याम से पूछता है, "कौन-सा गुण है मेरे पास?"

"जवान हो, खूबसूरत हो, जहीन हो। बाजार में अपने लिए स्लॉट बनाओ।"[40]

बंबई आकर नील ने समझ लिया, "हम जिस पूँजीवादी समाज में जी रहे हैं, उसमें हमारे सामने पेट भरने का एक ही रास्ता है अपनी किसी काब्लियत को बाजार में बेच पाना।"[41]

---

40. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.13
41. वही, पृ.145

'अंधेरे से परे' की बिंदो अपनी भावात्मक ज़रूरतों की पूर्ति के लिए पति से दूर अन्य पुरुष से संबन्ध रखती है। मधु गुलशन के साथ सहूलियत का रिश्ता स्थापित करती है क्योंकि उसे अपने पति और बच्चे की देख-भाल करनी है। गुलशन की माँ कहती है, "मैं सिर्फ अपने पर निर्भर करती थी।"[42]

नलिनी विवाह से पहले गर्भवति हो जाती है। प्रेमी से इसके बारे में कह दिया है। लेकिन निराशा ही हुई। गुलशन को बुलाकर वह कहती है, "मैंने इत्तिला की थी, तो दूसरी ओर से कुछ अजीब-सी प्रतिक्रिया हुई। जैसे कि मैं खेल के कायदे नहीं जानती, और कि आदमी को बाद के नतीजों के लिए जिम्मेदार या साझेदार मानना दकियानूसी बात है। फिर अहसान-सा जतलाते हुए कहा गया कि ठीक जगह का पता करके बताऊँगा। शनिवार तक बताने की बात थी।' चेहरे पर सख्ती आ गई, "अब मैं उससे कोई मदद नहीं चाहती।"[43] वह एबोर्शन के लिए तैयार हो जाती है। अपने आगे की जिन्दगी के लिए बच्चा बाधा बन जाएगा और हमारा समाज इसको स्वीकार नही करता इससे अवगत होकर नलिनी एबोर्शन करती है।

'मुझे चाँद चाहिए' में रंभा अभिनेत्री बनना चाहती थी। इसीलिए वह चतुर्भुज के साथ रहती है। रंभा के गर्भवति होने पर चतुर्भुज खुश हो जाते हैं। लेकिन रंभा इससे सहमत नहीं है। वह वर्षा से कहती है, "वर्षाजी आप ही बताइए, मेरा क्या दोष है?" रंभा बोली, "पिछले हफ्ते मुझे मालूम हुआ कि मैंने कंसीव कर लिया है। कॉमेडियन से (चतुर्भुज के लिए रंभा का यही संबोधन था।) मैंने कहा कि मुझे भरुचा क्लिनिक

---

42. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.103
43. वही , पृ.165

ले चलो, तो इन्होंने इंकार कर दिया और खुशियाँ मनाने लगे। आप बताइए, जैसी स्थिति में हम यहाँ रह रहे हैं, उसमें बच्चे की गुंजायश है? मेरे घरवालों ने मुझे 'डिस ओन' कर दिया है, मंदिर में एक दूसरे को माला पहनाकर हमने शादी की है (यह वर्षा के लिए नयी सूचना थी।), तीन महीने बाद लीव-लाइसेंस का यह फ्लैट हमें छोडना होगा, अगले महीने मेरी पहली पिक्चर की शूटिंग शुरू होगी और कॉमेडियन बच्चे की रट लगाये हुए थे। मेरे लाख समझाने पर भी यह नहीं समझे। परसों जब यह शूटिंग पर गये, तो मैं क्लिनिक में चली गयी। भूषण मेरे साथ था। आज शाम को जब मैं लौटी, तो इन्होंने मुझ पर हाथ चला दिया ''[44] अपनी वैयक्तिक ज़िन्दगी को मुख्य मानने के कारण शादी और गर्भधारण कोई पसन्द नहीं करता। यहाँ व्यक्ति सिर्फ अपने ऊपर निर्भर है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में पुरुष वेश्या नील की एक क्लैंट यास्मीन है। अकेली रहती है, पाश्चात्य संस्कृति के अनुकूल जीनेवाली है। उसको भी सिर्फ अपने बारे में चिंता है। वह कहती है, ''मैंने अपनी ज़िंदगी में सिर्फ एक बार जज़्बात से काम लिया यानी शादी की। और धोखा खाया।'' उनकी दूसरी उल्लेखनीय स्वीकारोक्ति थी, ''वह सिर्फ नर्म ज़िन्दगी चाहता था। ऐसी ज़िंदगी के लिए सुबह से शाम तक जो मशक्कत करनी पडती है, वह उसके लिए जानलेवा थी। सुबह ग्यारह बजे से जिन पीना, लंच के बाद एयरकंडीशनिंग में सोना, फिर रमी खेलना शादी के साल-भर के भीतर उसकी तोंद निकल आई। मैंने सुधरने के लिए उसे तीन महीने का प्रोबेशन

---

44. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.450

दिया। नालायक समझा कि मैं मज़ाक कर रही हूँ। इक्यानवे दिन मैंने उसे दरवाज़ा दिखा दिया।''[45]

पारुल का पति भी यही चाहता है कि उसके एसेट्स का बंटवारा न हो। और उसने खुद कह दिया है कि पारुल उसकी एकाग्रता का भंग करती है। ''मेरी ज़िंदगी का एक ही पैशन है मेरा काम। मैं लालच को बहुत पवित्र भावना मानता हूँ। यही हमें अपनी पहूँच से बाहर हाथ बढाने के लिए प्रेरित करती है। एक के बाद एक रुकावटें पार करने की सामर्थ्य देती है। मुझमें बहुत लालच है अपनी शक्ति बढाने के लिए। आज हमारे उद्योग समूह में सात हजार कर्मचारी हैं। मैं उनकी नियति का नियामक हूँ। अगले कुछ सालों में मैं यह संख्या दूगुनी कर देना चाहता हूँ। पर परुल बीच-बीच में अपनी बहकी बातों से मेरी एकाग्रता तोड देती है, शक्ति बढाने के मेरे तप को भंग कर देती है। उसके अलग होने का मतलब तुम जानते हो ?''

जयंत के स्वर में पैनी थर्राहट थी। नील उसकी ओर देखता रह गया।

''हमारे एसैट्स का बँटवारा होगा। मेरी शक्ति एक-तिहाई रह जाएगी।''[46]

इसप्रकार उपनिवेशवाद ने व्यक्ति को समाज से, संबन्ध से बहुत दूर हटा दिया। व्यक्ति अकेला हो जाता है और वह अकेले में अपना भविष्य देखते हैं।

---

45. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.99
46. वही, पृ.164

नव-उपनिवेशवाद और मीडिया

पत्र-पत्रिकाओं और टी.वी. में आज जो कुछ दिखाई देते हैं उन सब में अश्लीलता का अंश ज्यादा है। इन सब का असर पडना स्वाभाविक है।

'अंधेरे से परे' में विज्ञापन के क्षेत्र की नग्नता को लेकर एक चर्चा होती है। उसमें कहा गया है, ''विज्ञापन के क्षेत्र की नग्नता को समाज में फैली उच्छृंखलता से अलग करके देखना शायद ठीक नहीं होगा। साथ ही दूसरी ओर इसका संबन्ध देश में बढती उपभोक्तासंस्कृति से है। फिर पृष्ठभूमि में हम आज के साहित्य को देखें, फिल्मों पर एक निगाह डालें, नई पीढी के लडके-लडकियों के व्यवहार को परखें, तो हमें मालूम होता है कि 'वैसे मुझे विज्ञापन में सैक्स को लेकर शर्म नहीं आएगी, अगर लोग आंशिक नग्नता पर पैसे खर्च करने के लिए तैयार हों, तो। लेकिन सैक्स के ऊपर ज़रूरत से ज़्यादा बल देने पर मैं चेतावनी देता हूँ, तथाकथित नैतिकता की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि व्यावसायिक रुख से भी। ऐसे उदाहरण देखे गए हैं कि अगर नग्न मॉडल सचमुच आकर्षक है, तो दर्शकों ने उसे ही याद रखा और उत्पाद को भूल गए।'

'मैं आपकी बात से एक हद तक सहमत हूँ। विज्ञापन को देश की साँस्कृतिक स्थिति के साथ चलना होता है और सैक्स क्योंकि आज की संस्कृति का एक निर्धारक तत्व है, इसलिए हम इसे प्रचार से अलग करके नहीं देख सकते।''[47]

---

47. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.73-74

'मुझे चाँद चाहिए' में पत्रिकावाले वर्षा के साथ साक्षात्कार के लिए आ जाते हैं। राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित वर्षा से उसके बारे में पूछने के बजाय वह और कुछ पूछते हैं। 'फिल्म फंट्श' की विशेष संवाददाता मेहरू मर्चेंट 'कार्ट मार्शल' कॉलम के लिए इंटर्व्यू लेने आयी है। इंटर्व्यू शुरू होते ही वह वर्षा से शादी के पहले के सेक्स के बारे में पूछती है। वर्षा ने कहा कि राष्ट्रीय पुरस्कार से यह शुरू करना चाहिए। तो वह जवाब देती है, ''मेहरू ने मुँह बनाया, ''ओह नो घिसेपिटे सवाल मैं ओल्ड फॉगीज़ के लिए छोड़ती हूँ। मेरा विश्वास है, साक्षात्कार में मेरा व्यक्तित्व सामने आना चाहिए।''

''मैं जान सकती हूँ, और कौन-से सवाल सोच रखे हैं आपने?''

''कामसूत्र' के कौन-से आसन आपको विशेष पसंद है? किस उम्र में आपकी कौमार्य तिलांजली हुई थी? 'वननाइट स्टैंड' पर आपकी क्या राय है? आज की जटिल जिन्दगी में आप इसे अनिवार्य मानती है न? आप ऑर्जी अपने मित्रों के साथ पसंद करेंगी या अजनबियों के साथ? दो पुरुषों के संग एक साथ सेक्स थ्री वे लव पर आपका क्या मत है?''[48]

फिल्म में भी यही होता है कि नारी की नग्नता बेचकर लोग पैसा कमाते हैं। और अव्वल नंबर पर रहने के लिए नायिका भी यही करती है। कंचनप्रभा और वर्षा एक ही फिल्म में काम करती है। कंचनप्रभा नायिका है और उसकी पोशाक इस प्रकार है, ''वह झालरदार पेंटी जैसी चीज पहने थी। इन्हीं नंगी जाँघों की एक झलक के लिए

---

48. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.397

टिकट-खिडकी पर, कोहराम मच जाता है, वर्षा ने सोचा। निशा गरीब घर की है, पर एक्सक्लूसिव क्लब में टैनिस खेलने जाती है और वह भी पेंटी पहनकर !''[49]

वर्षा को लेकर पत्रिकाओं में कई लेख आ गये थे। 'टिंसल टाउन' नामक पत्रिका में वर्षा को लेस्बियन कहा गया है। उसके अपने मित्रों को लेकर कई कहानियाँ छपकर आ गयी। इससे पाठकों की गिनती बढ़ती है। ये सारी बातें पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के ही परिणाम हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में यह दिखाया है कि नील को नए क्लैंट्स विज्ञापन द्वारा ही मिले हैं। उसने एक अखबार में इस तरह का एक विज्ञापन देखा था। एक पत्रिका में वह छपकर भी आयी थी। ''यास्मीन के दिए हुए 'द बॉम्बे आइट' के अंक से उसे अपनी समस्या का हल मिला था। घंटे-भर की मेहनत के बाद उसने अपना विज्ञापन तैयार कर लिया था, ''क्या आपको अकेलापन चुभ रहा है? जिस्मानी पुनर्यौवन और भावात्मक स्थिरता के लिए इस नंबर पर कंदर्प और काफ्का के मिले-जुले अवतार को फोन करें। हम आपको विश्वास दिलाते हैं, ज़िंदगी में आपकी आस्था फिर जाग जाएगी। ऐसी गारंटी के बावजूद पारिश्रमिक वाजिब। जगह की ज़िम्मेदारी आपकी (हम महानगर के संत्रास से ज़रूर बचाते हैं, लेकिन इससे हमें भी मुक्ति नहीं !)''[50]

इसप्रकार की अनेक संस्थाएँ भी है जो उच्चवर्ग की तृप्ति का कारण बनती हैं। नील के पास शहनाज़ हैदर जाती है और कहती है, ''हम सूपर ए तबके के गोरे टूरिस्ट

---

49. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.347
50. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.103

और मल्टि नेशनल्स की ऊँची एगज़ीक्यूटिव बिरादरी की ख़िदमत में हैं।'' शहनाज ने धीरे-धीरे सधी हुई आवाज में कहा, ''इस सिलसिले में हमें बहुत भरोसेमंद और तालीमयाफ़्ता सजीले नौजवान की ज़रूरत होती है। कई बार कोई अकेली क्लाइंट अजंता-एलौरा, ताजमहल या कत्थक-सितार के प्रोग्राम में जाना चाहती है, तो उसे सूझबूझवाला कल्चर्ड एस्कोर्ट चाहिए। अगर क्लाइंट चाहें, तो ऐसी ऐस्थेटिक शाम और दिलचस्प अंजाम तक भी पहूँच सकती है। कई बार किसी डायरेक्टर खातून या किसी टाइकून की बीवी को अपनी बोरियत दूर करनी होती है। इस तबके के लिए हमें ठंडे, पेशेवर रुखवाला हस्सास, सोफिस्टिकेटिड मुलाज़िम चाहिए, जो न क्लाइंट के सामने जज़्बात में बहकर इज़्हारे-मुहब्बत कर दे और न उसके साथ शिकागो जाने की जिद पकडे।''[51]

इसप्रकार पत्र-पत्रिकाएँ और फिल्मी दुनिया औपनिवेशिक परिवेश की संतान के रूप में सामने आती हैं। लोगों के मन में इस प्रकार की मनोवृत्ति, जो हमारी संस्कृति के अनुकूल नहीं है,बढ़ने का कारण मीड़िया है।

नव-उपनिवेशवाद और बीमारी

मनुष्य संस्कृति के आधार पर जीनेवाला है। कभी-कभी उसको अपनी संस्कृति को छोड़कर दूसरी संस्कृति के पीछे जाना पडता है। इससे संस्कृति का ह्रास तो ज़रूर होता है साथ ही मनुष्य के स्वस्थ जीवन में दरारें पडने लगती हैं।

---

51. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.140

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नील पुरुष वेश्या है। एक बार अपने काम में वह पराजित हो जाता है। डॉक्टर के पास जाने पर पता चला कि वह यह काम आगे नहीं ले जा सकता। क्योंकि वह रोगग्रस्त है। बाद में डॉक्टर कहता है, "चिंता की कोई बात नहीं।" डॉक्टर ने सूई निकालकर फाहा उसकी बाँह पर मला, "जल्दी ही ठीक हो जाओगे। हाँ, औरतों से परहेज रखना। अगर पत्नी नहीं है, तो एक प्रेमिका तक ही सीमित रहो, वर्ना एड्स तक का खतरा है।"[52] सांस्कृतिक फिसलन के परिणाम स्वरूप नए-नए रोगों का आगमन होता है जिससे संपूर्ण मानवराशी का अस्तित्व ही खतरे में पड सकता है। उपन्यासकार इस दिशा की ओर संकेत करते हैं।

नव-उपनिवेशवाद और वेश-भूषा

पाश्चान्य संस्कृति के अनुकरण से आचार-विचार में ही नहीं वेश-भूषा में भी बदलाव आ गया है। अंग्रेज़ जो पहनते हैं वही हम पहन के अपने को अंग्रेज़ों को दिखाने की छटपटाहट में हम यह भूल जाते हैं कि हम अपना सब कुछ खो रहे हैं जो श्रेष्ठ है, अमूल्य है। 'अंधेरे से परे' में बिंदो इसप्रकार वस्त्र पहननेवाली है। उसके हर भाव में यह झलकता भी है। "बिंदो अघलेटी-सी थी। बैल्टवाली स्काई-ब्ल्यू काऊ-बॉय जीन्स के साथ अंदर खोंसी नेवी-ब्ल्यू स्कीवी। सोने की चैन ।"[53]

'मुझे चाँद चाहिए' में रंभा अभिनेत्री बनने के लिए आयी है। वह चतुर्भुज के साथ रहने लगती है। वर्षा से मिलाने के लिए रंभा को लेकर चतुर्भुज आता है तो,

---

52. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.183
53. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.69

"नवेली ग्लैमर कामिनी के अनुरूप रंभा ऐसी सजी-धजी थी, जैसे पाँच सितारा की पार्टी में आयी हो। कदली स्तंभ-सी जाँघों की झलक दिखानेवाली गहरी नीली मिनी स्किर्ट। पीली जमीन पर चौडी काली धारियों का जिपवाला टॉप। खूब चौडी छल्ले-जडी चमडे की पेटी। अधखुले जिप से झलकती वक्ष-रेखा। दायीं कलाई में लगभग कुहनी तक भरी चूडियाँ। गहरी बर्गंडी लाल लिपस्टिक। बहुत कम स्प्रे के साथ पीछे से कंघी किये गले बाल। उसकी देह की लचक, चाल और आँखें यौवन-मद से चूर थीं।"[54]

नयी पीढी पर पाश्चात्य संस्कृति का असर अधिक देख सकते हैं। सुरेन्द्र वर्मा इसको इस प्रकार व्यक्त करते हैं, "अजीबोगरीब युनिसेक्स पोशाकें ("मालूम ही नहीं पडता कि लडकी कौन है और लडका कौन !') 'शिट्', 'बोल्स' और 'स्क्रू' जैसे बेबाक उद्‌गारों से भरी धुआँधार अंग्रेजी बडे-बडे बिखरे बालों और घिसी हुई जींस के कारण उन्होंने इन्हें 'शंकर के संगियों' की संज्ञा दी थी। मीरा को उनहोंने सिगरेट सुलगाते हुए देख लिया था और हर्ष को चरस पिघलाते हुए।"[55]

ऐसी भाव-भंगिमाएँ महानगर में अधिक देख सकते हैं। यहाँ पनपनेवाली पाश्चात्य संस्कृति ने हमारे धर्म को, आचार-विचार को तोड दिया है। इसकी जगह ये सब नया रूप धारण करके आ गए हैं जो हमारी संस्कृति के अनुकूल नही हैं, "आज के सांस्कृतिक परिदृश्य में दो बातें महत्व की हैं। एक तो यह है कि विभिन्न संस्कृतियों के विकास में भिन्नता के कारण विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी भावना में भिन्नता है। इनमें प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति की संभावना के सीमाहीन होने के कारण, जिसका

---

54. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.445
55. वही, पृ.531

विवरण ऊपर दिया है, यह संभावना बनती है कि विवादों को अतिरंजित करके दिखलाया जाए और जिसमें दूसरे समूह या आराध्यदेव को अत्यधिक निकृष्ट बताया जाए और अपने समूह या राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ बताया जाए। दूसरी यह कि अभी हाल के वर्षों में संपन्न पश्चिमी देशों की संस्कृति को, विशेषकर उपभोक्तावादी संस्कृति को, सर्वश्रेष्ठ मानकर बाकी दुनिया पर इसे आरोपित किया जा रहा है। इसमें सार्वजनीन संस्कृति के अभ्युदय का भ्रम पैदा होता है। लेकिन इस प्रक्रिया में दुनिया के तमाम देशों की राष्ट्रीय या इनके भीतर की आंचलिक संस्कृतियाँ या तो लुप्त होती जा रही हैं, या इस संपर्क में बाहरी तत्वों के घाल मेल से भ्रष्ट हो रही हैं।''[56] इसका वास्तविक रूप आज के युवाजनों में दृष्टव्य है। हमारी भाषा में बदलाव आ गया है, वेश में बदलाव आ गया है।

हमारे धार्मिक एवं सांस्कृतिक संकट से अवगत होकर सुरेन्द्र वर्मा ने समाज की विसंगतियों को चित्रित किया है। समाज के अनैतिक आचार से व्यक्ति में, परिवार में, समाज में क्या परिवर्तन होता है इसको उनके उपन्यासों में दिखाया गया है। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित नारी चेतना का रूप भयंकर था। उसका प्रतिफलन सीधे हमारे देश में भी होने लगा। लोगों की मानसिकता में भी बदलाव आ गया। निरंतर देखी एवं सुनी गई बातों पर ध्यान देना स्वाभाविक ही है। इसका असर हमारी युवा पीढी पर पडता है। पैसा कमाना सभी का आत्यंतिक लक्ष्य बन गया है। सुरेन्द्र वर्मा 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' में इस सच्चाई को प्रेषित करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति पैसा कमाना चाहता है। इसके लिए कहीं जाने, कुछ भी करने के लिए लोग तैयार हो जाते हैं। आज की स्थिति को इस प्रकार व्यक्त करता है, जान प्यारी है, तो सहन करो। विद्रोह करो, तो

---

56. सच्चिदानन्द सिन्हा भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ, पृ.33-34

कीमत चुकाने के लिए तैयार रहो। हमारे सामाजिक ढाँचे का यही दस्तूर है।'' नील ने स्थिर दृष्टि से उसे देखा, ''तुम एक बहुत बडे पहिये की छोटी-सी घिर्री हो। तुम घूमने से इनकार कर दोगे, तो पहिया रुक जाएगा?''[57]

महानगर में माफिया इसलिए पनप रहे हैं कि युवा लोग पैसे के लिए तरस रहे हैं। वह कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। भोला कहता है, ''हमारे यहाँ नया लडका आया है शकील। अभी मसें भीग रही हैं। बहुत हँसमुख है। सब उसे पसन्द करते हैं। मैं ने पूछा, कोई और काम नहीं मिला, तो बोला, घिस-घिस के नहीं जीना चाहता, अकड़ के जीना चाहता हूँ, चाहे ज़िन्दगी छोटी ही हो।''[58]

माफिया के गैंग में पहुँचकर भोला भी पूरी तरह उसी की तरह हो जाता है। दो लाख रुपया कमाने के लिए आया था भोला लेकिन अब उससे बहुत ज्यादा उसने कमाया है और नील के पूछने पर वह कह देता है कि अधबीच छोडा नहीं जा सकता। इसप्रकार धन और शोहरत की खोज में युवा पीढी महानगर को माफिया का अड्डा बना लेती है।

ज्यादा पैसा कमाने के लिए नील रंडी हो गया है। नील का दोस्त इसके बारे में नील से पूछता है तो वह कहता है, ''तुम दूसरों की नैतिकता के चश्मे से मुझे मत देखो। मैं ने डाका नहीं डाला। कानून नहीं तोडा। एडल्ट औरत अपनी मर्ज़ी से मेरे पास आई।

---

57. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.157
58. वही, पृ.157

मैंने किसी को ब्लैकमेल नहीं किया । मनुस्मृति के कौन-से एंगिल से रजामंदी का सौदागुनाह तो गया?''

''रंडी को अपनी रोजी कमाने का कानूनी हक होना चाहिए?'' परेश बौखला गया ।

''बेशक । हम रंडियाँ तुम्हारे उपभोक्तावादी ढाँचे की उपज हैं । जहाँ माँग होगी, वहाँ सप्लाई होगी । पेट की जरूरत के बिना इस पेशे में कोई नहीं आता ।''[59]

और इसी पैसे के लिए कालू नील के साथ जबरदस्ती करता है । पारुल और नील के बीच झगडा होने पर नील को जेल भेजा गया है । उसीको बरबाद करने के लिए कालू को पैसा दिया जाता है, ''कालू यकायक ठिठका और नील को देखा, ''लौंडा तो चिकना है ।''

नील की साँस रुक गई यह क्या हो रहा है?

''आ बे, चुम्मा दे ।''

तीनों ने जैसे साँस रोक ली । अधेड फर्श को देखने लगा कालू उठा ।''[60]

इसप्रकार लोग किस प्रकार उपभोक्तावादी संस्कृति के शिकार बनते जा रहे हैं, यह दिखाने और समझाने की कोशिश सुरेन्द्र वर्मा ने की है । भारतीय संस्कृति आपसी

---

59. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.237
60. वही, पृ.232-233

संबन्धों की महत्ता पर ज़ोर देनेवाली है। लेकिन आज विदेशी संस्कार तथा वैज्ञानिक प्रगति मिलकर भारत की सांस्कृतिक गरिमा का भंग कर रहे हैं। मनुष्य नयी-नयी चीजों का आविष्कार तो करता ही रहता है। पर इसके साथ मानवजीवन में मूल्यगत परिवर्तन भी होता रहता है। आज जो मूल्य चालू है उनमें अधिकांश अपने नहीं विदेशी हैं। इससे हमें बचाने की कोशिश आज के लेखक कर रहे हैं।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यासों में समाज के इस संस्कृतिक ह्रास को चित्रित किया है। और लोगों को सजग बनाने की कोशिश करते हैं कि यह जीवन हमारा अपना नहीं। इसमें भारतीयता की गंध नहीं। ऐसे जीवन बिताते रहें तो हमारा पतन सुनिश्चित है। उन्हें सही मार्ग, सही जीवन, सही मूल्य, सही संस्कार से अवगत कराने का कार्य वर्तमान समय के बुद्धिजीवियों का है। सुरेन्द्र वर्मा के पात्रों के संवादों से युवापीढी का स्वप्न और उनका स्वप्नभंग दोनों स्पष्ट है "हम इस शहर में क्या ढूँढने आए थे और क्या मिल रहा है ।"[61] अंत में इसका ठीक जवाब मिलता है, "हम दोनों भारतीय सपने की तलाश में बंबई आए हैं एक बार नील ने कहा था। उस सपने को साकार करने की जद्दोजहद में एक विलुप्त हो गया, भोला ने सोचा।"[62]

ज़ाहिर है कि वर्तमान परिवेश जो आधुनिक जीवन की चकाचौंध से भरा हुआ है वह भारतीयों के उत्थान के लिए योग्य नहीं। वह उसका अपना वास्तविक परिवेश नहीं। यह परिवेश उपनिवेश संस्कृति का विस्तार है। यहीं आम आदमी अपनी

---

61. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.95
62. वही, पृ.246

असलियत को खोकर जीने के लिए विवश बना दिया जा रहा है। इस खतरे से सचेत बुद्धिजीवि आम आदमी के पक्ष में खडे होकर उसका प्रतिरोध कर रहे हैं। अत: समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। एतदर्थ सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास भी नव-उपनिवेशवादी ताकतों के प्रतिरोध का साहित्य बन गए हैं।

तीसरा अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी

आधुनिक साहित्य में एक ऐसी नारी दिखाई देती है जो निरंतर अपनी अस्मिता की तलाश में सक्रिय है। वह परिवार में, समाज में तथा व्यक्ति के रूप में पुरुष समकक्ष स्वतंत्रता और जीने का अधिकार माँगती है। एक प्रश्न उठता है कि आधुनिक नारी क्यों अपने लिए इस प्रकार संघर्ष करती है? उसकी अस्मिता की अवहेलना कहाँ और कब हुई? इन प्रश्नों के जवाब से पता चलता है कि भारतीय संस्कृति में नारी का सम्मान होता था, पर कहीं वह संस्कार याने नारी का सम्मान करने का संस्कार छूट गया है।

वैदिक युग में नारी का बडा आदर किया जाता था। उस समय विवाह केवल एक संस्था नहीं थी। मात्र कामवासना की पूर्ति उसका उद्देश्य नहीं था। उससे बढकर पति के साथ मिलकर गृहस्थ धर्म का पालन करना था। उसे सबसे बडा धर्मानुष्ठान समझा जाता था। उस समय स्त्रियाँ पुरुषों की तरह शस्त्र विद्या सीखकर युद्धों में अपनी भागीदारी निभाती थीं। वे विदुषी थीं। रामायण, महाभारत जैसे क्लासिकों के स्त्री पात्र इसकेलिए उदाहरण हैं। मतलब कि उस समय से समाज में एक समभाव बना रहा था। इसलिए मनुस्मृति में कहा गया है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' स्पष्ट है कि उस समाज में नारी की हैसियत कितनी ऊँची थी। लेकिन जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया सामाजिक व्यवस्था बदलने लगी, उसके अनुसार शासकीय प्रणालियाँ भी बदल गयीं। शासन में पुरुषों का वर्चस्व स्थापित हो गया। उसके साथ ही साथ धीरे-धीरे नारी के प्रति उसकी मानसिकता भी बदलने लगी। पुरुष की यह धारणा बन

गई कि स्त्री के ऊपर उसका ही अधिकार है। उस अधिकार भावना के परिणाम स्वरूप नारी पीछे की ओर धकेल दी गयी। फलत: समाज में नारी की हैसियत घट गई। उसे एक मानवी के रूप में नहीं एक वस्तु के रूप में समझा जाने लगा। पुरुष अपनी महत्वाकांक्षाओं की सफलता के लिए नारी को औज़ार बनाने लगा और खुद अपना स्थान देवता का जैसा बनाता गया।

पुराने समय में हम देखते हैं कि भारत वर्ष में संयुक्त परिवार ही थे। इन संयुक्त परिवारों में नारी को कोई मान्यता नहीं थी। उसका काम सिर्फ घर के पुरुषों तथा बच्चों को खिलाना था। इसकी परवाह करनेवाला भी कोई नहीं था कि दिन भर रसोई की चार दीवारों में बर्तनों के बीच घुटनेवाली उस घरवाली ने कुछ खाया कि नहीं। वह नारी इसके खिलाफ विद्रोह भी नहीं कर सकती थी। क्योंकि उस समय की सामाजिक व्यवस्था भी कुछ ऐसी थी कि नारी के लिए सब कुछ निषिद्ध था। वह पुरुष के सामने अपने विचार तक प्रकट नहीं कर पाती थी। क्योंकि, "पुरुष प्रधान वातावरण में परवरिश होने के कारण वह अब यह महसूस करती है कि प्रत्येक बात में पुरुष को ही पहल करनी चाहिए। अपने अधिकारों का दावा, उन पर दृढ़ रहने की चाह और दूसरी ओर पुरुष के लिए अधिकारों का त्याग तथा विलयन की चाह के बीच बँटी हुई एक औरत निरंतर तनाव झेलती है और टुकडा-टुकडा जीती है।"[1] अन्त में विवश होकर ही उसे पुरुष सत्ता को मानना पडता है। "वह दासता और विद्रोह की परस्पर विरोधी भावनाओं के बीच पिसती रहती है। अंत में अनिच्छा से ही वह पुरुष सत्ता मान

---

1. सीमोन द बोउवार स्त्री उपेक्षिता, पृ.325

लेती है ।''[2] ऐसी अवस्था से नारी आज बाहर आ गयी । उसकी अस्मिता की पहचान ने उसे बंधनों को तोडने में सहायता दी और पहचान का स्वर उनके मन में गूँज उठा, ''नारी यह दुनिया तुम्हारी है । इस दुनिया में तुम अपनी इच्छा से जीओ । यह दुनिया यदि एक नदी है, तुम उस नदी में तैरती रहो । यह दुनिया यदि एक आकाश है, तुम पूरे आकाश में विचरण करती फिरो । जीवन यदि तुम्हारा है, जो दरअसल तुम्हारा ही है, तो वह जीवन तुम जैसी इच्छा हो जीओ । नारी तुम अपना हक खुद हासिल करो । उसे अब पुरुष की गुफा से लहूलुहान होकर न निकलना पडे ।''[3] नारी ने यह आवाज़ सुन ली और उसने अपने लिए अपने हक के लिए लडना शुरू किया ।

स्वाधीनता परवर्ती समाज में नारी का स्वतंत्र रूप हम देख सकते हैं । उसने इस सच्चाई को पहचान लिया कि शिक्षा के अभाव के कारण ही उसका जीवन पारिवारिक दायित्व और सामाजिक विरोध के दायरे में बंद है । वह अपनी इस हैसियत से अवगत हो गई, शिक्षा के ज़रिए । तब से पारिवारिक जीवन में, दाम्पत्य जीवन में, काम के क्षेत्र में, राजनीतिक क्षेत्र में नये सामाजिक सन्दर्भों में उसकी स्थिति बदलने लगी । युग-युगों से उसके भीतर ही भीतर दमित भावनाओं, उसके भोगे हुए दु:खों, पीडाओं, तिरस्कारों एवं अपमानों ने उसे विद्रोही बना दिया । अपने विचारों को कहीं भी, किसी के भी सामने प्रकट करने का धैर्य उसने हासिल किया । नारी को इस पडाव तक पहूँचाने के लिए अनेक रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के ज़रिए सराहनीय कार्य किया है ।

---

2. हंस जून 1998, पृ.77
3. तसलीमा नसरीन औरत के हक में, पृ.52

हिन्दी उपन्यास में नारी

प्रेमचन्द से हिन्दी साहित्य जगत में नारी के प्रति एक नयी अवधारणा शुरु होती है। उस समय की सामाजिक व्यवस्था एवं साहित्यिक मान्यताओं के तहत उन लेखकों ने नारी के यथार्थ को संप्रेषित करने तथा नारी को अपनी वर्तमान हैसीयत से. अपनी शोषक शक्तियों से अवगत कराने का कार्य किया है। इस संदर्भ में शिक्षा की भूमिका तथा समाज सुधारक संस्थाओं के योगदानों को नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता। लेकिन रचना का अपना अलग प्रभाव है। इन सब ने मिलकर नारी को चिंतन के लिए विवश किया है। इस चिंतन से ही नारी ने अपने यथार्थ को, स्वत्व को पहचान लिया है। वह अपने भविष्य पर आशंकित हो उठी है। प्रेमचन्द की रचनाओं में यह यथार्थ तथा भविष्य की आशंका अनुगूंजित है। 'सेवासदन', 'निर्मला' आदि इसके लिए पार्याप्त मिसालें है। आज नारी हो या पुरुष दोनों पहले से अधिक अपने स्वत्वबोध से सचेत हैं। परंपरागत रूढ़ियों एवं बन्धनों के सामने प्रश्नचिह्न लगाने, नयी मानसिकता के तहत पुराने को नकारने या पुनर्मूल्यांकन करके स्वीकारने में वह सक्षम निकली है। अपने संबन्धों को किस तरह पालना है यह अब उसके ऊपर ही निर्भर है।

आधुनिक युग में याने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और समानता की चिंता सक्रिय हो उठी है। नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में आगे बढ़ने लगी है। युग-युगों से समाज ने उसके ऊपर जो पाबंदियाँ लगाई हैं, उन सबको तोडते हुए अपनी राह बना लेने में आज की नारी सफल हुई है। डॉ. कान्तिवर्मा के अनुसार, ''आधुनिक काल में समाज ने एक पलटा खाया और नारी के प्रति पुरुष समाज सचेत

हुआ। उसका कारण था पाश्चात्य संपर्क। पाश्चात्य साहित्य में नारी ने गौरव पाकर भारतीय साहित्य में भी एक क्रान्ति को जन्म दिया।"[4] नारी का परम्परावादी रूप सबके मन में छाया हुआ था। इसलिए उन्होंने त्याग, प्रेम, सेवा, क्षमा, दया, अहिंसा और पातिवृत्य को नारी का आदर्श माना। प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी पर होनेवाले अत्याचार का विरोध था और उसकी गूँज परवर्ती साहित्यकारों के कानों पर भी पडी। इसीके परिणाम स्वरूप प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों में विभिन्न तबके की नारियों को देख सकते हैं, जो अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए लगातार संघर्ष करती रहती है।

नर-नारी के पारस्परिक संबन्ध से सृष्टि का विकास होता है। हिन्दी साहित्य में ही क्या विश्व साहित्य में भी पुरुष की अपेक्षा नारी का चित्रण अधिक हुआ है। इससे ही नारी जाति की प्रमुखता मालूम पडती है। जिस प्रकार नारी के व्यक्तित्व के विकास के लिए पुरुष की भूमिका महत्वपूर्ण होती है, उसी प्रकार पुरुष के व्यक्तित्व विकास में नारी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नर-नारी की पूर्णता एक-दूसरे के अलग रहने से संभव नहीं, मिलन से संभव होती है। उसी प्रकार समाज की पूर्णता व्यक्ति और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध से है। साहित्य का मतलब संस्कार से है। मनुष्य का विकास उसकी संस्कृति का विकास है। सुसंस्कृत समाज या देश का मतलब वह देश जहाँ भेदभाव के बिना आपसी प्रेम और सम्मान के साथ जीनेवाले मनुष्यों का देश है।

---

4. डॉ. कान्तिवर्मा स्वातंत्र्य-पूर्व के हिन्दी-उपन्यास, पृ.141

नर-नारी के बीच का भेदभाव सभ्य समाज के लिए योग्य नहीं। पर विडम्बना की बात यह है कि समाज ने ही स्त्री को हाशिए पर रखा है, "औरतें हमेशा समाज के हाशिए पर रहती हैं, केन्द्र में नही तथा परिस्थिति हमेशा उनके प्रतिकूल रही हैं। उन्हें कभी ऐसी परिस्थिति नहीं मिली जिस पर खडी होकर वे ऊँचाइयों की ओर छलांग लगा सके। यह तो हाल ही की घटना है कि औरत दुनियाँ को अपना घर समझने लगी तथा रोज़ा लक्समबर्ग, मादाम क्यूरी का आविर्भाव हुआ। जिन्होंने यह प्रामाणित कर दिया कि स्थितियों की हीनता के कारण कोई भी औरत ऐतिहासिक रूप से उपेक्षिता नहीं, बल्कि यह ऐतिहासिक उपेक्षा है जो औरत को नगण्य बनाती है। इस ऐतिहासिक उपेक्षा को आधुनिक नारी ने समझ लिया। इसके लिए उन्हें सहायक रही आधुनिक शिक्षा। अत: आधुनिक सुशिक्षित नारी अपनी ऐतिहासिक स्थिति से अवगत हो उठी और अपने हक के लिए लडने लगी। यह लड़ाई याने कि विद्रोह उसकी अपनी हैसियत की पहचान का परिणाम है।

हिन्दी उपन्यास में नारी के विविध रूप अर्थात् शक्ति स्वरूप और असहाय रूप दोनों चित्रित हैं। स्वत्वबोध प्राप्त नारी उससे अवगत होकर आगे चलती है। नारी के आत्मज्ञान ने उसे साहित्यिक क्षेत्र में पदार्पण करने की प्रेरणा दी। अपनी ताकत की सही पहचान प्राप्त होने पर दूसरों को भी जागृत करने के लिए वह कर्मक्षेत्र में उतर आई नारी की दर्दनाक स्थिति से अवगत होकर कुछ साहित्यकारों ने नारी को अपने साहित्य में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। वह नारी चेतना का परिणाम है। ऐसे कुछ रचनाकार हुए हैं जिन्होंने नारी के उद्धार को अनिवार्य माना है। यह उनकी विशाल मानसिकता का तथा सुसंस्कृत मन का परिणाम था। यह चेतना भारतेन्दु से सक्रिय होने लगी थी।

प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, नागार्जुन आदि से होकर यह चेतना साहित्य जगत में सक्रिय एवं समृद्ध होती चली आई है। पर अधुनातन सन्दर्भ में याने कि समकालीन सन्दर्भ में नारी ने खुद महसूस किया कि अपने बारे में वह खुद क्यों लिख नहीं सकती? इस मानसिकता ने नारी आन्दोलन को जन्म दिया। उसकी प्रतिछवि साहित्य जगत में भी अनुगूँजित होने लगी। उसका परिणाम है नारी लेखन। नारी को लेकर खुद नारी का लेखन। उसमें अनुभव की तीव्रता एवं ईमानदारी है। वह पुरुषमेधा साहित्यिक क्षेत्र में अपनी अलग भूमिका लेकर आ गयी। अपनी ताकत को दूसरों तक पहूँचाने का कार्य वह करने लगी। ''अपनी मूल प्रकृति में स्त्री ज़्यादा मेहनती, ज़्यादा व्यवहार कुशल, ज़्यादा ईमानदार, कुशाग्र और लचीली है। अब तो वैज्ञानिक खोजों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि उसकी जैविक संरचना में लचक और समन्वय की ताकत ज्यादा है। ज्यादा उत्तरदायित्व आ जाने पर वह अपनी बढी हुई ज़िम्मेदारियों को भी अपनी दिनचर्या में समन्वित कर लेती है। यह ज़रूरी है कि वह अपने बारे में इस आधारभूत बात को जाने, अपनी ताकत को पहचाने। यह जानना उसके लिए आत्मज्ञान की जरूरी हिस्सा है।''[5]

आधुनिकता के सन्दर्भ में नारी जीवन यथार्थ का पर्दाफाश करने के लिए नारी के साथ अन्य कुछ लेखकों ने भी कोशिश की। ऐसे कुछ उपन्यासकार और उनके पात्र हैं मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे' की नीलिमा, निर्मलवर्मा के 'वे दिन' की रायना, उषा प्रियंवदा के 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा, 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका, अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' की रेखा, कृष्णा सोबती के 'सूरज मुखी अंधेरे की' की रत्ति, रमेश बक्षी के 'देवयानी का कहना है' की देवयानी, हिमांशु जोशी के 'छाया पत

---

5. गगनांचल वर्ष 24, अंक 4 अक्तूबर-दिसंबर 2001

छूना' की वसुधा और 'अरण्य' की कावेरी, हिमांशु श्रीवास्तव के 'रिहर्सल' की रीना, शिवानी के 'भैरवी' की राजेश्वरी, मेहरुन्नीसा परवेज के 'उसका घर' की ऐलमा आदि। इन नारियों का संघर्ष वर्तमान व्यवस्था, परंपरा एवं रूढ़ियों के खिलाफ तो है लेकिन वे सही दिशा ढूँढ निकालने में असमर्थ हो जाती हैं। यह आधुनिकतायुगीन मानसिकता की कमज़ोरी है, जिसने इन पात्रों को जकड कर रखा था। पर समकालीन रचनाओं में नारी व्यक्तित्व का और एक तेवर उभरकर आया है वह है सक्रिय विद्रोह का। ये नारी पात्र आत्मसजग हैं। वर्तमान का सही बोध रखनेवाले हैं। इन सबसे बढ़कर दिशा बोध रखनेवाले भी। वे वहाँ पहूँचने के लिए विद्रोही बन जाते हैं। इन उपन्यासकारों में सुरेन्द्र वर्मा का स्थान महत्वपूर्ण है। पुरुष होते हुए भी स्त्री मन की असलीयत को पहचानकर उसके लिए आवाज़ उठाने का कार्य उन्होंने किया है। उनके उपन्यासों में नारी के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में नारी

बहुत कम समय में कम कृतियों के ज़रिए अपनी अलग पहचान बनाने में सुरेन्द्र वर्मा सफल निकले हैं। समकालीन मध्यवर्गीय जीवन के तनावों और दबावों के साथ ही साथ नारी पर भी लिखने का कार्य उन्होंने किया है। स्त्री-पुरुष संबन्ध की जटिलताओं को और नारी मुक्ति की बेहद क्रान्तिकारी तस्वीर को भी पेश करने में वे सफल सिद्ध हुए हैं। उनके तीन उपन्यास हैं 'अंधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए' और 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता'। इन सभी में नारी का अलग-अलग व्यक्तित्व देख सकते हैं। समाज के सभी क्षेत्रों में नारी को जो कुछ सहना पडा है उन सबको उन्होंने शब्दबद्ध किया है।

अंधेरे से परे

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'अंधेरे से परे' की मुख्य पात्रा है बिन्दो। पारिवारिक जीवन को सुदृढ बनाने की नारी की कोशिश, उसके नाकामयाब होने पर टूटन का दृश्य दोनों बिन्दो के ज़रिए चित्रित किया गया है। विवाहित नारी का परपुरुष संबन्ध भी इसमें व्यक्त किया गया है। उपन्यास में नलिनी नामक पात्र है जो अड्डाईस साल के बाद भी अविवाहित होने के कारण अपने को अभागिन समझती है। उसका एक प्रेमी था। दोनों के बीच शारीरिक संबन्ध भी था। जब नलिनी गर्भवती हो जाती है,तब प्रेमी उसकी उपेक्षा करता है। एबोर्शन के लिए नलिनी मजबूर हो जाती है। इसके लिए वह अपना दोस्त गुलशन से सहायता माँगती है। यहाँ गुलशन की माँ तथा बिंदो के जरिए नारी की ममतामयी माँ के रूप को लेखक व्यक्त करते हैं। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित नारी जाति का स्वरूप भी इसमें दृष्टव्य है। क्योंकि अपने बच्चे से भी ज्यादा अपना सुख ये लोग चाहती हैं।

बिंदो विवाहित होने पर भी पर पुरुष के साथ संबन्ध रखती है। वह इसलिए कि नौकरी के नष्ट होने पर पति घर में बेकार बैठा हुआ है। यह बिंदो पसन्द नहीं करती। वह दूसरा काम ढूँढने के लिए पति को प्रेरित करती है। पर पति जित्तन अपने पुराने काम की प्रतीक्षा में है जहाँ से उसका सस्पेंशन हुआ था। केस का फैसला क्या होगा? यह किसी को भी मालूम नहीं है। वह अपने पुराने असिस्टेंट मैनेजर के पद से उतरना नहीं चाहता। बिन्दो इससे असहमत होकर अपनी आशा-आकांक्षाओं से हताश होकर जिन्दगी को और कहीं स्वस्थ पाने के लिए निकल जाती है। उपन्यास की एक दूसरी

पात्रा है मधु जो अपने भरे-पूरे परिवार को बनाये रखते हुए गुलशन के साथ संबन्ध शुरू करती है। गुलशन की मम्मी उपन्यास में है। वह नारी जीवन का प्रतिमान बिंदो में देखती है। इस प्रकार नारी जीवन के विभिन्न रूप उपन्यास में देख सकते हैं।

मुझे चाँद चाहिए

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास के जरिए नारी विद्रोह के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास अपने समय के अन्य उपन्यासों से कई मायने में भिन्नता रखनेवाला है। नारी का विद्रोही तेवर उनमें एक है। उन्होंने वर्षा वसिष्ठ द्वारा एक ऐसे नारी पात्र को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जो अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए संघर्ष के रास्ते को अपना लेती है। वह अन्य उपन्यासों के नारी पात्रों के समान पाश्चात्य सभ्यता से उत्प्रेरित नहीं। उसका विद्रोह अपनी ज़िन्दगी को रूपायित करने के खिलाफ उपस्थित होनेवाले प्रश्निल तथ्यों से है। इसलिए विद्रोह कभी उस परंपरा के प्रति होता है तो कभी उस समाज के प्रति जिसने उसे अन्धकार की काली कोठरी में बन्द करके रखा है। उन्होंने बहुत ही स्वाभाविक ढंग से वर्षा के मानसिक विकास को प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार वर्षा के ज़रिए नारी को लेकर समाज में वर्तमान विभिन्न मान्यताओं के प्रति विद्रोह करते हैं। वर्षा रूढ़ियों को तोडकर अपनी अस्मिता को बनाए रखते हुए जीना चाहती है। वह बराबरी चाहती है। अपनी इयत्ता का ध्वंस करनेवाली सामाजिक गतिविधियों के खिलाफ लडती है। पहले पहल उसका स्वत्वबोध तभी जागृत हो

उठता है जब उसे अपना नाम पसन्द नहीं आता। घरवालों से पूछे बिना वह अपना नाम बदलती है। तब से लेकर ज़िन्दगी के प्रमुख सन्दर्भों में वह अपनी पसंद की बातें करती रहती है। क्योंकि उसे मालूम हो गया था कि अपनी ज़िन्दगी जीने का हक खुद उसको ही है। और किसी को उसपर हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं। हर प्रतिकूलताओं का वह डटकर सामना करती है। जीवन के महत्वपूर्ण सन्दर्भों में वह क्रांतिकारी निर्णय लेकर दूसरों को चौंकाती भी है। इस प्रकार वर्षा अपने हक पर जीने का महत्वपूर्ण निर्णय लेती है और उस पर अडिग रहती भी है।

वर्षा के अलावा उपन्यास में और भी नारी पात्र हैं जो समाज के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करते हैं। वे विद्रोही नहीं। वे सब कुछ सह लेने वाले हैं। अपनी नियति पर कोसती है। वर्षा के ही घर में उसकी माँ है जो अपने पति परमेश्वर की चरण धूलि में जी रही है। बहन है जो अपने माँ-बाप और पति का अनुसरण करते हुए परंपरा का निर्वाह करती है। वर्षा की कामयाबी के पीछे उसकी अध्यापिका दिव्या कत्याल है। उसकी प्रेरणा ही वर्षा को अपनी मंज़िल तक पहूँचाती है। नाटक और फिल्म के क्षेत्र में ऐसे कई लोग हैं जो अपना स्थान बनाये रखने के लिए कुछ भी करने को तैयार होकर रहते हैं। इस प्रकार के अनेक पात्रों से तथा उनके यथार्थों से हम इस उपन्यास में परिचित हो जाते हैं।

वर्षा के माध्यम से आत्मसजग नारी के विद्रोही व्यक्तित्व को बुलन्द कर दिया गया है। वह अपनी इच्छा और आकांक्षा के अनुसार जीना चाहती है। अपने रास्ते की प्रतिकूलताओं को तोड़ते हुए वह चाँद को हासिल करना चाहती है। इसके लिए वह

किसी भी लक्ष्मण रेखा का अतिक्रमण करने के लिए तैयार हो उठती है। यह विद्रोह दरअसल आधुनिक नारी का विद्रोह है। समाज के अन्धविश्वासों, रूढियों एवं अत्याचारों के खिलाफ का विद्रोह है। इस अर्थ में 'मुझे चाँद चाहिए' समकालीन जीवन यथार्थ की तथा नारी विद्रोह की बहुस्वरता को संप्रेषित करनेवाला उपन्यास ठहरता है।

दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' में नारी जीवन के एक विकृत पहलू को प्रस्तुत किया है। नारी की भव्य मूर्ति की जगह कामपूर्ति के लिए व्यग्र अमीर घराने की नारी का चित्रण हुआ है। वह अपने लिए पुरुष वेश्या ढूँढती है और हाइरेट का मेहनताना भी देती है। इस उपन्यास में अपनी आजीविका के लिए रस्तराँ में नंगा डांस करनेवाली शालू भी है। इस प्रकार नारी के दो रूप चित्रित किये गये हैं। यौन के स्तर पर नारी पुरुष के समान मुक्त नहीं है। उसके लिए एक सीमा निर्धारित है। उस सीमा को तोड़कर जाने में वह अशक्त है। लेकिन उस सीमा का उल्लंघन करती है तो उसे रोकने के लिए कुछ भी पर्याप्त नहीं बनता, "अनुगूँज है कि जब तक स्त्रियाँ भी यौनस्तर पर पुरुष की तरह मुक्त नहीं हो पायेंगी, पुरुषों के समक्ष वास्तविक समानता नहीं आ सकेगी।"[6] उपन्यासकार यहाँ समानता के नकारात्मक तथा सकारात्मक सन्दर्भों को हमारे सामने रख देते हैं।

---

6. डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श, पृ.17

इस प्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने नारी की दयनीय स्थिति के खिलाफ आवाज उठाने का कार्य किया है। नारी की अस्मिता का सही रूप तथा पाश्चात्य संस्कार के प्रभाव से उभरी गलत धारणा दोनों को दिखाने का कार्य उपन्यासकार ने किया है।

शिक्षित नारी और रूढ समाज

भारतीय समाज रूढियों से ग्रस्त है। ये रूढियाँ कभी-कभी उसकी प्रगति के पथ पर बाधक बनती हैं। चाहे मनुष्य कितना भी शिक्षित तथा आधुनिक क्यों न हो उसमें रूढियाँ अवश्य बनी रहती हैं। रूढियाँ परंपरा में शामिल हैं। उसको तोडने की क्षमता हर किसी में नहीं होती। जो प्रगतिशील है और परंपरा के विरोधी हैं, वे ही तोड सकते हैं। नारी को क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए इसका फैसला भी समाज ही लेता है। इसके लिए कुछ नियम बनाए गए हैं। इन नियमों के तहत नारी की मुक्ति असंभव है। फिर भी वह रूढ परंपरा का निषेध करती है।

हर समाज की अपनी परंपरा होती है। परंपरा से जो बात चली आती है उसीके अनुसार समाज का सृजन होता है। वह परंपरा भी मनुष्य की सृष्टि है। उसमें कुछ नियम ऐसे भी होते हैं जिन्हें अपनी सुविधा के अनुसार वह बदल सकता है। पुरुषवर्चस्ववादी समाज पुरुष को प्रमुख स्थान देकर नारी को घर की चार दीवार के अन्दर बन्द कर लेता है। परंपरा से यह चलता आ रहा है। पुराना समाज नारी को शिक्षा का अधिकारी नहीं मानता था। लेकिन धीरे-धीरे परिवर्तन आ गया। अब वह शिथिल है। आदर्श भारतीय नारी की उपाधि से अब वह उतना संतुष्ट नहीं होती। वह रूढ़ परंपरा का निषेध करती है।

अत्याचारों के खिलाफ सक्रिय कदम उठाती है। अन्याय के विरुद्ध मोर्चा लगाती है। उसने पहचान लिया है कि विद्रोह ही वह रास्ता है जिससे उसकी वास्तविक मुक्ति संभव हो।

आज की नारी सहिष्णुता की मूर्ति नहीं बल्कि प्रतिरोध की नारी है। वह यथार्थ को पहचानकर उसके अनुसार प्रतिक्रिया करनेवाली है। वह भविष्य को लेकर चिंतित है। इसलिए बिंदो पति जित्तन से कह उठती है, ''सस्पेंड हुए पूरा साल होने को आ रहा है। जो थोडा-सा बचाया था, खा-पीकर बराबर कर चुके हैं अपना नहीं, मेरा नहीं कम से कम बच्चे की तो सोचो।''[7]

बिंदो अपने पति को जताना चाहती है कि परिस्थिति के अनुसार अपने को बदलना चाहिए। नहीं तो आज के सन्दर्भ में जीना मुश्किल है। ''केस का फैसला अभी पाँच साल और नहीं होगा ! इस मुल्क की अदालतों को तुम जानते नहीं हो? और मान लो रिश्वत का जुर्म साबित हो गया, तो ?''[8] घर जमाई बनकर जीना एक पति के लिए योग्य नहीं है। जो बहुत मजबूर और कमजोर हैं वही ससुराल में रहने के लिए तैयार हो जाते हैं, वह भी विवशता के साथ। इसलिए बिंदो पूछ उठती है, ''ससुराल में इस तरह रहते हुए तुम्हें कोई जलालत महसूस नहीं होती?''[9]

---

7. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.13
8. वही, पृ.12-13
9. वही, पृ.13

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा वसिष्ठ भी अपनी परंपरा को नकारनेवाली है। हमारी परंपरा के अनुसार बच्चे का नामकरण करने का अधिकार पिता को है। जो नाम पिता रखते हैं उसे स्वीकार किया जाता है। उस नाम को अपनी इच्छा के अनुसार कोई बदलता नहीं। वर्षा का पहला विद्रोह अपने नाम को लेकर था। वर्षा के पिता ने उसका नाम रखा था यशोदा शर्मा। लेकिन वर्षा को यह नाम पसन्द नहीं आया। उसने पिता के सामने इसका स्पष्टीकरण यों प्रस्तुत किया है, "अब हर तीसरे-चौथे के नाम में शर्मा लगा होता है। मेरे क्लास में ही सात शर्मा है और यशोदा? घिसा-पीटा दकियानूसी नाम। उन्होंने किया क्या था? सिवा किशन को पालने के? यशोदा शर्मा नाम में कोई सुन्दरता नहीं।"[10] इसप्रकार वह अपना नाम खुद बदलकर वर्षा वसिष्ठ कर देती है। इस प्रकार उसने परंपरा पर पहला धक्का लगा दिया।

रूढ़िग्रस्त समाज ने विवाह के बारे में अपने कुछ नियम बना रखे हैं। वे लोग प्रेम विवाह के खिलाफ हैं। स्कूल में पढते समय वर्षा की सहपाठिन के भाई प्रकाशमणी को लेकर वह पहली बार प्रेम विवाह के बारे में सुनती है। उसने यह भी जान लिया था कि प्रकाशमणी के पिता ने इसका विरोध किया था और अंत में परंपरा और रूढ़िग्रस्त समाज की जीत हुई और प्रकाशमणी पराजित हो गया।

लड़की की शादी तय करने के बाद अगर वह रिश्ता टूट जाता है तो परिवार की इज्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी। यह भी एक प्रकार की रूढ़िग्रस्तता है। वर्षा की शादी

---

10. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.16-17

परिवार द्वारा तय की जाती है। लेकिन वर्षा उस शादी के लिए तैयार नहीं थी। वह नाट्यविद्यालय चली जाती है। उसके बाद वर्षा के पिता नाट्यविद्यालय के निदेशक डॉ. अटल के नाम पत्र लिखता है, "आपको यह पत्र लिखते हुए मुझे दु:ख हो रहा है, पर एक पिता के नाते मैं विवश हूँ। वर्षा मेरी इच्छा के विरुद्ध इस विद्यालय में भर्ती हुई है। अब वह निश्चित विवाह के लिए आने को प्रस्तुत नहीं है। समाज में हमें कैसे कलंक का सामना करना पडेगा, आप समझ सकते हैं। मेरा आपसे अनुरोध है कि उसे समझाने की कृपा करें। हमारी पारिवारिक प्रतिष्ठा खतरे में है।"[11]

अशिक्षा के कारण लोगों को यह पहचानने में कठिनाई होती है कि क्या सही है, क्या गलत? परंपरा से जो रूढिग्रस्त मानसिकता चली आ रही थी वह सभी को अपने में समेटकर आगे बढ़ रही है। यह मानसिकता ही नारी का अभिशाप था। वर्षा पढ़ी लिखी होने के कारण इस मानसिकता को पहचान सकी और उसके विरुद्ध काम भी करने लगी। लडकी का अकेले रस्तराँ जाना, जीन्स पहनना आदि वर्षा करती है। लडकों के साथ बात-चीत करना रात को देर से लौटना और लडकों के हाथ से हाथ मिलाना आदि लडकी को शोभा नहीं देते। यही उसके रूढिग्रस्त परिवार की मान्यता है। पर वर्षा यह सब करने को तैयार हो जाती है। उसको मालूम था कि लडके के हाथ से हाथ मिलाने से कुछ भी होनेवाला नहीं है। इसलिए वर्षा उस मान्यता के खिलाफ विद्रोह करती है।

---

11. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.115

वर्षा पुरातन पंथी ब्राह्मण परिवार की संतान है। परंपरा के अनुसार लडकी की शादी जल्दी से करा देनी चाहिए और उसको शिक्षा भी कम देनी है। शायद इसके पीछे ऐसा एक कारण भी होगा कि शिक्षा प्राप्ति के कारण नारी अपनी अस्मिता को पहचान लेगी और इससे वह परंपरा से चले आनेवाले अत्याचारों के विरूद्ध आवाज भी उठायेगी। जब वर्षा की शादी की बात आ गयी तो उसने साफ बता दिया कि वह पढने के बाद नौकरी करना चाहती है। पिता क्रुद्ध हो उठे और कहा, "हमारे वंश में कभी लडकी ने नौकरी नहीं की।"[12] हमारे समाज की विडम्बना ही यही है कि परंपरा को दोहराते हुए उसके अनुसार जीना ही सभी लोग चाहते हैं। वर्षा इसका जवाब यों देती है, "वंश में जो नहीं हुआ, वह आगे भी न हो यह ज़रूरी नहीं।"[13] वर्षा के माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा यहाँ आधुनिक नारी को प्रस्तुत करके परंपरा के अनावश्यक एवं अनचाहे नियमों को तोडकर उसे अपनी अस्मिता को बनाये रखने में कामयाब बनाते हैं।

अभिनेत्रियों को हमारा समाज स्वीकार नहीं करता। उसे समाज सन्देह की दृष्टि से देखना पसन्द करता है। यद्यपि समाज प्रगति की तरफ बढ़ रहा है तथापि वह परंपरा की कुछ ऐसी रूढ़ियों को भी अपने साथ लेकर चलता है, जो कभी कभी उसकी प्रगति में ही बाधक बन जाती हैं। उपन्यास की नायिका वर्षा भी आधुनिक युग के रूढि ग्रस्त परिवार की कन्या है। परिवारवालों के सख्त विरोध के बावजूद वर्षा नाटक में काम करने के लिए तैयार हो जाती है। यह बात सुनकर पिता पूछता है, "यह मैं क्या सुन रहा हूँ?" शर्माजी दरवाज़े पर खडे थे। एक हाथ में छाता, दूसरे मैं थैला।

---

12. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.77
13. वही, पृ.77

"तू नौटंकी में काम कर रही है? कान खोल कर सुन ले, हर बात की हद होती है। आखिर हमारे घर की भी कोई इज्ज़त है।"[14] वर्षा नाटक में काम करनेवाली अन्य लडकियों के बारे में पिता से कहती है और यह भी कहती है कि यह 'क्लासिकल ड्रामा' है। तो पिता आगे कहते हैं, "मुझे सिर्फ अपने घर से मतलब है। तेरे साथ लडके भी काम कर रहे हैं। एक के साथ तू नाचती है और गाना गाती है। कल के दिन कुछ ऊँच-नीच हो गया, तो हमें मुँह छिपाने को जगह नहीं मिलेगी। लडकी की लाज मिट्टी का सकोरा होती है।"[15]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में नील और किरण के बीच शारीरिक संबन्ध होता है और किरण गर्भवती हो जाती है। जाति में नील कायस्थ और किरण ब्राह्मण है। इस बात का पता चलने पर डॉ. शर्मा गुस्से से लाल हो जाते हैं और नील से कहते हैं, "कायस्थ को बेटी देकर हमें खानदान की नाक कटवानी है।" मजबूरी की अवस्था में भी कायस्थ को लडकी देने के लिए वह तैयार नहीं हो जाते।

शिक्षा प्राप्ति के बाद ही नारी समझ पाती है कि चुप्पी से उसका ही दोष होता है। सब कुछ सहन कर आँखें मूँदकर जीने से अच्छा है गंगा में कूदकर मरना। इसीलिए डॉ. सुरेश सिन्हा लिखते हैं, "अब समय आ गया है कि आप युगों के अन्धकार में बन्द सदियों के क्रूर निर्यातन से पीडित नारी आत्मा के अन्तस्तल में निहित विद्रोह की आवाज को किसी भी छल-छद्म से दबाने में समर्थ नहीं हो पायेंगे। उनकी अन्तरात्मा की वह

---

14. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.32
15. वही, पृ.32
16. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.10

फुफकारती हुई पुकार समाज की प्रत्येक कन्दरा में गूँजती हुई प्रचण्ड विस्फोटों के साथ बाहर के जगत में फूटने के सुस्पष्ट लक्षण प्रकट कर रही है। साथ ही अपने चारों और की काली-काली दीवारों को तोडने और फोडने में भी उसका अन्तर्विद्रोह निकट भविष्य में सफल होकर ही रहेगा।"[17] इस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के खिलाफ सक्रिय विद्रोह में लगे हुए नारी पात्र सुरेन्दवर्मा के उपन्यासों में सुलभ हैं। यह उनकी नारी विषय मानसिकता को स्पष्ट करता है।

स्वत्वबोध प्राप्त नारी और परिवार

लज्जा, सहनशीलता, त्याग एवं बलिदान प्राचीन काल से ही नारी चरित्र के विशिष्ट आभूषण मानते आए हैं। इन सब का पालन करते हुए घर की चार दीवारी में बन्द रहना स्त्री का कर्तव्य माना जाता था। बाहर निकलने का बहुत कम अवसर ही उसे प्राप्त होता था, वह भी बुजुर्गों के साथ इसी कारण वह बाहर की बातों व घटनाओं से अनजान रहती थी। घर के बुजुर्ग लोग जो कहें, चाहे सही हो या गलत उसका पालन वह करती रही। अगर वे कुछ गलत बोलें तो उसके विरुद्ध बोलना पाप समझाया गया था। इसी खास मानसिकता में पली नारी जब शिक्षा संपन्न होने लगी तो उसकी अवधारणाएँ बदलने लगती हैं। वह अपने स्वत्व को पहचान लेती है। समाज में व्याप्त असंगतियों, विषमताओं एवं अत्याचारों को पहचान कर अपनी हैसियत पर सोचने में वह सक्षम बन जाती है। आज की नारी जागृत है। वह अंधविश्वासों पर आँखें मूँद नहीं लेती। रूढ़िवाद वह सह नहीं सकती। आज वह सोच-समझकर अपना जीवन जी

---

17. डॉ. सुरेश सिन्हा हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ.278

रही है, "आधुनिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के फलस्वरूप इस काल में नारी के व्यक्तित्व का यथेष्ट विकास हुआ है। इस शिक्षा से उसे नई दृष्टि मिली, उसका विवेक जागृत हुआ, अपनी स्थिति का ज्ञान मिला और उसका मन प्राचीन स्थिति के बन्धन से मुक्त होकर अपने विकास के स्वप्न देखने लगा।"[18] परम्परागत वर्जनाओं से मुक्ति पाने का प्रयास नारी कर रही है। वह पूर्णत्व की खोज में प्रयत्नशील भी है। अपने स्वत्व को पहचानने के सिलसिले में वह जान सकी है कि वह क्या कर सकती है, क्या नहीं?

'अंधेरे से परे' उपन्यास की बिंदो अपने पति को नौकरी से निकालने पर उसकी सहायता करने के लिए दूसरों से बात करती है। अपनी सहेली से बात करके उसके पिता के यहाँ नौकरी पक्का कर लेती है। बस जित्तन को वहाँ तक जाना काफी था। पर वह उसके लिए सहमत नहीं था। बिंदो का तनावग्रस्त मन जित्तन से दूर होने लगता है। उसे यह भी मालूम हो जाता है कि सोमू भी उससे ज्यादा पापा को चाहता है। वह परेशान हो जाती है। वह सबसे दूर चली जाती है। अपना रास्ता खुद खोजने के लिए वह मजबूर हो जाती है। अपने भाई गुलशन से वह अपनी विवशता यों प्रकट करती है,"मैं कुछ नहीं कर सकती। मेरे बस में कुछ नहीं रहा। उसने हताशा से हाथ फैलाई, मैं नहीं चाहती थी कि कुछ ऐसा हो। पर अब मैं बिलकुल विवश हूँ।"[19]

नया रास्ता ढूँढ लेने के बाद भी वह दु:खी रह जाती है। अपनी निजी बात भी भाई के सामने खोलकर बता देती है, "तो तुमने नहीं देखा कि मैंने कितनी यंत्रणा है? बिंदो की उस निगाह की ताब नहीं ला सका। देखते-देखते उसकी आँख

---

18. बिन्दु अग्रवाल हिन्दी उपन्यास में नारी चेतना, पृ.218
19. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.132

कोरों पर नमी-सी आने लगी विक्षोभ की हल्की लालिमा की जगह उजली आर्द्रता, जो पुतली की सफेदी पर एक परत की तरह चढ़ गई और साथ में इतनी व्यक्तिगत चीज की दुहाई देने की शर्म ।''[20] आखिर परिवार से अलग होकर अपने लिए जीने को वह मजबूर हो जाती है।

स्वत्वबोध प्राप्त नारी कभी भी अपने परिवार का विघटन नहीं चाहती । अगर कहीं ऐसी स्थिति आ जाती है तो वह उसको रोकने की कोशिश करती है। अपने पति जित्तन का पतन देखने के बाद बिंदो अपने भाई से कहती है, ''सवाल दुनिया में अपनी जगह जानने का और उसके साथ किन्हीं शर्तों पर जुडने का है। उस आत्मविश्वास का है, जो तुम्हें अंदर-बाहर से मज़बूत बनाएगा, तुम्हारे व्यक्तित्व को ही बदल देगा। एक उम्र के बाद आर्थिक निर्भरता, चाहे वह कितनी ही कम और किसी से भी हो, कई तरह की ग्रंथियों को जन्म दे सकती है। इसी घर में इस सच्चाई का एक कडवा उदाहरण तुम्हारे सामने है। मैं कभी नहीं चाहूँगी कि तुम्हारे माध्यम से मुझे दूसरा नमूना देखना पडे।''[21]

सोचने की क्षमता स्वत्वबोध से ही मिल जाती है। परिवार के बारे में सोचते साथ ही साथ वह अपने बारे में भी सोचती है। पुरुष के समान वह भी समाज में अपने इच्छानुसार जीना चाहती है। अपने अन्दर जो मानसिक और शारीरिक अतृप्ति उसको पहले की तरह दबाने के बजाय खुल्लम खुल्ला व्यक्त करने का धैर्य और

---

20. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.233

21 वही, पृ.39

उसमें आ गया है। पुरुष की गलतियों को व्यक्त करने की क्षमता स्वत्वबोध से ही मिलती है।

परंपरा और परिवार परस्पर संबद्ध है। लड़की का जन्म होने पर हर परिवार में खुशी की जगह दु:ख छा जाता है। पिता के लिए लडकी एक बोझ है। वे उसे जल्द से जल्द किसी के हाथों सौंपकर अपने दायित्व से छुटकारा पाना चाहते हैं। हर लडकी के मन में अपने भविष्य, शादी-शुदा जीवन आदि के बारे में अलग-अलग सपने होते हैं। लेकिन एक निर्धन परिवार की लडकी के लिए सारे सपने हवामहल की तरह हैं। वे कभी सच नहीं बनते। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा इस सच्चाई से अवगत थी। इसलिए जब उसके घरवाले उसकी शादी की बात करते हैं तो वह कहती है, "आयू के जिस मोड पर मैं खडी हूँ उसमें शादी मुझे उतने महत्व की नहीं लगती जितना अपने पांवों पर खडा हो लगता है।"[22] वर्षा की इस प्रतिक्रिया पर भाई यों जवाब देता है, "यह तुम क्या कह रही है? वंश की एक परंपरा होती है। उसके खिलाफ आदमी कैसे जा सकता है?

"अगर चारा न हो तो जाना ही होगा।" वर्षा ने उत्तर दिया, "यह मैं मानती हूँ वजह से घर के लोगों को बाहर दो बातें सुननी पडेंगी, लेकिन ऐसा होना मेरी होगी।"[23] वर्षा को मालूम था कि भैया मजबूर होकर ऐसा कह रहे हैं। लेकिन दूसरों की खुशी के लिए अपनी आशा-आकांक्षाओं को त्यागना नहीं चाहती।

---

22. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.48
23. वही, पृ.48

एक ही जाति के स्त्री-पुरुष की शादी सामाजिक दृष्टि में ठीक है। यही परंपरा है। अत: बाह्मण और कायस्थ की शादी कभी नहीं हो सकती। वर्षा के पिता भी इसी प्रकार की मान्यता रखनेवाले हैं। पर वर्षा हर्ष से प्यार करती है। हर्ष एक कायस्थ लडका है जिसे वर्षा का परिवार कभी स्वीकार नहीं कर सकता। यह बात वर्षा अपने पिता और भाई से खुल्लम खुल्ला बता भी देती है। इस पर पिता की प्रतिक्रिया "जाति-भेद हिन्दु घर्म का आधार है।" पिता ने कहा था, "झल्ली ने प्रेम करने की भूल ज़रूर की है, पर किया तो ब्राह्मण से है, इसलिए उसका गढ़बन्धन विवाह के आठ प्रकारों में सर्वोच्च 'ब्राह्म' मान जाएगा, जो माता-पिता की सहमति से होता है। पर हर्ष के साथ तुम्हारा परिणय सबसे नीची किस्म का 'पैशाचिक' ही रहेगा।"[24] पिता की दृष्टि में भिन्न जाति के स्त्री-पुरुष के बीच का प्रेम और विवाह दोनों पाप है, वर्ज्य है। आचारों के अनुसार की जानेवाली शादी ही शादी है। वह पवित्र कर्म है जिससे कुल की मान बढती है। शेष सब पैशाचिक वृत्ति मात्र है। लेकिन वर्षा हर्ष से उसका संबन्ध तोड़ नहीं। वह इन सब बातों को नज़र अन्दाज कर देती है।

जब वर्षा स्वतंत्र रूप से अपने जीवन में कोई कदम उठाती है तो यह बात कहकर उसे अपने रास्ते से हटाने का प्रयास बुजुर्ग लोग करते रहते हैं। गृहस्थी संभालनी चाहिए न कि बाहर जाकर काम करना। नौकरी करना लिए अपमान की बात है। लेकिन वर्षा इसका निषेध भी करती है।

---

24. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.533

पीढ़ी दर पीढ़ियों की गरिमा बताकर इसका विरोध करते हैं तो वर्षा कहती है, "परिवार की सात पीढ़ियों में किसी स्त्री ने काम नहीं किया, पर मैं कर रही हूँ।"[25]

वर्षा में अपने परिवार की चिंता है। उसके लिए वह भावविभोर हो उठती है। क्योंकि परिवार हमारी संस्कृति है। संबन्धों की महानता इस संस्कृति की अपनी विशेषता है। वर्षा की कामयाबी को कबूल करते हुए पिता कुछ दिनों के लिए उसके साथ रहने के लिए आते हैं। तब से वर्षा अपनी ज़िन्दगी को पिता के इच्छानुसार बहुत कुछ बदलती है, "पिता के कारण जीवन शैली बदल गयी थी। इस स्थिति ने एक बडे अंतर्द्वन्द्व को जन्म दिया था। अगर पिता न होते तो वह जब एक्टर्स एकेडमी गयी थी, तभी लौटते हुए हर्ष को घर ले आती। सिर्फ झल्ली और हेमलता ही होतीं, तब भी खास हिचक न होती। हर्ष को अपने मास्टर बेडरूम में ही रख लेती। पर जब पिता के दुर्बल चेहरे का क्लाज-अप सामने आया, तो वर्षा ऐसा साहस नहीं जुटा पायी। वे हर्ष को लेकर वर्षा की आशंका नहीं समझेंगे और इस बात की व्याख्या इस रूप में करेंगे कि सिलबिल आत्मनिर्भर है, इसलिए मनमानी कर रही है। पिता के साथ वयस्क ज़िन्दगी में पहली बार आत्मीयता पनपी थी। वह उन्हें आहत करने के विचार से कमज़ोर पड गयी।"[26]

स्वत्वबोध ही मनुष्य को आगे बढने की प्रेरणा देता है। परिवारवाले या समाज जैसा भी हो सभी जंजीरों को तोडकर आगे जाने का रास्ता स्वत्वबोध दिखा देता है। हमारी सीमा क्या है? क्या-क्या हम कर सकते हैं, यह खुद हम ही जान सकते हैं।

---

25. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए पृ.526
26. वही, पृ.522

दूसरों से इसका कोई संबन्ध नहीं है। कभी-कभी अपनी भलाई पहले दर्जे में हैं, फिर भी ज़्यादातर फायदा घरवालों को ही है। परंपरा को तोडकर परिवारवालों की इच्छा के विरुद्ध अपने पैरों पर स्थिर रहने का निर्णय लेने पर वर्षा बहुत कुछ हासिल करती है। वर्षा के कमाऊ बनने के बाद पिता ने उसके नाम एक चिट्ठी लिखी, ''यह समाचार ऐसे ही है', पिता ने लिखा था, 'जैसे कोई ताँबे का पैसा ढूँढ रहा हो और उसे स्वर्ण-मुद्राओं से भी मंजूषा मिल जाये। हमारी सात पीढियों में कभी कोई उत्तर प्रदेश से बाहर नहीं निकला, सभी किरायों के आवासों में रहे। तुमने इन दोनों परंपराओं को तोडा और वह भी मायानगरी बंम्बई में ! मैं तो विस्मय विमूढ हूँ।''[27] इस प्रकार उसके हर कदम पर दखल देनेवाले परंपरावादी पिता आखिर अपनी बेटी के विचारों एवं कर्मों को स्वीकारते हुए दिखाई देते हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' की शालू रातरानी रस्तराँ में नाचनेवाली है। रस्तराँ में जाकर नंगा डांस करना आदर्श भारतीय नारीत्व के खिलाफ है। लेकिन अदर्श से भूख नहीं मिटती। उसके लिए कुछ काम करना ही चाहिए। शालू की मजबूरी यही थी, ''पाँच वर्ष पहले श्रमिक पिता के मरने के बाद उसने कई तरह के काम किए। पेशे में आ गई। उसका छोटा भाई तेरह साल का है और दो बहनें आठ व नौ की अपने परिवार को बचाने के लिए उनको खाना खिलाने के लिए शालू ऐसा काम निकल जाती है। देह को अनावृत करके रस्तराँ में आनेवाले के साथ मुस्कु नाचनेवाली शालू अपनी मुस्कान को बनाये रखने के लिए भीतर ही भीतर काफी कोशिश

---

27 सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए पृ.379

28. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता. पृ.7।

करती रहती है, "कुछ विरामों के बाद शालू के सिर्फ दो अंतर्वस्त्र ही बचे रहे। अब उसके साँवले तन पर जहाँ-तहाँ पसीने की नमी उभर आई थी। माथे पर कुछेक बूँदें छलछला रही थीं। वैसी ही अधखुली मुस्कान अभी भी उसके चेहरे पर थी, पर उसे बनाए रखने की कोशिश भी उजागर थी।"[29] क्योंकि यह मुस्कान ही परिवार के सदस्यों की भूख मिटाती थी।

अपने परिवार को बचाने के लिए और कभी-कभी खुद को बचाने के लिए नारी को अपने परिवार के विरुद्ध आवाज उठाना पडता है। स्वत्वबोध से ही यह संभव है। अपने इस विशिष्ट व्यक्तित्व की सुरक्षा के लिए उसे पथरीले रास्ते से बहुत दूर तक चलना पडता है। संघर्षपूर्ण जीवन के ज़रिए नारी यह कर दिखाती है कि उसका एक अलग व्यक्तित्व है। लेकिन सभी लोग इस बात की ओर ध्यान नहीं देते। इसलिए परिवार में संघर्षपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। अपने स्वत्वबोध को कायम रखते हुए ज़िन्दगी में आगे बढ़नेवाली नारी परिवार की ही नहीं, सारे देश की शान है।

विद्रोही नारी और समाज

बार-बार की पराजय से विद्रोह पैदा होना स्वाभाविक है। अपना अधिकार छीनने पर, कामयाबी को अस्वीकार करने पर, अपनी क्षमता पर थोप डालने पर तनाव, संघर्ष और घुटन पैदा होता है उसका परिणाम है विद्रोह। नारी समाज द्वारा गई कुछ पाबंदियों में जकडी हुई है। उसके अनुसार नारी को हमेशा पुरुष के अधीन

---

29. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.40

रहना चाहिए। अर्थात् पुरुष ही प्रमुख है और वह जो कहेगा, उसका पालन करना ही नारी का कर्तव्य है। जब इसके विरुद्ध पुरुष के ऊपर नारी अपनी कामयाबी सिद्ध करती है तो समाज उसको स्वीकारने में हिचकता है। इस कारण संघर्ष पैदा हो जाता है। संघर्ष का परिणाम परिवर्तन है। क्योंकि समाज को मुख्यत: तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। उच्च वर्ग के लोग धनी है। शिक्षा प्राप्त भी हैं और इन लोगों की मानसिकता भी कुछ ऊँचे स्तर की है। वहाँ नारी की स्थिति काफी आशाजनक है याने अन्य वर्गों की नारियों की अपेक्षा रूढ़िग्रस्त परम्परा से वह काफी मुक्त है। दैनिक जीवन तथा चिन्तन में भी ये लोग बहुत आगे हैं। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ने इनकी पारिवारिक स्थिति तथा पारम्परिक स्थिति में अनेक परिवर्तन उपस्थित किए हैं। पश्चिमी नारियों की भाँति स्वतंत्र रहना ये लोग चाहती हैं। कीमती कपडे पहनती हैं, स्वच्छंद होकर घूमती हैं, नया रहन-सहन अपनाती हैं, यौन तृप्ति के लिए कई मार्ग ढूँढती हैं। इस प्रकार जीने का एक नया अन्दाज वे बना लेती हैं। इस तरह के उच्चवर्गीय नारी पात्रों की मानसिकता भी साहित्य में अभिव्यक्त हुई है।

मध्यवर्ग, उच्चवर्ग और निम्नवर्ग के बीच स्थित है। उनका अपना अलग स्थान है, अपनी अलग मानसिकता है। वह आदर्श रूढियों के बीच डगमगाता रहता है। इनके लिए आधुनिक होना जितना आवश्यक है उतना ही परंपरा का अनुगमन करना भी। मध्यवर्ग में नारी की कामयाबी को लेकर काफी संघर्ष चलता है। समाज से वे लोग डरते हैं। लेकिन ये अपने को आधुनिक दिखाने का प्रयास भी करते हैं। पुरुषवर्चस्ववादी समाज के नियमों एवं रूढ़ियों के तहत ये लोग नारी के प्रति निम्न दृष्टि रखते हैं। अधिकांश रचनाकार मध्यवर्ग के होने के कारण मध्यवर्गीय नारी की पीडा को

निकट से देखने और समझने का अवसर मिला है। इसलिए साहित्य में इनके यथार्थ का चित्रण अधिकतर हुआ है। प्रेमचन्द ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की दृष्टि से हटकर समय की मांग को पहचान कर नारी की समस्याओं को उठाने का प्रयास किया है। सामाजिक बंधन एवं रूढि ही नारी की दुर्दशा का कारण है। यह पहचानकर कुछ साहित्यकारों ने नारी के प्रति सुधारवादी दृष्टि अपनाई और इस युग सत्य की अभिव्यक्ति कर दिखाने का प्रयास किया है। उसके बाद के उपन्यासकारों ने भी प्रमेचन्द की रचना की वास्तविकता को पहचानकर नारी की यंत्रणा को तथा उसकी मुक्ति की अनिवार्यता को रचना का विषय बनाया है। वह सिलसिला अब भी जारी है।

निम्नवर्ग के लोग निर्धन होते हैं। उन्हें शिक्षा कम मिलती है। मध्यवर्ग की नारी की भाँति निम्नवर्ग की नारी भी बहुत कुछ झेलती है। दोनों के संघर्ष का मुख्य कारण आर्थिक परिस्थिति ही है। अंतर सिर्फ इतना है कि मध्यवर्गीय नारी शिक्षित होती है और निम्नवर्गीय नारी अशिक्षित। इसलिए इन लोगों के सोचने-समझने के तरीके भी अलग हैं। अधिक संवेदनशील न होने के कारण झूठी इज्जत ओढकर जीना वह जानता नहीं। इस वर्ग की नारी की विशेषता यह है कि कोई भी काम करने को वह तैयार होती है। पुरुष पर निर्भर रहने के बजाय अपनी आजीविका खुद कमाती है। दूसरों की परवाह न करने के कारण घर का काम और बाहर का काम दोनों आसानी से वह कर दिखाती है। तीनों वर्गों की नारी में अपना-अपना गुण भी है और दोष भी। समाज जब इनके कार्यकलापों में दखल डालता है तो वह विद्रोह की ज्वाला बन जाती है।

'अंधेरे से परे' की बिंदो का विद्रोह साधारण विद्रोह नहीं। वह अपने परिवार से अलग होकर दूसरे आदमी से संबन्ध जोडकर अपना विद्रोह प्रकट करती है। उसकी बहुत कोशिश के बावजूद पति दूसरी नौकरी करने के लिए तैयार नहीं होता तब वह अपना दु:ख गुस्से में बदल डालती है और धीरे-धीरे पति से अलग होने लगती है। वह अपनी ज़िन्दगी में परपुरुष को स्वीकार करती है। वह समाज के बारे में, अपने परिवार के बारे में सोचती नहीं। अपनी पसन्द की बात वह कर दिखाती है।

पति के प्रति उत्पन्न घृणा ही बिंदो से यह सब कराता है। यह सचमुच पुरुष मानसिकता के खिलाफ का विद्रोह भी है। वह ममा से कह उठती है, "मैं कुछ नहीं कर सकती। मैं विवश हूँ। बिंदो के स्वर में हताशा थी, मैं अपनी भावनाओं का कुछ नहीं कर सकती। बिंदो सीधी हुई और सोफे के दूसरे कोने में सिमट गयी। घुटनों को बाहों में घेरे। बाल आधे चेहरे पर बिखरे हुए।

'जित्तन को पता है?'

'अभी नहीं।'

'कभी तो चलेगा।'

बिंदो ने अवहेलना से मुँह बिचकाया।

'जित्तन इसे किस तरह से लेंगे?'

'किसी भी तरह से लें, मुझे क्या है !'

'तुम्हारे लिए कोई अंतर नहीं पडता?' ममा ने बिंदो को देखा।

बिंदो कुछ पल सोचती रही। सामने देखते हुए। फिर धीरे-धीरे बोली, मुझे उस आदमी से ऐसी वितृष्णा हो गई है कि . .

अधूरे वाक्य की टूटी नोक मौन में चुभने लगी पौनी। तीखी।

'कहीं तुम यह जित्तन को चोट पहुँचाने के लिए ही तो नहीं कर रहीं ?''[30]

नलिनी का विद्रोह इससे भिन्न है। प्रेमी से गर्भवति हो जाती है और कहती है, ''मैं अपनी नातजुर्बेकारी से तंग आ चुकी थी। अट्ठाईसवां साल चल रहा था और यह भी नहीं मालूम था कि उसने सिर को एक झटका दिया, असहिष्णु भाव से, 'मैं ज़िन्दगी के उस पैटर्न से आजिज आ चुकी थी, जिसमें कहीं कुछ नहीं होता था। आखिर यह बदन मेरे साथ है और अपनी जरूरत की बात कहता है। मैं कब तक उस एक सही आदमी के इंतज़ार में रहूँ, जो पता नहीं, कभी आएगा भी या नहीं, या आएगा भी, तो इतनी देर हो चुकी होगी कि ' उसने फिर सिर को एक झटका दिया। उसी तरह, जैसे किसी की अवज्ञा कर रही है।''[31]

---

30. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.102-103
31. वही, पृ.164

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की वर्षा अपने समाज के अत्याचारों से विद्रोह करती है। वह एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार की कन्या है। अपनी परंपरा और परिवार की मानसिकता से वह ऊब चुकी थी। अपनी मध्यवर्गीय मानसिकता के प्रति उसके मन में तीखा विरोध था। वर्षा अपना नाम स्वयं परिवर्तित करती है। यहाँ से उसके विद्रोह की शुरुआत होती है। अपनी परिस्थिति से अवगत वर्षा एक मध्यवर्गीय कन्या की सीमा जानती थी। और वह कहती है, "मैं अपने को चाहे यशोदा कहूँ, चाहे वर्षा, पर मुझे हमेशा सिलबिल ही बने रहना है।"[32] मध्यवर्गीय कन्या होने पर भी वह नारी का पिछडपन समझकर उसके खिलाफ लडने के लिए तैयार हो जाती है। इसलिए वह अपने भविष्य की चिंता को यों व्यक्त करती है, "मेरा बस चले तो मैं आकाश की दहलीज पर बनी सात रंगों की इन्द्रधनुषी अल्पना बनूँ, आश्रम में शकुन्तला के 'प्रिय वनज्योत्सना' सखी बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिल जानेवाली कुमुदनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुरूप (इतना कायर हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ) दबी सकुची मध्यवर्गीय कन्या है, उसकी महत्वाकांक्षा की अंतिम सीमा यही हो सकती है कि कोई लोअर-डिविजन क्लर्क उसके हाथों से वरमाला स्वीकार कर ले और मामूली दहेज के बावजूद ससुराल के रसोईघर में उसके साथ कोई दुर्घटना हो "[33] इस कथन में वर्तमान व्यवस्था के प्रति उसका विद्रोह प्रकट है और एक रूढिग्रस्त मध्यवर्गीय नारी की विवशता भी।

वर्षा का पिता मध्यवर्गीय झूठी मानसिकता के प्रतीक के रूप में उपन्यास में उपस्थित होता है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए, अपने परिवार के

---

32. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.19
33. वही, पृ.20

गर्व की रक्षा के लिए वर्षा के हर प्रयत्न को रोकने का प्रयास करता है। इसके पीछे मध्यवर्गीय दंभ तथा मिथ्याभिमान ही सक्रिय है। वह व्यक्ति की अहमीयत की कद्र नहीं करता। इसलिए वर्षा के ट्यूशन लेने की बात सुनकर पिता कहते हैं, "लोग क्या कहेंगे?"[34] इस पर वर्षा की टिप्पणी है,"यह ऐसी बात नहीं, जिसका लोगों से कोई सरोकार हो।"[35]

नारी की हैसीयत से ज़्यादा दहेज को मान्यता देनेवाले समाज की मानसिकता से वर्षा का कोई सरोकार नहीं। जिज्जी की शादी तय करने की खबर से वर्षा सोचने लगी,

नहीं यह जीवन की सुन्दरता नहीं हो सकता। ये मेरे रक्त संबन्धी है, इनका सुख-दु:ख मेरा है, पर मेरा सुख-दु:ख मेरा ही रहेगा। ये उसे बाँट नहीं सकेंगे एक हद के बाद उसे समझ भी नहीं पायेंगे।"[36] वर्षा ऐसे सोचने की काबिल हो गयी थी। उसने जो शिक्षा प्राप्त की है, वह जिन जीवनानुभवों से गुजरी है उन सबने उसे दूसरों से अपने को अलग ढ़ंग से पहचानने के लिए काबिल बना दिया।

नाटकों में काम करनेवाली लडकियों को हमारा समाज स्वीकार नहीं करता। उसको समाज सन्देह की दृष्टि से ही देखता है। उपन्यास की नायिका वर्षा भी आधुनिक युग के रूढिग्रस्त परिवार की कन्या है। परिवारवालों के सख्त विरोध के बावजूद वर्षा नाटक में काम करने के लिए अपने घर से सधैर्य निकल जाती है और लखनऊ चली जाती है। पिता की चिल्लाहट और पिटाई भी वर्षा को रोक नहीं सकी। इस पर भैया की

---

34. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.22
35. वही, पृ.22
36. वही, पृ.26

टिपणी है, "सिलबिल का केस अब होपलैस हो गया है।"[37] वर्षा को नाट्यविद्यालय से साक्षात्कार का पत्र आता है तो घरवाले उसे जाने से रोकने के लिए स्नानघर में बन्द कर देते हैं। लेकिन वर्षा के अन्दर छिपे कलाकार को समझने वाले डॉ. सिंगल और पत्नी उसे छुड़ाते हैं और वर्षा अपनी मंज़िल की ओर चली जाती है। 'होपलैस' वर्षा का विद्रोह यहाँ और भी निखरकर सामने आता है।

अविवाहित नारी का गर्भवति होना मध्यवर्ग में ही नहीं कोई भी समाज स्वीकार नहीं करता। हर्ष की मृत्यु के बाद ही पता चला कि वर्षा गर्भवति है। सब लोग चौंक गये। हर्ष की माँ और बहन सुजाता आकर वर्षा से कहती हैं कि बच्चा उसकी जिन्दगी में कांटा बन जाएगा। लेकिन वर्षा मानती नहीं और उन लोगों से यह भी कहती है, "आपसे मदद मांगी किसने है? मैं जैसी दीन-हीन पैदा हुई थी, मेरा बच्चा वैसे पैदा नहीं होगा। वह अपनी माँ के घर में मुँह में चाँदी के चम्मच के साथ पैदा होगा, जैसे उसका बाप हुआ था।"[38] यह सचमुच उस व्यवस्था के खिलाफ का विद्रोह है कि नारी का जीवन पुरुष के बिना असंभव है। यह धारणा गलत है। वह पुरुष के बिना भी जी सकती है, बच्चे का पालन भी कर सकती है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में अधिकतर लोग उच्चवर्गीय समाज के ही हैं। पारुल औद्योगिक सोमपुरिया घराने की सबसे बडी बेटी थी। मजबूर होकर उसे जयंत के साथ शादी करनी पडी। और वह जयंत से तृप्त नहीं थी। नील के साथ का उसका

---

37. सुरेंद्रवर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.66
38. वही, पृ.555-556

संबन्ध एक प्रकार का विद्रोह ही है। वह विद्रोह एक व्यक्ति के खिलाफ नहीं परिवार के प्रति है, अपने आप के प्रति है। वह परपुरुष के साथ लगातार संबन्ध रखती है।

शिल्पा अपने पति से खुद कह देती है कि वह उससे तृप्त नहीं है। इसीलिए पुरुष वेश्या के साथ जाती है। पति ने दोनों को रंगे हाथों पकड लिया था, "कब से चल रहा है यह सिलसिला?" पुरुष ने जलती आँखों से देखा।

"बहुत दिनों से।" शिल्पा का स्वर सहज और स्थिर था।

"एक मरद काफी नहीं है तेरे लिए?"

"तुम्हें कुछ नहीं आता। तुम वन-टू-थ्री की तरह पीटी करते हो और सो जाते हो।"

और तुम्हें क्या चाहिए?" पुरुष गुर्राया।

"मेरी अपनी भी जरूरतें हैं।"[39]

समाज में जीवित रहने के लिए पुरुषों से अधिक संघर्ष नारी को करना पडता है। समाज हमेशा नारी का पीछा करता रहता है यह जानने के लिए कि वह क्या करती है, क्या नहीं करती है। अपनी इच्छा के अनुसार जिन्दगी बिताने से उसे रोकता है। इस प्रकार नारी की मुक्ति उसे समाज से अनेक तरह के विद्रोह से ही प्राप्त हो सकी है।

---

39. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.142

कामकाजी नारी, स्वतंत्र नारी, शोषित नारी

आज की नारी पुरुष सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करती हुई अपनी अस्मिता की तलाश कर रही है। नारी की स्थिति पहले से बहतर लगती है। अपने घर-परिवार के बन्धनों से बाहर आकर समाज में अपना स्थान बनाये रखने का परिश्रम वह निरंतर करती है। और अपने पर जो अत्याचार हो रहे हैं उसके विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता उसमें है। कामकाजी और स्वतंत्र होने के कारण वह पुरुष पर निर्भर नहीं रहती। अपनी प्रगति में बाधा बननेवाले तत्वों को तोडती हुई वह आगे बढ रही है। लेकिन उसके प्रति समाज की भोगवादी दृष्टि परोक्ष रूप में आज भी बरकरार है। पुरुष बाहर नारी मुक्ति का नारा लगाता है, उसको लेकर गंभीर भाषण देता है और अपनी पत्नी को घर के अन्दर बन्द रखता है। नारी हमेशा पुरुष के लिए उपभोग की वस्तु है। समाज के सभी क्षेत्रों में परम्परा से चली आनेवाली पुरुष सत्ता वैसी ही बनी रहती है। नारी सुरक्षित भी नहीं है। घर के बाहर आते ही उस पर आक्रमण होते हैं। पहले की तरह बर्बरता के साथ नहीं बल्कि सभ्यता के आवरण को ओढकर। इस प्रकार देखते हैं तो पता चलता है कि आज की नारी एक ओर पूर्ण व्यक्तित्व की खोज में है तो दूसरी ओर उसका शोषण नए ढ़ंग से जारी भी है।

कामकाजी और आत्मसजग नारी भी आज समाज में शोषित है। फिर भी वह अपनी अस्मिता को बनाये रखने का निरंतर परिश्रम करती रहती है। भारतीय नारी अपनी विशिष्ट संस्कृति से अवगत होने के कारण स्वतंत्रता की खोज में वह एक सीमा तक ही जा पाती है। संस्कारगत बन्धन उसे अपनी सीमा को लांघने नहीं देता। लेकिन

स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग भी आज के समाज में उभर आया है जो नारी मुक्ति का अर्थ 'फ्री सेक्स' मानता है। ऐसी नारियाँ बहुत कम हैं जो विदेशी संस्कार के पीछे अंधाधुंध दौड करती हैं। इन्हें समाज जल्दी ही अस्वीकार करता है। भारत में नारी अस्मिता की भावना के पीछे भारतीय संस्कृति के तहत विकसित स्वत्वबोध है। इसलिए आज का समाज उस आन्दोलन को सहिष्णुता की दृष्टि से देखता है। नारी कन्या के रूप में, पत्नी, प्रेयसी, माँ, बहन आदि रूप में तथा कामकाजी महिला के रूप में अपना कर्तव्य निभा रही हैं। ये ज़िम्मेदारियाँ अपने परिवार के लिए भी हैं और साथ ही साथ समाज के लिए भी। लेकिन कुछ ऐसा समाज है जो अस्मिता को सवालुनामा अन्दाज से देखते हैं। हम बता नहीं सकते कि नौकरी करने से नारी आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र तो जाएगी। उसकी उस स्वतंत्रता के पीछे भी एक शोषण सक्रिय है। वह अपने इच्छानुसार जी नहीं पाती। पति हो या बच्चा कोई बाधक बनता है। 'अंधेरे से परे' उपन्यास की बिंदो नौकरीपेशा नारी है। उसका एक बेटा है सोमू पति जित्तन को ऑफीस से सस्पेंड कर दिया गया है। और केस अभी भी चालू है। इसी कारण बिंदो, जित्तन और सोमू अभी बिन्दो के घर में हैं। पहले तो सबकुछ सकुशल था लेकिन धीरे-धीरे जित्तन और बिंदो के बीच तनाव शुरू हो जाता है। इस बीच अमित और बिंदो के बीच दोस्ती है और धीरे-धीरे वह रिश्ता बदल जाता है। याने रात देर तक बिंदो अमित होटलों में ठहरती है, कभी पिकनिक पर जाती है। बिंदो की मम्मी को पता चल गया तो वह पूछती है और मना करती है। तब बिंदो कहती है,

कर सकती। मैं विवश हूँ। बिंदो के स्वर में हताशा थी, 'मैं अपनी भावनाओं का कुछ नहीं कर सकती।''[40]

आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर होने के कारण उसमें आत्मविश्वास आ गया है। इसी कारण वह अपने पति की तरफ उपेक्षा भरी दृष्टि से देखती है। बिंदो को मालूम था कि जित्तन के बिना भी वह जी सकती है। उसका व्यक्तित्व बहुत स्वार्थी और आत्मकेन्द्रित है। इसीलिए जब जित्तन घर छोडकर शिमला में नौकरी करने के लिए निकलता है तो कुछ कहती नहीं। बेटा सोमू को भी वह जित्तन से मिलने के लिए नहीं भेजती। सोमू के प्रति भी उसका व्यवहार बहुत निष्ठुर है। पिता के लिए सोमू रोता है तो बिंदो कहती है, ''किस्मत है उसकी''[41] जित्तन के जाने पर उसको कोई दु:ख नहीं हुआ। वह अगले ही दिन अमित के साथ पिकनिक पर चली जाती है।

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा फिल्मों में काम करने का साहस करती है। वह घर छोडकर स्वतंत्र हो जाती है और अपनी पसन्द के अनुसार नाट्यविद्यालय में छात्रवृत्ति के साथ पढना शुरू करती है। धीरे-धीरे उसे फिल्मों में काम मिलता है। घर छोडने के बाद भी वह परिवार को भूलती नहीं। वह घर संभालती है। लेकिन अपने वैयक्तिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार वह किसी को भी देती नहीं। कामकाजी नारी को परिवार में महत्वपूर्ण स्थान भी है। घोर विरोध के बावजूद वर्षा जब कमाने लगती है तो अपनी बहन की शादी भी उसके हाथों द्वारा संपन्न हो जाती है। परिवारवाले वर्षा के प्रति भावविभोर हो जाते हैं, ''बारात की विदा के साथ पिता की आँखों में दो आँसू

---

40. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.102
41. वही, पृ.171

आ गये, "सिलबिल, तुमने झल्ली को उबार लिया उन्होंने रूँधे स्वर में कहा, "जैसे विश्वजित यज्ञ के बाद रघु को चारों लोकों का पुण्य मिला था, वैसे ही तुम्हें मिले बेटी . . . . "[42] घर के सभी लोग उसके साथ प्रेम से व्यवहार करने लगे।

वर्षा अपनी छोटी बहन झल्ली को अपने साथ ले आयी थी। घर की चार दीवारी से मुक्त होकर बाहर आने पर झल्ली स्वतंत्रता का साँस लेने लगी। जब पिता वर्षा के पास आ गये तो वह अपने स्वातंत्र्य को कम करने के लिए तैयार हो जाती है। वह पिता के लिए शाकाहारी बन जाती है तो झल्ली कह उठती है, "तुम्हें रोज सुबह दो उबले अंडे खाने को डॉक्टर कब्रे ने कहा है। कोचिंग क्लास से निकलकर मैं रोज फास्ट फुड ज्वायंट में जाऊँगी और मटन हॅमबर्गर खाऊँगी। झल्ली ने विद्रोह का झंडा बुलंद कर दिया, 'वे मुझे रोक लेंगे? व्हाइ कांट ही एलाऊ अस अवर फ्रीडम?"[43]

जब वर्षा विवाह के पूर्व गर्भवति हो जाती है तो सभी लोग हर्ष के घरवाले भी इसके विरुद्ध खडे हो जाते हैं। वर्षा को मालूम था, "यह निर्णय कंटक-पथ साबित होगा, यह समझना मुश्किल नहीं था। हर्ष के आत्मसंहार को उसने कायरता माना था। क्या वह भी कायरता दिखाये और क्लिनिक में मुक्ति पाकर बाहरी तौर पर घुली-पुँछी ज़िन्दगी जीती रहे?

निरर्थक विवाद में पडने की उसमें कोई चाह नहीं थी। लेकिन उसके पेट में जो बीज है, वह सिर्फ हर्ष की ही स्मृति नहीं, उसका अपना भी अंश है। वह उन दोनों की

---

42. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.501
43. वही, पृ.501

साझी प्रतिबद्धता है । अपनी कलानिष्ठा के बाद वह वर्षा का सबसे महत् मानवीय गठबंधन है।

"उसे अंदाज था, इस जीवन की स्वीकृति उसके आगामी जीवन की दिशा और प्रकृति बदल देगी।

पेडों के झुरमुट के बीच सूखे पत्तों पर चलते हुए उसने मन-ही-मन कहा, मैं इस फैसले का मूल्य चुकाने को तैयार हूँ . "[44] उपन्यास की दिव्या कत्याल भी ऐसी नारी है जो स्वतंत्र जीवन बिताती है। उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। दूसरों के लिए बहुत कुछ करने पर भी वह अपनी अस्मिता को बनाये रखती है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास की शालू रातरानी रस्तरँ में नंगा नाच करनेवाली है। अपने परिवार को वह इस प्रकार चला रही है। प्रेम और सेक्स अब नारी के लिए भी साधारण सी बात हो गयी है। एकनिष्ठा तथा सतीत्व पर वह विश्वास नहीं करती है। कामवासनाओं की पूर्ति के लिए सीमाओं का उल्लंघन करने के लिए वह तैयार हो जाती है। बिना किसी हिचक के वह अपनी माँग को खुल्लम-खुल्ला बता देती है। उपन्यास की पारुल विवाहित है। उसकी इच्छा के विरुद्ध जयंत के साथ शादी तय हुई थी। वह जयंत से दूर रहना अधिक पसंद करती है। वह कहती है, "ससुराल छोडकर मैं मैके चली गई थी। दस महीने बाद पिता के दबाव डालने पर फिर वापस आना पडा। पिछले महीने मैंने नींद की गोलियों का ओवरडोज ले लिया था। पर मेरा नसीब ही खोटा है बच गई।"[45] पुरुष वेश्या नील के साथ उसका संबन्ध होता है।

---

44. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.553
45. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.121

एक हद तक पारुल का पति भी इसकी अनुमति देता है। क्योंकि "हमारे एसैट्स का बँटवारा होगा। मेरी शक्ति एक-तिहाई रह जाएगी . मेरा घर न टूटे, इसके लिए मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।"[46]

चाहे उच्चवर्ग हो या मध्यवर्ग या निम्नवर्ग नारी की स्थिति हर जगह एक जैसी ही है। पारुल को जयंत के साथ का ब्याह पसन्द नहीं था। वह अपनी माँ से यह अनुरोध भी करती है। लेकिन अचानक माँ की मृत्यु हुई और पिता शैयाग्रस्त हो गये और पारुल मजबूर हो गयी। "उन्हें जयंत पसंद न था। उन्होंने अपनी माँ को इस संबन्ध के प्रति अपने विरोध की जानकारी उन दिनों दे दी थी। पारुल का निश्चित मत है, अगर माँ जीवित रहती, तो उनकी आत्मा को रूखे, मोटे बारे में लपेटकर जयंत के हाथ में नहीं दे दिया जाता। टूटे रोगी पिता की अंतिम अभिलाषा को टालने का साहस वे नहीं कर पाई।"[47]

नारी को मुक्त होने के लिए समाज से विभिन्न प्रकार का संघर्ष करना पडता है। विद्रोह ही इसके लिए एकमात्र उपाय है, "मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के लिए प्रयत्नशील होता है और समानता की मनोभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह की नींव पडती है। अधिकारों के प्रति सजगता, संघर्षशील प्रवृत्ति और मुक्ति कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषताएँ हैं।"[48]

---

46. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.164-165
47. वही, पृ.121
48. सं. डॉ.नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर विद्रोह और साहित्य, पृ.16

अपनी अस्मिता को बनाये रखने केलिए घर से और बाहर से वह संघर्ष करती है। अपने व्यक्तित्व के विकास पर जो भी बाधा उपस्थित हो जाती है उन सबसे उबरने का प्रयत्न वह करती रहती है।

युग-युगों से नारी को गृहस्वामिनी का स्थान देकर घर के भीतर ही भीतर भारतीय समाज उसकी पूजा करता आ रहा है। उसको बाहर आकर अपना मत प्रकट करने का स्वातंत्र्य तक नहीं था। लेकिन आधुनिक काल में समाज के शोषित-पीडित वर्गों के उत्थान के साथ नारी का भी उत्थान करने का प्रयास राजनीतिक, सामाजिक,आर्थिक क्षेत्रों में हुआ है। इसके फलस्वरूप नारी सभी क्षेत्रों में पुरुष के साथ काम करने लगी है। पुरुष घर के बाहर का काम संभालकर आता है तो नारी बाहर और भीतर का काम संभालती है। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय के अनुसार, "अभी तक व्यक्तित्व की विराटता एवं विशिष्टता का जो सर्वाधिकार पुरुषों के पास था वह सही अर्थों में नारियों तक भी पहूँचा और पहली बार इनके स्वतंत्र-चेता मानस एवं स्वाधीन व्यक्तित्व की नई प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हुईं। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पुनर्जागरण के इस काल में नारियाँ कहीं भी कोने में पडी रहनेवाली मैले कपडों की गठरी नहीं सिद्ध हुई और प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्पष्ट योगदान सामने आया। इससे मानव-मूल्यों को नई अर्थवत्ता प्राप्त हुई और दोनों वर्गों के बीच समानता की भावना सर्वथा नए परिप्रेक्ष्य में उपस्थित हुई।"[49]

---

49. डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय 'हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ' पृ.125

ज़ाहिर है कि नारी की विभिन्न समस्याओं को अपने उपन्यासों द्वारा व्यक्त करते हुए सुरेन्द्र वर्मा यह दिखाते हैं कि नारी मुक्ति-संघर्ष का इतिहास बहुत लंबा है। इसकी कोई समाप्ति नहीं। यह एक लंबी प्रक्रिया है। वह सिर्फ स्वतंत्रता चाहती है। परिवार या समाज को नकारना नहीं चाहती। वह परिवार संभालते हुए अच्छे नागरिक का दायित्व निभाते हुए जीना चाहती है; अपनी शर्तों पर जैसे पुरुष जीवन बिताता है। इसमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए। इस प्रकार नारी का विद्रोह पुरुष के खिलाफ नहीं बल्कि पुरुष मानसिकता से है जिसने उसे निछला रखा था।

चौथा अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगर

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगर

यह सर्वसामान्य तथ्य है कि भारत गाँवों का देश है और सत्तर प्रतिशत से अधिक लोग गाँव में ही रहते हैं। आजकल यह स्थिति बदल गई है। औद्योगिक क्रान्ति और प्रौद्योगिक विकास ने महानगरों को जनम दिया। औद्योगिक विकास के कारण नगरों में फैक्टरियाँ खोली गयीं। नौकरी की सुविधा बढ़ गयी। साथ ही महानगर सत्ता के भी केन्द्र बन गये। गाँववालों के लिए महानगर एक स्वप्निल दुनिया बन गई। नौकरी और ऐशो आराम की ज़िन्दगी के लिए गाँववाले महानगरों की ओर प्रस्थान करने लगे। महानगरों में भीड बढती गयी। यान्त्रिकता की ज़िन्दगी ने उसे और रूखा बना दिया। सुविधाएँ जितनी बढती गयीं उतनी लोगों की माँग भी बढती जा रही थी। धीरे-धीरे महानगर कृत्रिमता और भ्रष्टाचारिता का पर्याय बन गये। लोग आराम की ज़िन्दगी और प्रतिष्ठा के लिए ज़्यादा व्याकुल हो उठे। इस व्याकुलता ने उन्हें कुछ भी करने के लिए विवश कर दिया। एक ओर देश विकास की पगडंडियों पर आगे बढ़ रहा था तो दूसरी ओर विसंगति और विडम्बनाएँ व्यक्ति जीवन को घेर रही थीं। जिनके पास पैसा है वे सर्वोच्च माने जाते थे। यह सत्य पहचानकर लोगों में पैसे की माँग दुगुनी हो गयी। कपटता, भ्रष्टाचार और शोषण तीव्र होने लगे। हमारी व्यवस्था और पुलीस भी पैसे के पीछे भागने लगे तो आम आदमी की जिन्दगी खतरनाक बन गयी। व्यवस्था ही आदमी के हाथों से रोज़ी-रोटी छीनने लगी। "इस दृष्टि से सबसे पहली स्थिति, जो आम आदमी की चेतना में भीतर तक प्रतिष्ठित हो चुकी है अपने निर्णय लेने की क्षमता का अभाव है। दूसरी स्थिति निरंतर अपमान सहन करते, प्रतिष्ठित प्रतिगामी

शक्तियों को परास्त करके अपने भीतरी लावे को सही तौर पर प्रयोग करना, क्योंकि गलत तरीके से संघर्ष की नीति को तैयार करके वह फिर से अपने को पीछा धकेला जाने के खतरे से भी अवगत है। तीसरी स्थिति अपनी ही जमात में उत्पन्न पूँजीवादी ताकतों के इशारे पर चलनेवाले तत्वों के है।"[1]

गतिशील है महानगरीय जीवन। एक पल के लिए ही सही, ध्यान हट जाने से आदमी पीछे रह जाता है। ऐसी ज़िन्दगी में संबन्धों का कोई मतलब नहीं है अपने ही अन्दर लोग सिमट जाते हैं। क्योंकि आगे की गति में कोई बाधा न हो। ऐसी अवस्था में आत्मीयता नष्ट हो जाय तो आश्चर्य की बात नहीं। अपने ही घर में वह अकेला हो जाता है। कृत्रिमता और यान्त्रिकता अपने आप ही आ जाती हैं। मुखौटे पहनने के लिए वह विवश हो जाते हैं। और यह महानगरीय ज़िन्दगी को कठोर और निर्मम बना देता है। आदमी खुद अपनी असलीयत भूल जाता है और अपना व्यक्तित्व खो देता है।

हिन्दी उपन्यास जगत में महानगरीय परिवेश को लेकर अनेक उपन्यासों का सृजन हुआ है। महानगरीय यथार्थ का चित्रण करने में अधिकतर उपन्यासकार सफल भी हुए हैं। महानगर के अन्दरूनी यथार्थों की पहचान के लिए तटस्थ होना अनिवार्य है। डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसार, "महानगरीय यथार्थ का एहसास कराने के लिए जरूरी है तटस्थ और निर्मम दृष्टि, जिससे नगर जीवन और नगर संस्कृति की विविध प्रक्रियाओं की गहरी समझ और पहचान हो सके। उसके लिए बेलाग और निर्मम दृष्टि अर्जित करना

---

1. डॉ.जितेन्द्र वत्स साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना

जरूरी है जिससे कि शहरी व्यक्ति की चेतना पर पड रहे दोहरे-तिहरे दबावों और संवेदनगत प्रभावों को ग्रहण करता हुआ भी यह उनसे आक्रान्त न हो जाये।''[2]

दिन-ब-दिन बदलती प्रौद्योगिकी दुनिया में अपने अस्तित्व को बनाये रखने की कोशिश में संबन्धों को कायम रखना मनुष्य के लिए असंभव बन गया है। वह हमेशा अतृप्त है, अपने को संकट में घिरा पाता है। दूसरों से मुँह फेरते हुए अपनी सीढ़ी चढने का प्रयास वह करता है। ध्यान सिर्फ अपनी मंज़िल पर है। सही और गलत के ताने बाने में वह अपनी जिन्दगी आगे चलाता है। कोई सच्चाई की खोज में कहीं फँस जाता है तो कोई लाभेच्छा की प्रतीक्षा में सच्चाई को कुचल देता है। इन सभी का ब्योरा समकालीन उपन्यास में देख सकते हैं। इसमें भी कुछ उपन्यासों में महानगर की अंधी गलियों का चित्रण है तो कुछ में जिन्दगी में व्याप्त अकेलापन, अजनबीपन का चित्रण है। और सभी में समाज के उच्चवर्ग तथा मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण देख सकते हैं।

समकालीन उपन्यासों में महानगर का यथार्थ चित्र दृष्टव्य है। हिन्दी उपन्यासों में मुख्य रूप से दिल्ली, मुंबई और कलकत्ता जैसे शहरों का चित्रण अधिक हुआ है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप', जगदीशचन्द्र के 'मुट्ठी भर कांकर' और 'घास गोदाम', यशपाल के 'झूठा सच', मोहन राकेश के 'अंधेरे बन्द कमरे', रामदरश मिश्र के 'बिना दरवाजे का मकान', भीष्म साहनी के 'बसन्ती', सुरेन्द्र वर्मा के 'अंधेरे से परे', 'मुझे चाँद चाहिए', 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता', कृष्णा सोबती के 'दिलोदानिश', 'समय सरगम', चित्रा

---

2. डॉ. नरेन्द्र मोहन बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी कहानी, पृ.70

मुद्गल के 'एक जमीन अपनी', 'आवाँ', अलका सरावगी के 'कलि-कथा वाया बाइपास' ,निर्मल वर्मा के 'रात का रिपोर्टर', मृणाल पांडे के 'रास्तों पर भडकते हुए', मृदुला गर्ग के 'चित्त कोबरा', मन्नु भण्डारी के 'महाभोज', पंकजबिष्ट के 'लेकिन दरवाजा' आदि उपन्यासों में भारत के महानगरों की जिन्दगी का चित्रण देखने को मिलता है। नगर भीड है,भीड का प्रवाह है। उस प्रवाह में फँस गए तो बाहर निकलना मुश्किल है। शहर एक आकर्षण है। कृत्रिमता उसकी छाप है। उसके बाहर-भीतर गंदगी और असामाजिक वृत्तियाँ ही है । सुविधाओं के बढ़ने के साथ-साथ सारी असुविधाएँ भी वहाँ बनी रहती हैं। इसलिए शहर में जीना खतरे को मोल लेना भी है।

महानगरीय संस्कार

राष्ट्र की अपनी राष्ट्रीय संस्कृति होती है, पर प्रान्तीयता के अनुसार उसमें परिवर्तन भी देख सकते हैं। जमाने के बदलने के अनुसार उसमें भी बदलाव होता रहता है। गाँव की अपेक्षा नगर में यह परिवर्तन काफी स्पष्ट है। इसका मुख्य कारण वहाँ की बढती आबादी ही है। जन बाहुल्य के कारण लोगों को रहने के लिए जगह बहुत कम है। इसी कारण एक फ्लैट के अन्दर हजारों लोग जीवन गुजारते हैं। समय की कमी उसे और कुछ करने से रोक देती है। एक प्रकार का यांत्रिक जीवन वे बिता रहे हैं। इस यांत्रिक जीवन में संबन्धों की महत्ता को वे भूल जाते हैं। परिवार में विघटन की समस्या आम बात बन गई है। संबन्धों के इस विघटन के यथार्थ को लेकर शहरी जीवन का विचार-विमर्श करते हुए बहुत सारे उपन्यासकार आ गए। एक ही नगर में अनेक 'टाइप' के लोग रहते हैं। उच्चवर्ग की अपनी ज़िन्दगी होती है और निम्नवर्ग की

अलग। इन दोनों के बीच मध्यवर्ग आ जाता है जो अपने को सुसंस्कृत मानते हुए भी खुद अहंग्रस्त तथा निम्न ग्रंथि से पीडित है। हिन्दी उपन्यास में अधिकतर उपन्यास इस मध्यवर्गों को लेकर लिखे गए हैं। उपन्यासकार अपने भोगे हुए इस यथार्थ को तीव्र संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हुए सामने आते हैं। महानगर की भागदौड में आत्मीयता को अनदेखा करनेवाले आदमी ही सफल हो जाते हैं। महानगर का सबसे बडा अभिशाप है व्यक्ति का अकेलापन। अकेलेपन के बोझ से आक्रांत लोगों की हरकतों की ओर भी उपन्यासकार ने इशारा किया है।

सभी प्रकार का शोषण यहाँ संभव है। सारी भ्रष्टाचारिताओं का केन्द्र भी यहीं है। कुछ पाने के लिए अपना सब कुछ खो देने के लिए लोग तैयार होकर यहाँ खडे हैं। आस-पास की ज़िन्दगी ने उसे यह सिखा दिया कि सारा संबन्ध अर्थहीन है। यहीं से संबन्धों का विघटन शुरू हो जाता है। परिवार टूट जाते हैं। अपने लिए सुरक्षित संबन्धों की खोज में स्त्री-पुरुष निकल जाते हैं। सब कुछ पाकर भी कुछ भी न पा सकने का बोध उन्हें सताता रहता है। कामकाजी नारी और एक समस्या है। पति-पत्नी दोनों अपनी-अपनी दुनिया में सिकुड गए हैं। उन्हें 'टैम' नहीं है। किसी कारणवश पति बेकार बन जाता है तो उसको नालायक समझ के पत्नी पराये का संबन्ध तलाशती है। इसप्रकार परनारी-परपुरुष संबन्धों के कारण पारिवारिक विघटन होता है। साथ ही संस्कृतिक विघटन भी। इसका परिणाम बच्चों में झलकता है और वह बच्चा 'प्रोब्लम चैल्ड' बन जाता है।

समकालीन उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगरीय जीवन की सभी विडंबनाओं का मार्मिक चित्रण दृष्टव्य है। अपने आस-पास जो हो रहा है उसकी ओर सभी का ध्यान आकर्षित करना उसका उद्देश्य है। महानगर में रहने के कारण उसके यथार्थ को पकड पाने तथा उसके कोने-कोने की भीषणता को प्रस्तुत करने में वे सफल सिद्ध हुए हैं। महनगरीय जीवन के अंतर्विरोध, आवारा समाज, सुसज्जित एवं सुन्दर महानगर की अनैतिक वृत्तियाँ ये सब सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में देखने को मिलता है। समय की माँग के अनुसार औपन्यासिक मानसिकता में जो परिवर्तन आ गया है वह भी इनके उपन्यासों में देख सकते हैं।

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा के चरित्र में महानगरीय संस्कार का प्रभाव देख सकते हैं। जब वह शाहजहॉपुर में थी तो घरवालों के डर से अन्य पुरुषों के साथ बात नहीं करती थी। लखनऊ से मिट्ठु और रोहन के आने पर वर्षा दिव्या के घर गयी थी। शाम होते ही वर्षा घर जाने के लिए उठी तो रोहन ने कहा, "हम तुम्हें छोड आयेंगे। जल्दी क्या है?" रोहन बोले। "मेहमानों के साथ ऐसी बेरुखी मिट्ठू ने आहत भाव से कहा।

वह दिव्या की ओर देख उदासी से मुस्कुरायी, "भाभी के बच्चा होनेवाला है। रात की रसोई मेरे जिम्मे हैं। अगर पुरुषोंवाली कार से मुझे उतरता देखा गया, तो घर में हंगामा हो जायेगा।"[3] वही वर्षा नाट्यविद्यालय से अभिनेत्री बनकर बंबई पहुँच जाती है तो उसके सारे आचार-विचार एकदम बदल जाते हैं। दिल्ली और बंबई ने उसे

---

3. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.82

बहुत कुछ सिखाया था। वर्षा के दद्दा घर में थे और हर्ष भी था। हर्ष अपनी असफलता पर बहुत दु:खी था, "हर्ष ने उसकी गोद में सिर रख दिया। रुँधे स्वर में कहा, "तुम्हारे सिवा मेरा कौन है।"

वर्षा ने उसके बालों में ऊँगलियाँ उलझा ली। उसकी आँखें भी भर आयी थीं।

सहसा वर्षा को लगा कि वे अकेले नहीं है।

गलियारे में खडे पिता उसकी ओर देख रहे थे।"[4]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में बंबई का संक्षिप्त विवरण है, "यह सरकारी नौकरों और नेताओं का शहर है। बंबई संभावनाओं का समुंदर है . तुम्हारे हाथ में हुनर हो, तो हवा के झोंकों से नोटों की बारिश हो सकती है। वहाँ पान की दूकानों की तरह एस्टेट एजेंट हैं। सिर्फ दो रजिस्टर रखने होते हैं एक बेचनेवाले का, एक खरीद-नेवाले का। सफर न करना चाहो, तो पढे-लिखे को रात को दफ्तर सँभालने के लिए भी काम मिल जाता है या मंदिरों में जाकर नए सिक्के पुरानों से बदल लो और उन्हें प्रीमियम पर बेच दो खूबसूरत के साथ तुम्हारा कुँआरापन भी तो एक गुण है।"[5]

---

4. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.524
5. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.13

महानगर में पैसे के लिए लोग कुछ भी करते हैं। इसके लिए अपने आप को मारने के लिए भी लोग तैयार हो जाते हैं। "हाय हाय हाय . . . " समुंदर की दीवार से लगे, फुटपाथ पर एक काला, दुबला आदमी चिथड़े लपेटे दोनों हाथों से अपनी नंगी पीठ पर कोडे मारे जा रहा था . . . वहाँ खून की बूँदें छलछला आई थीं।

सामने कुछ सिक्के फेंके गए थे।

मैं अपने-आपको मार रहा हूँ, इसलिए मुझे पैसा दो !

रोज़ी कमाने का इतना मौलिक तरीका नील पहली बार देख रहा था . . "[6]

महानगर में अपनी ज़िन्दगी बनाने के लिए भोला और नील आये थे, "हम दोनों भारतीय सपने की तलाश में बंबई आए हैं, एक बार नील ने कहा था।

उस सपने को साकार करने की जद्दोजहद में एक विलुप्त हो गया, भोला ने सोचा।"[7] जो भी महानगर में अपना सपना संजीदा करने के लिए आता, उन्हें मायानगरी नहीं छोडती। जितना भी सहना पडे, महानगर छोडकर जाना कोई पसन्द नहीं करता। महानगर का सबसे बडा जाल यह है। अपने पास सभी को बुलाकर जाल में फँसाकर आत्मा को अस्तव्यस्त कर देता है। जीते जी किसी को भी इधर से मुक्ति नहीं है।

---

6. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.22
7. वही, पृ.246

भ्रष्टाचारिता

भ्रष्टाचार तो हर कहीं देख सकते हैं। नगर में ही नहीं गाँव में भी और पुराने ज़माने से यह चला आ रहा है। अंतर तो बस इतना ही है कि महानगर में उसका अधिक प्रचलन और प्रयोग होता है। जिस किसी को मौका मिलता है, वे सब उसका उपयोग करते हैं। राजनीतिज्ञ से लेकर नौकरशाही तक यह भ्रष्टाचार देख सकते हैं। यह भ्रष्टाचार तब होता है जब लोगों की माँग बढ़ती जाती है। किसी की भी माँग कभी भी पूरी नहीं होती। इसीलिए माँग की वृद्धि के साथ-साथ भ्रष्टाचार की वृद्धि भी होती है। देने केलिए लोग तैयार है तो लेने के लिए किसको हिचक है। जिधर भी जाओ रिश्वतखोरी ही नजर आती है। जिसमें क्षमता है, उसीको सब कुछ मिलता है। पैसे के माध्यम से सब कुछ अपने काबू में रख सकते हैं। वर्तमान व्यवस्था ही ऐसी है कि इसमें स्वार्थलोभी कामयाब हो जाते हैं। उसमें सहानुभूति नहीं है, संवेदना नहीं है, सामाजिक प्रतिबद्धता नहीं है। इसी भ्रष्टाचारिता के कारण बेकार युवक अकेलेपन का शिकार बन जाते हैं। पहले इंटर्व्यू के लिए तो बहुत होशियारी के साथ जाते हैं। लेकिन तब तक और कोई पैसे देकर या फिर सिफारिश के ज़रिए उस पद को प्राप्त कर चुका होगा। धीरे-धीरे ज़िन्दगी में आस्था खतम हो जाती है और युवावर्ग अपने को बेकार पाते हैं। वे ज़िन्दगी से ही ऊब जाते हैं।

सुरेन्द्रवर्मा के उपन्यासों में महानगर की विराटता का वास्तविक रूप देखने को मिलता है। 'अंधेरे से परे' उपन्यास में जित्तन एक बडी कंपनी की असिस्टेंट मैनेजरी कर रहा था। लेकिन रिश्वत के जुर्म में उसे सस्पेंशन ही मिला। और हमारे

न्यायालय की कारवाई भी ऐसी है कि सालों बाद भी केस जहाँ का वहाँ ही रह जाता है। जित्तन केस के फैसले के लिए इन्तज़ार कर रहा था। उसका एक परिवार भी है। पत्नी बिंदो और बच्चा सोमू। वह और कोई काम भी करने को तैयार नहीं था। बिंदो उसे समझाती है, "केस का फैसल अभी पाँच साल और नहीं होगा ! इस मुल्क की अदालतों को तुम जानते नहीं हो? और मान लो रिश्वत का जुर्म साबित हो गया, तो?"[8]

महानगर में काम मिलना बहुत मुश्किल है। कोई भी किसी को मौका देने को तैयार नहीं है। और जो मौका देता है वह वेतन बहुत कम देता है। काम पर कामयाबी साबित करने पर बहुत सारे लोग उसी को लेने आ जाते हैं और कुछ न कुछ बोलके बडी रकम दिखा के आकृष्ट करते हैं। गुलशन एक एडवर्टैसिंग कंपनी के कॉपी-राइटर हैं। अपने काम में वह बहुत होशियार है। उसको ले जाने के लिए हंसा एडवर्टाइसिंग के असिस्टेंट मैनेजर आते हैं। उसे ज्यादा पैसा देने की बात कहते हैं और उसे प्रेरित करते हैं। इस प्रकार महानगर की छोटी-सी-छोटी कंपनी में भी भ्रष्टाचार और कूटनीति व्यापे हुए है। यहाँ आदमी महत्वाकांक्षी बन जाता है और ऊपर जाने की ललक उसे यह सब करने के लिए विवश करती है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में वर्षा का भाई स्टेट रोडवेज में क्लर्क है और घर से बहुत दूर है उसका दफ्तर। मध्यवर्गीय परिवार होने के कारण उसका तबादला रोकने के लिए कोई नहीं था। नाट्यविद्यालय के बाद वर्षा राष्ट्रपुरस्कार से सम्मानित अभिनेत्री बन गयी और उसके कई जान-पहचानवाले भी हो गये। इसी बीच वर्षा भाई के लिए

---

8. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.12-13

सिफारिश करती है और भाई को तबादला मिलता है, वह भी पदोन्नती के साथ, "उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव श्री सहाय ने अपना वचन निभाया। तीन हफ्ते में भाई के पास हरदोई में तबादले के साथ पदोन्नती का आदेश आ गया था। क्वार्टर मिल गया था।"[10] फिल्मी दुनिया में भी कामयाबी के आधार पर चुनाव नहीं होता। अपने ऊपर कोई दूसरा आ जाय यह कोई पसन्द नहीं करता। वर्षा को पहली बार एक व्यावसायिक फिल्म में सहनायिका की भूमिका मिली और उसे मालूम पडा कि नायक विमल को कोई एतराज नहीं था। उसने विमल के पास जाके कहा, "मैं आपकी बहुत आभारी हूँ। आपने मेरी कास्टिंग पर एतराज नहीं किया।" विमल संजीदा हो गये, "जब कास्टिंग पर मेरी राय ली जाती है, तो मुझे अपना एक हादसा याद आ जाता है। वे स्ट्रगल के दिन थे। गोरे गाँव के गेस्ट हाउस में रहता था। दो-तीन सपोर्टिंग रोल कर चुका था। एक प्रोड्यूसर ने हिम्मत करके लीडिंग रोल में लिया और तब की एक फीमेल स्टार से हीरोइन की बात करने गये। उन्होंने ना कह दिया।" विमल ने एकटक वर्षा को देखा। पुराना आहत भाव आँखों में रेंग उठा था।"[11]

देश के चारों तरफ होनेवाली घटनाओं के बारे में पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही जानकारी प्राप्त होती है। उसमें जो खबर छपकर आती है आम जनता उस पर विश्वास करती है और उसके अनुसार व्यवहार करती है। पत्रकार का धर्म सच्चाई का प्रकाशन है। इन समाचार पत्रों और पत्रकारों पर लोग पूरा विश्वास रखते हैं। पर आजकल वह क्षेत्र भी भ्रष्ट हो गया है। वहाँ भी भ्रष्टाचारिता फैल गयी है। इसलिए सत्य की गुंजाइश बहुत कम है। लेकिन आम जनता अब भी उस पर विश्वास रखती है। आज का

---

10. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.501
11. वही, पृ.341

पत्रधर्म किसी मूल्य पर टिका हुआ नहीं इसलिए एक साधारण व्यक्ति को आसमान तक पहूँचाने और उसी प्रकार उसे नीचे जमीन पर धकेल देने में भी पत्र-पत्रिकाएँ हिचकती नहीं। सभी पत्रिकाएँ इस प्रकार की नहीं है फिर भी पूरे पत्र धर्म को बदनाम करने के लिए दो-तीन काफी हैं। 'इंडियन एक्सप्रेस' की ड्रामा क्रिटिक शालिनी कात्यायन ने हर्ष की निंदा की। इसका कारण हर्ष बोल रहा था, "यार, जरा-सी बात है। वह दोस्ती को ऐसी दिशा में ले जाना चाहती थी, जो मुझे मंजूर नहीं था। पहला मौका मिलते ही उसने एक दम बिलो द बेल्ट हिट किया है।"

वर्षा स्तब्ध रह गयी। कलात्मक नाट्य-समीक्षा का नया आयाम उसके सामने उजागार हुआ। हो सकता है, हर्ष की बात में थोडी अतिरंजना हो, पर व्यक्तिगत राग-द्वेष सौंदर्यबोधीय मूल्यांकन की कसौटी इस तरह बदल सकते हैं?"[12]

व्यक्तिगत राग-द्वेष एक व्यक्ति के खिलाफ लिखने या आरोप लगाने का तरीका बन गया है। फिल्मी लोगों के बारे में सच्चाई ढूँढने से पहले अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी लिखने को वे लोग तैयार हो जाते हैं। वर्षा भी इसका शिकार बन जाती है। "मुख्यधारा सिनेमा में घुसने के लिए वर्षा वशिष्ठ का ओछापन !' शीर्षक से नूपुर का इंटर्व्यू उसे नीरजा ने दिखाया था। शुरू में वर्षा को इसलिए दोषी ठहराया गया था कि उसने फिल्म स्वीकार करने से पहले नूपुर से नहीं पूछा कि वह कितने समय में स्वस्थ हो जायेगी । आगे की बात को अगर संवाददाता ने कालाबाजी नहीं खिलायी थी, तो इसका सीधा अभिप्राय यही था कि घोडे से नूपुर का गिरना एक पुरपेच षड्यंत्र थी, जिसके

---

12. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.171

पीछे वर्षा का हाथ था।"[13] इसप्रकार अपनी पत्रिका ज्यादा बिक जाने के लिए कुछ भी लिख डालते हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास का नील दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रो.शर्मा के साथ शोध कर रहा था। शर्मा का विश्वस्त एवं सहायक था नील। एक दिन किरन, जो अपने चाचा प्रो.शर्मा के साथ रहने आयी और अचानक दोनें के बीच शारीरिक संबन्ध भी हुआ। किरन गर्भवती हो गयी और प्रो. शर्मा यह जानकर क्रुद्ध हो गेये और नील को निकाल दिया। इतना ही नहीं, "शर्मा ने प्रोफेसर लाहिडी से कहा है, मैं दिल्ली से उसकी जडें खोदकर मट्ठा डाल दूँगा और देश के किसी विश्वविद्यालय में दुबारा रोपने नहीं दूँगा। दिल्ली की अकादमिक दुनिया में वह देखते-देखते हमदर्दी और दया का पात्र बन गया, लेकिन बाहरी तौर पर उसे सहारा देनेवाला कोई नहीं था। अकादमिक सल्तनत में दिल्ली विश्वविद्यालय का विभाग लाल किला था और प्रेफेसर-अध्यक्ष तख्तेताऊस पर बैठा मुगल बादशाह। पूरे देश में नौकरियों के सबसे ज्यादा अवसर तो राजधानी में ही थे और बादशाह हर कमेटी में होता था। ऐसे अकादमिक औरंगज़ेब की नाक के बीचे कौन उसकी ओर सहारे का हाथ बढाता।"[14] अपने अधिकार के ज़रिए नील का शोधकार्य वह स्थगित कर देता है। शर्मा के विरुद्ध नील को लेने के लिए कोई तैयार भी नहीं था इसलिए उसका कैरियर उधर खतम हो जाता है। वह दूसरी नौकरी के लिए निकल जाता है।

मायानगरी मुंबई ने नील को धोका ही दिया। एक अधेड उम्र की नारी के कंपानियन से नील पुरुष वेश्या बन जाता है और मुंबई की अंडर्वार्लड में उसकी मृत्यु भी

---

13. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.397-398
14. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.11

हो जाती है। संपन्न परिवर की पारुल के साथ का सम्बन्ध उसे वहाँ तक ले जाता है। नील के दोस्त भोला को मालूम पडा कि पारुल का खानदान गैंग को बहुत पैसा देता था और सोमपुरिया परिवार बहुत पहले से ही इन लोगों के क्लैंट भी थे। मुर्तज़ा कहते हैं, "तुम्हारा अकेला दोस्त था? शालू उसको बडा भाई मानती थी? पर ऐसे आदमी की सुपारी आई कि इनकार नहीं कर सका। और कर भी देता, तो उसे बचा लेता क्या? यहाँ पाँच सौ रुपए में क़ातिल मिल जाता है।"

"किसकी सुपारी आई?" भोला ने फटे स्वर में पूछा।

मुर्तज़ा ने पल भर उसे देखा, बहुत धीमे स्वर में कहा, "नवीन सोमपुरिया सेठ की।" विराम रहा। भोला ने देर से रुकी साँस छोडी।

"इस नाम को इसी लम्हे भूल जाओ। वो हमारे पुराने क्लाइंट है।"[15] महानगर की यह विशिष्टता है कि पैसा देकर लोग कुछ भी कर सकते हैं। अपने खिलाफ जिसकी आवाज उठती है,रास्ते में जो बाधा बनकर आते हैं सभी को नोंच डालने के लिए पैसा ही काफी है।

कानून संभाँलनेवाले ही उसको तोडने के लिए तैयार हो जाते हैं। अंडर्वार्लड के बीच की शत्रुता को मिटाने की मध्यस्थता करनेवाला है पुलीस के कामथ। सतार और इम्तियाज को मिलाने के लिए कामथ प्रयत्न करता है, "तुम खुले में बाहर नहीं आ सकते।" कामथ बोला, "हफ्ता दस दिन से ज्यादा रहोगे, तो खतरे में पड जाओगे। एसीपी नाडकर्णी भडवा अपनी प्लैनिंग से मुझे बाहर रखने लगा है। फिर भी दोस्ती के

---

15. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.248

नाते मैं चार-छह दिन पुलिस को सँभालने का वादा करता हूँ, पर सी.बी.आई. पर तो मेरा कोई जोर नहीं।''[16]

सरकारी कर्मचारी बाज़ार की चीज बन गये हैं। माफिया के गैंग में आने पर भोला को यह पता चलता है, "पैसे की शक्ति किसी भी व्यवस्था में सेंध लगा सकती है, वह धीरे-धीरे समझ रहा था। पुलीस के कामथ, कस्टम के डिसूजा, एक्साइज के रंगनाथन, कार्पोरेशन के कर्णोक, नार्कोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो के देसाई, सी.आई.डी. की क्राइम ब्रांच के घाटगे सब को देख लिया था। नये साल में सबके यहाँ उपहार पहूँचाने गया था रंगीन टी.वी., वी.सी.आर. सिलाई मशीन, मोटर साइकिल, कमीज और सूट का कपडा, साडियाँ, स्काच की बोतले।''[17]

आज कल का फैशन ही ऐसा है कि भ्रष्टाचारिता के बिना कुछ नहीं होता, पैसे के वास्ते, काम के वास्ते सभी में कुछ न कुछ बनावटी चीज होते ही है। जो लायक है वह पीछे धकेला जाता है। जिसकी मुट्ठी में पैसा और हुकूमत है वही महानगर में जीने योग्य बनता है। इन सबसे अतृप्त मनुष्य नये-नये चीजों की तलाश में भटकते ही रहते हैं। इस बीच अपना व्यक्तित्व खोकर मुखौटे के अन्दर अपना दर्द व सच्चाई को छिपाते हुए जीने का आदी वह बन जाता है।

---

16. सुरेन्द्र नाथ दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.222
17. वही, पृ.69

शोषण

शोषण तो हर काल, हर जगह होता ही रहता है। पुराने ज़माने से यह दृष्टव्य है। काल के अनुसार परिवेश और व्यक्ति भी बदलते हैं। महानगरीय परिवेश में जीने के लिए समझौते की जरूरत है। वह समस्याओं एवं अवसरों की दुनिया है। एक ही पल में भाग्यरेखा ऊँची हो सकती है। कभी-कभी अपनी योग्यता को बाजार में बेच कर भी जीना पडता है। बाज़ार के अनुरूप कीमत भी बढ़ जाती है। बाज़ार की रुख को समझनेवाला ही टिक सकता है। ऊँची कीमत से ही ऊँची जीवनशैली और सुख प्राप्त होते हैं। कुछ भी हो बाजार अपनी कीमत वसूलकर ही रहेगा। महानगर व्यक्ति को लूटकर उसका सब कुछ अपने ही अन्दर समेट लेता है।

शोषण के अनेक रूप होते हैं शारीरिक, मानसिक आदि। 'अंधेरे से परे' की नलिनी का कहना है, "यह मेरा पहला मौका था। मुझे समझ जाना चाहिए था कि नतीजा क्या होगा। और बहुत सारी चीज़ों के अलावा मेरे पास अच्छी किस्मत भी नहीं है। मैं अक्सर सोचती हूँ कि अगर मैं सुंदर न हो सकी तो शायद थोडी खुशकिस्मत होने पर संतोष कर लेती।"[18] नलिनी के गर्भवति होने पर वह आदमी उसे छोड़के चला गया। नलिनी पर यह कैसे बीतेगा, यह उसने सोचा नहीं। नलिनी पहचान लेती है, "मैं अपनी नातजुर्बेकारी से तंग आ चुकी थी। अट्ठाईसवाँ साल चल रहा था और यह भी नहीं मालूम था कि उसने सिर को एक झटका दिया, असहिष्णु भाव से,

---

18. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.166

'मैं ज़िन्दगी के उस पैटर्न से आजिज आ चुकी थी, जिसमें कहीं कुछ नहीं होता था।''[19] यह मात्र नलिनी की कथा नहीं। ऐसे अनेक लोग होते हैं जो अपने हित के लिए दूसरों का उपयोग करने के बाद उन्हें छोड़ देते हैं चाहे पुरुष हो या स्त्री।

नारी का शोषण विज्ञापन क्षेत्र में ज़्यादा देख सकते हैं। उसकी नग्नता के प्रदर्शन से वह चीज़ ज़्यादा बिकती है। कंपनी का बस एक ही उद्देश्य है, ''अपने प्रोडक्ट की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करना और उसे बेचना।''[20] सिर्फ अपनी जेब भरना ही लोग चाहते हैं। उन लोगों का उद्देश्य यही है कि इस नग्नता के प्रदर्शन से वह लोगों के मन में विज्ञापन की छाप छोड देना।

अखबारों में इन सभी शोषणों का वर्णन विस्तृत रूप से पढ़ने के बाद भी लोग इसका शिकार बन जाते हैं। यही महानगर का अभिशाप है कि खतरे से अवगत होते हुए उसी में फँस जाते हैं। इसलिए ज़िन्दगी में आस्था जगानेवाला कोई समाचार देख नहीं सकते। ''देश के एक प्रदेश में सांप्रदायिक दंगा हो गया था, तो दूसरे में अकाल पड रहा था। एक बडे शहर में बाढ आ गई थी और एक छोटे गाँव में अछूत शिशु की बलि दे दी गई थी। बढती महंगाई की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए महिलाएँ संसद के सामने धरना देनेवाली थी और एक बैंक के मैनेजर को तीन लाख के गबन के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया गया था। एक ओर वन्य पशु तेज़ी से विलुप्त होते जा रहे थे तो

---

19. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.164
20. वही, पृ.73

दूसरी ओर एक अकेली युवति के साथ टैक्सी ड्राइवर ने बलात्कार किया था ।"[21] कोने-कोने में ऐसी घटनाएँ चालू हैं।

विवाह के सिलसिले में भी नारी का शोषण हो रहा है। सयानी होने पर माँ-बाप के मन में उसकी शादी को लेकर चिंताएँ उठती हैं। लेकिन उधर भी वह एक बिकाऊ चीज बन जाती है। या फिर पिता की सामाजिक प्रतिष्ठा होनी चाहिए या लडकी के पास ऊँची शिक्षा। 'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा की बहन गाययत्री की शादी को लेकर ऐसी ही समस्या उठ खडी हुई थी। लडकी का प्रदर्शन करना जरूरी था, "इन सारे प्रदर्शनों में वर्षा गायत्री की सहायिका और गवाह रही। वह ऊपर के कमरे में मनोयोग से गायत्री को तैयार करती। तब तक बैठक में संभावित वर के परिवार को चाय के साथ कोई पकवान लडकी के पाक-कौशल की बानगी के रूप में खिलाया जा चुका होता (जो सचमुच गायत्री के हाथों से बना होता)। तितलियाँ काढा हुआ मेज पोश भी सामने रहता। फिर दूतिका झल्ली से संदेश पाने के बाद वर्षा मद-मंथर गति से गायत्री को नीचे लाती (जीने पर गायत्री हाथ जोडकर मनौती माँगती, "है भगवान,पाँच रुपये का प्रसाद चढाऊँगी, अगर ') बैठक में आ नीची निगाह किये गायत्री निर्णायक मंडल के सदस्यों को नमस्ते करती और इंगित कोने पर वर्षा के साथ बैठ जाती ।"[22] यह पुराने ज़माने से चला आ रहा है। लेकिन महानगरीय संस्कृति में इतना अंतर आने पर भी ऐसे आचारों में कोई बदलाव नहीं आया है, बल्कि वह और भी तीखा हो गया है।

---

21. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.2
22. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.24

महानगर में आकर लोग उसी के अनुकूल व्यवहार करने के लिए विवश हो जाते हैं। अपना स्थान बनाये रखने केलिए कुछ भी लुटा लेने को तैयार जाते हैं। वे जानते हैं कि वहाँ उनका ही शोषण हो रहा है, फिर भी पाँव जमाने के लिए ये सब जरूरी बन जाता है। वर्षा की पहली व्यावसायिक फिल्म की नायिका कंचनप्रभा तो ऐसा एक व्यक्ति है। फिल्म बनानेवाले यह जानते हैं कि कंचनप्रभा की नग्नता बाज़ार में खूब बिक जाएगी। लोग उसी क्षण के लिए फिल्म देखने आते हैं। फिल्म का एक हिस्सा इस प्रकार है, इस बार रैकेट को कंचनप्रभा ने ऐसे थामा कि हत्था उसकी पुष्ट जाँघों के बीचोंबीच लटकने लगा।

वह झालरदार पेंटी-जैसी चीज पहने थी। इन्हीं नंगी जाँघों की एक झलक के लिए टिकट-खिडकी पर कोहराम मच जाता है, वर्षा ने सोचा।"[23] महानगरीय वातावरण की संतानों का पालन-पोषण भी उस तरह हो जाता है। कुछ कहने से कोई फायदा नहीं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' नामक उपन्यास का नील अपने ही जिस्म का शोषण करके महानगर में पैसा कमाता है क्योंकि, "उसे पता था, नारी जाति का बडा वर्ग आमतौर से उसके शरीर में आक्रामक आकर्षण पाता था।"[24] हमारा समाज अपने सुख के लिए सुख की परिभाषा भी बदलकर अपनी इच्छानुसार उसका एक-एक अर्थ निकालना शुरू करता है। नारी का सबसे बडा अभिशाप यह है कि उसको निचले किस्म का काम ही मिलता है। जिसके पास धन दौलत नहीं है उसको आजीविका

---

23. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.347
24. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.8

कमाने के लिए अपना अंतर्वस्त्र तक फेंकना पडता है। रातरानी रस्तराँ में काम मिलने के कारण उधर के रीति-रिवाज समझने का अवसर भोला को मिला। कैबरे डाँस करनेवाली औरतें इसप्रकार अपनी नग्नता का प्रदर्शन करके जी रही हैं। शालू के साथ भोला का परिचय इस प्रकार हुआ था। "अगली भेंट में मालूम हुआ कि पाँच वर्ष पहले श्रमिक पिता के मरने के बाद उसने कई तरह के काम किए। फिर इस पेशे में आ गई। उसका छोटा भाई तेरह साल का है और दो बहनें आठ व नौ की।

उसने पूछा नहीं कि ऐसा पेशा अपनाने की क्या विवशता थी। न शालू ने कुछ कहा। पर एक बार उसकी खोली में जाने पर सब स्पष्ट हो गया।"[25]

नील बंबई में आकर एक महिला के 'कंपेनियन' के रूप में काम कर रहा था। एक बार नील को उस महिला की एक सहेली कुमुद की कामवासना का शिकार बनना पडा। उसके बाद कुमुद की शादी तक वह रिश्ता कायम रहा। कुमुद की शादी की बात सुनकर नील टूट पडा। तब तक नील का पूरी तरह शारीरिक शोषण हो चुका था। कुमुद कहती है, "मैं मानती हूँ तुम्हारे साथ मैंने ज़्यादती की है। पर क्या करूँ, तुम्हारी कोशिश मुझमें ऐसे तडपी कि मैं अपने को संभाल नहीं पाई

अब मुझे अपने को सँभालना है, उनके वक्ष में मुँह छिपाते हुए उसने सोचा

'तुम्हारी स्मृतियाँ मेरे मन के बहुत भीतरी कोने में रहेंगी।' कुमुद का रुँध

---

25. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.71

सुनाई दिया।''[26]

पुरुष वेश्या बनकर नील ने जो पैसा कमाया उन सब को पारुल के भाई ने 'फ्रीज़' कर दिया। अब नील के पास कुछ भी नहीं हैं। इतना पैसा कमाने के बाद भी नील चाह रहा था कि उसकी भी घर-गृहस्थी हो अपना एक छोटा परिवार हो। लेकिन पारुल की इजाजत के बिना नील कुछ नहीं कर पाया। अंत में पारुल की सहमति मिली तो नवीन जो पारुल का भाई है इसके विरुद्ध खडा हुआ और जिस प्रकार नील दिल्ली से बंबई आया था ठीक उसी प्रकार वह खाली हो गया। यही वह मायानगरी है एक ही झटके में एक को आसमान तक उठाके अगले ही पल नीचे धकेलती है। और नील यह नहीं चाहता था। इसीलिए वह अपने लिए भोला के सामंतवाडी तक जाता है। और उन लोगों को विश्वास दिलाता है। लेकिन वही लोग नील के साथ विश्वासघात करते हैं, नील की इच्छा अधूरी रह जाती है और उसकी मृत्यु हो जाती है। महानगर का सबसे बडा शोषक महानगर ही है अन्य सभी शोषित हैं। इस तथ्य को समझेबिना अपने स्वार्थ की चिंता में लोग उसी में आ फँस जाते हैं।

सांस्कृतिक विघटन

हर देश की अपनी एक संस्कृति होती है। वह देश की नींव होती है। उसमें दरार पड जाए तो वह देशरूपी महल हिलने डुलने लगेगा। और उस देश का अपनत्व नष्ट हो जाएगा। मनुष्य ने अपने अनुभवों से जिन श्रेष्ठ मूल्यों को स्थापित किया था,

---

26. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.89

उन्हें नये सन्दर्भ में पुन: मूल्यांकित करना आधुनिकता है। यह प्रगतिशील प्रक्रिया है। सन्दर्भ के अनुसार यह बदलती रहती है। नयी-नयी जानकारियों के साथ नए-नए साधन और नए नए उत्पादन भी सुलभ होते जा रहे हैं । पुराने मूल्यों को भूलकर मनुष्य नयेपन के पीछे भागे जा रहे हैं। इस भागदौर में नयी सामग्री और नये कौशल नवीन संदर्भों की रचना कर रहे हैं। आजादी के बाद सारी सुविधाएँ नगरों में केन्द्रित होने के कारण काम की तलाश में लोगों ने नगर की ओर प्रयाण करना शुरू किया। अपने-अपने स्वार्थ के लिए संस्कृति के महनीय मूल्यों को भी छोडने के लिए लोग तैयार हो जाते हैं। कई तरह की समस्याओं और संघर्षों का सामना उन्हें करना पडा और समाधान खोजने के लिए समय भी कम मिला। ऐसे सन्दर्भ में संस्कृति का विघटन शुरू हो जाता है। पैसे के पीछे की भागदौड में भिखारी से लेकर शासक वर्ग तक है। अपने बदन को बेचकर पैसा कमाने में भी कोई हिचक नहीं है। बाजार के अनुकूल कीमत में भी अंतर देख सकते हैं। लोग अपने देश को भूलकर विदेशों के पीछे भागने लगे। लोग अपने आचार-विचार को तोड़-फोड़ के, ज़िन्दगी की तेज रफ्तार के अनुकूल अपनी नॉव भी बहाते चले जाते हैं। इस सिलसिले में जो कुछ विलुप्त होता जा रहा था उसको लेकर कोई चिंतित नहीं था।

कहते हैं कि आज का बच्चा कल का नागरिक है। लेकिन बच्चे की परवरिश ठीक-ठाक करने से ही बच्चा अच्छा नागरिक बन जाएगा। उसके पीछे भागनेवाली युवापीढी को देखके, पारिवारिक घुटन में पलनेवाला बच्चा कैसे अच्छा नागरिक बनेगा। सांस्कृतिक मूल्यों को ठुकराकर सुख-भोग और धन-दौलत के पीछे भागनेवाले समाज का पतन आहिस्ता-आहिस्ता हो रहा है। अत: हमें अपने मूल्यों के बलबूते पर

लोगों को सचेत कराने का कार्य करना चाहिए। इसके लिए साहित्य जगत में अनेक महत्वपूर्ण प्रयत्न हुए हैं।

'अंधेरे से परे' उपन्यास का नायक गुलशन ऐसे युवावर्ग का प्रतीक है जिनकी आशा निराशा में बदल जाती है। होशियारी की जगह संत्रास है। अपने घर के तनाव और माँ-बाप के प्यार की कमी ने उसे ऐसा बना दिया था। एक बार उसने आत्महत्या की कोशिश तक की। अपने ही घर के अन्दर अकेले होने की विसंगति ने उसे बाहर निकलने से भी रोका। बिंदो ने गुलशन को आश्वस्त करने का प्रयत्न किया, "जब तुम यहाँ से निकलकर बाहरी दुनिया का सामना करते हो तब?'

'मुझे अजीब-सी झिझक और हीनता महसूस होती है।

'क्यों?'

'मुझे लगता है कि मुझसे कुछ न कुछ गलत हो जाएगा। थोडे तनाव से ही मेरे तलवों व हथेलियों पर पसीना छूटने लगता है, और जी चाहता है कि लोगों के बीच से भागकर कहीं एकांत में जा छिपूँ।'

'मगर तुम क्यों करते हो ऐसा महसूस?' बिंदो जैसे जिद से बोली।

'छोडो बिंदो ।' निढाल स्वर में कहा, 'शायद असफलता ही मेरी नियति है।"[27]

---

27. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.39

पति-पत्नी के बीच का रिश्ता जब टूटता है तब बच्चों पर उसका बुरा असर पडता है। पहले तो बच्चे की देख-भाल माँ और बाप दोनों का दायित्व था लेकिन जमाने के बदलने के साथ यह इनमें से किसी एक का दायित्य बन गया। जित्तन को काम से सस्पेंड करने के बाद वह विरक्त ज़िन्दगी जी रहा था। इसके विरुद्ध बोलने पर बिंदो से रूठकर अपने दोस्त के यहाँ चला जाता है। गुलशन से जित्तन कहता है, "और मेरे साथ किसकी ज़िन्दगी जुडी है?' जित्तन का स्वर उद्धत था चोट खाये बच्चे-सा, जो अपनत्व-भरा सांत्वना का स्पर्श चाहता है। और साथ ही अधिकार छिन जानेवाला आहत भाव।

'कम-से-कम बच्चे के लिए सोचिए।'

'कब तक सोचूँ गुल्लू! मैं नहीं होऊँगा तो उसकी माँ उसकी देख-भाल कर लेगी।"[28]

विज्ञापन की दुनिया में नारी की नग्नता का प्रदर्शन खूब हो रहा है। नारी को देवता माननेवाली हमारी संस्कृति में ऐसी दरार आ गयी है। विज्ञापन में सेक्स को लेकर एक परिचर्चा में गुलशन भी भाग लेता है। उसी में मधु अपनी राय बता रही थी, "वैसे मुझे विज्ञापन में सैक्स को लेकर शर्म नहीं आएगी, अगर लोग आंशिक नग्नता पर पैसे खर्च करने के लिए तैयार हो, तो। लेकिन सैक्स के ऊपर जरूरत से ज्यादा बल देने पर मैं चेतावनी देता हूँ, तथाकथित नैतिकता की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि व्यावसायिक रुख से भी

---

28. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.49

मैं आपकी बात से एक हद तक सहमत हूँ। विज्ञापन को देश की सांस्कृकि स्थिति के साथ चलना होता है और सैक्स क्योंकि आज की संस्कृति का एक निर्धारित तत्व है, इसलिए हम इसे प्रचार से अलग करके नहीं देख सकते।''[29]

संस्कृति का कितना भी विघटन हो, खुल्लम खुल्ला उसी विघटन में खुशी के साथ जीनेवाला भी अपने अन्दर ही अन्दर संस्कृति के मूल्य को मानते हैं। और वह संस्कृति का मतलब नारी से मानते हैं। नारी का स्वतंत्र अस्तित्व कोई पसंद नहीं करता। नारी के साथ खूब मस्ती करने के बाद दूर जाके और कुछ बोलते हैं। गुलशन को मधु के घर में एक पार्टी में जाना पडा। एक अधेड सज्जन आके पूछता है, ''आप कोने की उस महिला को देख रहे हैं।'

इशारे पर एक नजर देखा।

'क्या यह हमारी भारतीय संस्कृति के अनुकूल है?' आज कल कोई भी पत्रिका खोलने पर आप वीमेंस लिब के बारे में पढते हैं। मैं आपसे एक सीधा-सादा प्रश्न पूछना चाहता हूँ। बिना किसी बंधन के पूरी स्वतंत्रता लेकर आखिर नारी करना क्या चाहती है?''[30]

हमारी संस्कृति में इतना पतन आ गया कि मधु अपने ही घर में पी के होते हुए भी गुलशन को अपनी शय्या कक्ष तक ले जाती है और अगले दिन श संबन्ध भी हो जाता है। यह विघटन तब उभरकर सामने आता है जब बिंदो

---

29. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.73-74
30. वही, पृ.81-82

मम्मी के बीच संवाद होता है। बिंदो के परपुरुष संबन्ध के बारे में मम्मी पूछती है तो वह कह उठती है, "क्या तुम कह सकती हो कि तुम अस्थिर नहीं हो, भावना की दृष्टि से? तुम्हारे और पापा के बीच जो तनाव मैंने देखा है, उससे तो यही लगता रहा है कि . . . ।"[31] अंत में बिंदो पूछ उठती है, "तुम पापा के प्रति फेथफुल रही हो?"[32]

फिर वक्फा। लंबा। गहरा।

'नहीं।"[32]

गुलशन अपने दफ्तर के लोगों के साथ एक 'बार' गया तो उसका ध्यान नृत्य करनेवाले दो जोडे पर गया और उसको पता चला कि वह बिंदो ही है। दोस्तों के साथ मदिरापान करने के लिए लडकियाँ भी चली जाती है। नलिनी का बिन ब्याह गर्भवती होना आदि हमारी संस्कृति के खिलाफ है। महानगर में यह सब हो सकता है। दूसरों की तरफ कोई देखता नहीं।

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा उत्तरप्रदेश के एक गाँव की है। वह पहली बार नाटक करने के लिए घरवालों की इजाजत के बिना दिव्या के साथ लखनऊ चली है। जहाँ खुशी की वेला में मदिरापान स्त्री-पुरुष एक साथ करते हैं।" प्रदर्शन रोहन के यहाँ शैंपेन की बोतल खोली जा रही थी। लघु विस्फोट सहित काग खुलने के साथ जब झाग के ज्वार को प्यालों में उडेला गया, तो वर्षा रोमांचित हो उठी।"[33]

---

31. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से पर, पृ.103
32. वही, पृ.104
33. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.72

महानगर में कोई कहीं भी जाए कोई ध्यान नहीं देता और भारतीय संस्कृति के खिलाफ विवाह के पहले पुरुष के साथ शारीरिक संबन्ध ठीक नहीं हैं। नाट्यविद्यालय के हर्ष से वर्षा मिलती है। वह मिलन शारीरिक संबन्ध की हद तक पहूँच जाता है। लेकिन वर्षा को अपनी करनी में कोई दु:ख नहीं उसके बजाय वर्षा का मन प्रफुल्लित हो रहा था। उसने अपने मन ही मन कहा, "मैं स्त्री बन गयी हूँ! मैं स्त्री बन गयी हूँ!"[34]

स्त्री-पुरुष संबन्ध पवित्र है। लेकिन महानगर में आते-आते पति-पत्नी संबंध बिगड जाता है। अगर पति योग्य नहीं है तो पत्नी उसे छोड़ देती है। चतुर्भुज और सुशीला की शादी बहुत पहले हुई थी। एक बच्चा भी है। लेकिन ड्रामा स्कूल से बाहर निकलने के बाद चतुर्भुज को सुशीला योग्य नहीं लगी और वह उसे छोड देता है। रिपर्टरी की अनुपमा से वह शादी भी कर लेता है। बाद में उससे भी रूठकर फिल्मी दुनिया की रंभा के साथ जीने लगता है। लेकिन उधर से भी चोट खाके अंत में सुशीला के पास लौट आता है।

बडे-बडे शहरों में सुख-भोग का अंतिम चरण है अफीम और शराब। बिना वजह मित्रों के साथ गप्पें मारके सभी एक साथ इन सब का सेवन कर लेते हैं। हर्ष तो नाट्यविद्यालय में ही चरस लेता था लेकिन बहुत कम। पर बंबई में आकर अपनी नाकामयाबी उसका सुध-बुध नष्ट कर देती है। दूसरी बार वर्षा ड्रग एडिक्ट्स के एक अड्डे से हर्ष को ढूँढ निकालती है और उसे घर पहूँचाती है, "इतने वर्षों में वर्षा ने हर्ष को कभी नशे में बेसुध नहीं देखा था। वह सिर्फ मोहक तरंग में आता था। चेतना या

---

34. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.121

संयम खोने का प्रश्न ही नहीं था। वस्तुत: हर्ष का आसव-पान वर्षा के लिए गर्व का कारण था। एक पैग के बाद उसकी हाजिर जवाबी में और निखार आ जाता था। उसकी ड्राइविंग की सजगता में भी कमी नहीं आती थी। आज दूसरी बार हर्ष को चेतनाहीन देखकर वर्षा सकपका गयी। मदिरा और ड्रग्स में क्या आधारभूत अंतर होता है, यह वर्षा के सामने थोडा-सा उजागार हुआ।"[35] हर्ष की मृत्यु भी ड्रग्स के ओवरडोज़ के कारण हुई थी।

वर्षा का प्रेमी था हर्ष। लेकिन हर्ष के साथ के संबन्ध के रहते वर्षा सिद्धार्थ के भी निकट आती है। वह रिश्ता चुंबन तक सीमित था। फिर भी सिद्धार्थ तो यह मानता था कि वर्षा उसकी प्रेमिका है। हर्ष के बारे में जानकर सिद्धार्थ का दिल टूट जाता है और आत्महत्या की कोशिश करता है।

अविवाहित नारी का गर्भवती होना अनैतिक है। हमारी संस्कृति इसके बिलकुल विरुद्ध है। हर्ष की मृत्यु के बाद पता चला कि वर्षा गर्भवती है। लेकिन वर्षा बच्चे को पालने का निश्चय कर लेती है। हर्ष की मम्मी और बहन आ जाती हैं और वर्षा को समझाने की कोशिश करती है कि यह गलत है और इससे छुटकारा पाना है। सुजाता कहती है, "तुम्हें अंदाज़ होगा, सामाजिक रूढ़ियों के लिहाज से तुमने कैसा चुनौती भरा कदम उठाया है?"[36]

---

35. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.389
36. वही, पृ.555

जिज्ञासा एवं एडवेंचर के कारण अपनी संस्कृति को तोडकर दूसरों के साथ सम्मिलित होना सभी चाहते हैं। पर अपनी संस्कृति का एक पहलू जो हमेशा के लिए हर आदमी के अन्दर बना रहता है उसे कभी मिटा नहीं सकते। वर्षा जहाँ भी जाए और जो भी करे, मन ही मन वह भारतीय नारी ही है। अपने रास्ते में आनेवाले बाधक तत्वों को एक सीमा तक लांघने की कोशिश वह करती है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' का नील दिल्ली विश्वविद्यालय का शोध छात्र है। वह अपने गुरु का प्रिय शिष्य था। लेकिन वह एक पल के लिए अपना निजीपन भूलकर प्रो. शर्मा के भाई की बेटी के साथ शारीरिक संबन्ध रखता है और वह लडकी गर्भवती हो जाती है। महानगर की सबसे बडी विशेषता यह रही कि सब लोग अपने सुख के बारे में सोचते हैं। मथुरा से आया भोला निष्कलंक था। लेकिन मायानगरी बंबई उसे वहाँ धकेल देती है जहाँ अफीम शराब और नारी बिके जाते हैं। पैसे के लिए आदमी का खून लेनेवालों की दुनिया में अपना पॉव रखकर भोला भी उन्हीं का अंश बन जाता है।

नील पुरुष वेश्या बन जाता है। और नील को कामकला सिखानेवाली कुमुद सांस्कृतिक विघटन का अच्छा उदाहरण है। अपनी कामवासना की पूर्ती केलिए पैसे देनेवाली अधेड उम्रवाली नारी महानगर की संतान है।

पति लोग ऐसे भी होते हैं जो परिवार को बनाये रखने के लिए, समाज में उच्च पद हासिल करने के लिए पत्नी को भी बेचने या पत्नी के हितानुसार परपुरुष संबन्ध के लिए भी तैयार हो जाते हैं। पत्नी के परपुरुष संबन्ध के बारे में जानने के बाद भी पत्नी को छोडने के लिए वे तैयार नहीं होते क्योंकि पत्नी के पास दौलत है। उसको नष्ट करना

कोई नहीं चाहता। इसीलिए पारुल और नील के संबन्ध को जानने के बाद नील से जयंत कहते हैं कि उसकी ज़िन्दगी का एक मात्र मकसद उसका काम है। और वह लालच को बहुत पवित्र भावना मानते हैं। पारुल की बातों से उसकी एकाग्रता भंग होती है। लेकिन पारुल के नष्ट होने का मतलब है एसैट्स का बँटवारा। इसलिए वह नील से कहते हैं, "हमारे एसैट्स का बँटवारा होगा। मेरी शक्ति एक तिहाई रह जाएगी।" कुछ क्षण मौन रहा। जयंत ने घडी पर निगाह डाली। फिर जेब से एक बंड़ल निकालकर उसके हाथों में रखते हुए आवेग से कहा, "मेरा घर न टूटे इसके लिए मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।"[37]

पारुल भी अपने पति-बच्चे को भूलकर अपनी खुशी के लिए निकलती है। संस्कार, धर्म किसी की भी परवाह नहीं करता। उपन्यास में ऐसी अनेक नारियाँ है जो पल भर के सुख के लिए मुँह छिपा के नील जैसे लोगों की तलाश करती हैं। सबसे बडी बात यह है कि ऐसी एक एजेंसी भी है जो नील जैसे लोगों के लिए खोली गई है।

इन सबके बावजूद वे अपने अन्दर ही अन्दर भारतीय संस्कृति की गरिमा को बनाए रखते हैं। महानगर में आने के बाद पैसा कमाने की लालच में वे पथभ्रष्ट तो होते ही है। सांस्कृतिक मूल्यों में इतने बडे दरार आने के बाद भी उनका शाश्वत रूप हमेशा के लिए बना रहता है। परंपरा से हमें उन मूल्यों का वही रूप प्राप्त होता रहा, जो अतीत में बना था। रचनाकार हमें सांस्कृतिक फिसलन से अवगत कराने का कार्य करते हैं। यह ठीक है, "आवाज़ें खरीदी जाती हैं, आत्माएँ खरीदी जा सकती है, दुनिया की सारी चीजें

---

37. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.164-165

खरीदी जा सकती है लेकिन सब कुछ थोडे समय के लिए, आप हमेशा के लिए हर आवाज़ को नहीं खरीद सकते हैं। हर व्यक्ति की आत्मा कुचली नहीं जा सकती।''[38] क्योंकि हमारी जडें बहुत मज़बूत हैं। ऊपर से उसमें काट-छाँट कर सकते है लेकिन नीचे वह गहरा होता है। इतना गहरा कि कोई उसे उखाड नहीं सकता।

व्यक्ति का यथार्थ

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति के अकेलेपन का वर्णन किया है, ''पात्रों का अकेलापन लेखक के अंतरंग जीवन से अलग नहीं होता। एक सीमा तक लेखक इन पात्रों को जीता है। उनके कंपल्शंस उन्हें बहा ले जाते हैं। लेखक तो एक ही है जबकि पात्र कई हैं। हर पात्र अपना जीवन जी रहा है। अकेला तो प्रत्येक व्यक्ति है। अपनी दिनचर्या में भी देखें तो आप ज़्यादा समय अकेले ही रहते हैं।''[39]

व्यक्ति का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व उसे दूसरों से अलग अपनी ही दुनिया में रहने केलिए प्रेरित करता है। गुलशन अपने घर में ही अकेलापन महसूस करता है। घरवालों के सामने जाने के लिए भी वह तैयार नहीं है। क्योंकि, ''इसी व्यग्रता के कारण सुबह लोगों के सामने पडने में संकोच होता है। इनके सामने दफ्तर की व्यस्तता है। यह सुबह इनके लिए महज एक स्प्रिंग बोर्ड है, जहाँ से ये लंबी व्यस्तता में छलांग लगाएंगी। अपने कमरों के एकांत से निकलेंगी और कार्यालय की सामूहिकता में लीन हो जाएं

---

38. राजेन्द्र यादव उखडे हुए लोग, पृ.349
39. दस्तावेज जुलाई-सितंबर 1999, पृ.39

इनका काम इनका हमदर्द है जो अकेलेपन के तनाव से निजात दिलाता है।''[40] ऐसी मानसिकता को लेकर वह ज़िन्दगी को निराशा की ओर धकेल देता है।

गुलशन बचपन से ही अंधेरा पसन्द करता था। इसका कारण अपने माँ-बाप के बीच का तनाव है। पहले तो उसकी माँ उसे बहुत प्यार करती थी और वह जो भी करें इम्तिहान में अंक कम मिले या दौड में पीछे छूट जाए कुछ भी हो माँ उसे प्यार देती थी। और इतने सालों बाद अब गुलशन यह महसूस करता है, ''मेरी परवरिश ही इस तरह हुई थी कि मैं असफल बनूँ।''[41] इसी तरह अब बिंदो का लडका सोमू का भी पालन हो रहा है।

यही अकेलापन आदमी को जीते जी मुर्दा बना देता है। कुछ करने के लिए नहीं है तो मन इधर-उधर भ्रमण करता रहेगा। और अंत में अपनी नाकामयाबी उन्हें तनाव की स्थिति में पहूँचाती है। उसका परिणाम होता है आत्महत्या। गुलशन वह भी कर देता है। लेकिन बच निकलता है।

'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा बहुत जल्दी ही सभी के मुखौटे के अन्दर का चेहरा पहचान लेती है, ''छत की मुंडेर से यह दृश्य देखते हुए वर्षा ने गहरी साँस ली नहीं, यह जीवन की सुंदरता नहीं हो सकती। यह सब मेरे लिए नहीं हो सकता। ये मेरे रक्त

---

40. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.24
41. वही, पृ.31

संबन्धी है, इनका सुख दु:ख मेरा है, पर मेरा सुख-दु:ख मेरा ही रहेगा। ये उसे बाँट नहीं सकेंगे। एक हद के बाद उसे समझ भी नहीं पायेंगे।"[42]

वर्षा के अन्दर जो अभिनेत्री थी, उसको वह पहचान नहीं पायी। लेकिन दिव्या वर्षा के व्यक्तित्व का यथार्थ पहचान कर उसे बाहर निकालने की कोशिश करती है, "तुम्हारे अन्दर जो ज्वार भरा है, उसे मुक्ति देने के लिए ढक्कन खोलने की जरूरत है।" इस बार उनका भाव गंभीर था। "तुम्हें अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम चाहिए। वह क्या होगा, यह मैं अभी पक्के तौर पर नहीं कह सकती। पर एक बार रंगमंच की कोशिश कर लेने में कोई हर्ज़ नहीं।"[43] व्यक्ति अपने यथार्थ के ऊपर पर्दा डालता है। लेकिन कभी तो वह बाहर आयेगा ही। कभी वह पर्दा दु:ख छिपाता है तो कभी कपटता। दिव्या के प्रेमी के बारे में सुनकर वर्षा सोचती है, "हर व्यक्ति के साथ कितना कुछ गोपनीय होता है। सतह के ऊपर किसी से मिलते हुए उसके बारे में बहुत कुछ जानते हुए भी हम उसके अंतर्मन के गहन कोनों से कितने अनजाने रहते हैं और हमें इसका भान भी नहीं होता। गलियारे में रजिस्टर लिये जाती, अभिवादन का मुस्कान से जवाब देती मिस कत्याल को देख कर क्या कोई सोच सकता है कि ऐसी मोहक युवती के साथ निद्राहीन रातें जुड़ी हैं और उनके पीछे एक प्रेमी है।"[44]

ऐसा भी होता है कि पालन-पोषण और अच्छी शिक्षा की वजह से व्यक्तित्व और भी उभरकर सामने आता है। वर्षा को सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का पुरस्कार मिलने पर

---

42. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.26
43. वही, पृ.28
44. वही, पृ.53

डॉ. अटल की टिपणी थी, "जो अमिनेत्री ड्रामा स्कूल के दाखिला इंटर्व्यू में डरी हुई हिरनी की तरह पलकें झपकाती दाखिल हुई थी, इस फिल्म में भूखी क्रुद्ध शेरनी की तरह कला आखेट में तल्लीन दिखायी देती है।"[45]

वर्षा के घरवाले उसे बहुत सताते थे। बहुत कोशिश के बाद परिवार से रूठकर वर्षा अभिनय के लिए निकलती है। उसके पास दौलत और शौहर आने पर घरवाले उसके पास आ जाते हैं। इन लोगों का यथार्थ समझना बहुत मुश्किल है।

हर्ष की मृत्यु के बाद ही पता चला कि वर्षा गर्भवति है और यह जानकर हर्ष की मम्मी और बहन आ जाती है। बहन सुजाता तो पहले वर्षा से बहुत प्यार करती थी लेकिन अभी वह वर्षा से सहमत नहीं थी। और मम्मी ने तय किया कि अपने पास जो कुछ है उसको सुजाता के बच्चे और वर्षा के बच्चे में बाँट दे। लेकिन यह सुनकर सुजाता मम्मी से रूठकर चली जाती है। पैसा वह कालकूट विष है जो मनुष्य को शैतान बना देता है और यह भी साबित होता है कि हर आदमी अन्दर ही अन्दर पैसा ही चाहता है। उसको कमाने के लिए ही मुखौटा पहन लेता है।

अपना विचार अलग होने के कारण वर्षा अपने ही घर में अकेली हो जाती है। अपना अकेलापन और घुटन ही उससे लिखवाता है, "मेरा बस चले, तो मैं आकाश की दहलीज़ पर बनी सात रंगों की इन्द्रधनुषी अल्पना बनूँ, चन्द्रमा को देखकर खिल जानेवाली कुमुदनी बनूँ, पर जो अपने प्रदेश के अनुरूप ('इतना कायर हूँ कि उत्तर प्रदेश हूँ!') दबी-सकुची मध्यवर्गीय कन्या है, उसकी महत्वाकांक्षा की अंतिम सीमा यही हो

---

45. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.365

सकती है कि कोई लोअर-डिवीज़न क्लर्क उसके हाथों से वरमाला स्वीकार कर ले और मामूली दहेज के बावजूद ससुराल के रसोई घर में उसके साथ कोई 'दुर्घटना' न हो ."[46] अपने को सभी से अलग पाकर वह अपने में ही सिमट जाती है। अभिनेत्री बनने के बाद भीड़ में, बहुत सारे लोगों के साथ भी उसे अजनबीपन का एहसास होता है।

चुनाव के अवसर पर नेता लोग अंडर्वार्लड के सहारे काम चलाते हैं। कालाबाजार के जरिए यहाँ चुनाव में हार-जीत होती है। "शिदे भवन का पिछला दरवाजा बंद था। घंटी का बटन दिखाई नहीं दिया तो उसने दो बार मद्धिम दस्तक दी।

कुछ क्षणों बाद नौकर जैसे लडके ने दरवाजा खोला। उसे देखकर थोडा चकित हुआ। शायद महरी की अपेक्षा कर रहा था।

"बोलो इलियास भाई ने भेजा है।"

थैला गोद में रखे भोला कुर्सी पर बैठ गया। मेज़ पर 'वोट दो' वाले पैंफ्लेटों के बंड़ल रखे थे, जिनमें से छपाई व स्याही की ताजी गंध आ रही थी। दीवार पर सूखी फूल माला-टँगा शिवाजी के बडा-सा चित्र लगा था।

बाहर आहट होते ही वह तुरंत खडा हो गया, "सलाम साहेब"

---

46. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.20

"जयहिंद !" चश्मे के पीछे से आँखों ने क्षण-भर उसका निरीक्षण किया। वे सामने के कुर्सी पर बैठे, तो कलफ लगी धोती और कुर्ते की खस-खस हुई। उसने थैला आगे बढाया, तो उन्होंने ले लिया। पर खोलकर नहीं देखा।

"पाँच जीपें परसों पहूँच जाएँगी साहेब !" उन्होंने सिर हिलाया।"[47] राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी अनेक घटनाएँ होती हैं। नियमों का पालन करनेवाला ही उसके खिलाफ काम करते हैं। समाज के इन सब यथार्थों का पर्दाफाश सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में दृष्टव्य है।

समाज के उच्चवर्ग बाहर से देखने पर सुखी परिवार हैं। लेकिन अन्दर जाके देखने पर ही पता चलता है कि कितना संत्रास और घुटन भरा जीवन वे बिता रहे हैं। समाज में अपना ऊँचा ओहदा बनाये रखने के लिए कुछ भी करने को वे लोग तैयार हो जाते हैं। अपने परिवार की बातों को अपने ही अन्दर दबाकर बाहर हँसी के साथ पति-पत्नी व्यवहार करते हैं। पारुल और जयंत का परिवार इसका मिसाल है।

अपने खोखलेपन को छिपाने की कोशिश सब लोग करते हैं। अपने अन्दर की दबी सकुची मानसिकता के काराण मुँह दिखाने के लिए कुछ लोग तैयार नहीं होते तो यथार्थ की पहचान की डर से कुछ लोग मुखौटे का धारण कर लेते हैं। यह महानगर की अपनी विशेषता है। यहाँ व्यक्ति व्यक्ति को पहचान नहीं पाता। व्यक्ति का यथार्थ अन्दर ही अन्दर रह जाने के कारण एक दूसरे से मिलने-जुलने को भी वे तैयार नहीं होते। इसीलिए सामाजिक संबन्ध भी असंभव बन जाता है। अपने स्वार्थ

---

47. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता, पृ.65

लाभ के लिए दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करनेवाली महानगरीय संतान अगले पल किसी को भी मारने के लिए तैयार हो जाती है। किसी भी प्रकार का संबन्ध इसके लिए बाधक तत्व नहीं।

मृत्यु का एहसास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीयों के जीवन में कोई कारगर परिवर्तन नहीं हुआ। व्यवस्था में कोई फरक दिखाई नहीं दी। राजनीतिक, सामाजिक,नैतिक व्यवस्था की निरर्थकता लोगों ने महसूस की। महानगरों की बढती भीड में मनुष्य ने अपने को अकेला पाया। इस अकेलेपन और संत्रास के बोझ में उनके जीवन की व्यर्थता को ही देखा। ज़िन्दगी में कुछ भी न बन पाने की भीषण स्थिति ने उसे कायर बना दिया। "मनुष्य की सारी कोशिशों की परिणति अंतत: मृत्यु में समाहित है।"[48] मन में इस बोध के पनपने के साथ जीवन को समाप्त करने का विचार भी बल पकडने लगा। लोगों को सब कहीं अंधेरा ही अंधेरा नजर आने लगा।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों के पात्रों में भी मृत्यु बोध देख सकते हैं। 'अंधेरे से परे' के गुलशन की त्रासदी को व्यक्त करने केलिए यह काफी है, "एकटक अपने कमरे की चारों दीवारें देखता हूँ. आठ बाई दस का फैलाव,पीछे खुलनेवाली काली सलाखों की खिडकी एक बिस्तर, एक मेज, एक आलमारी बाईं दीवार में बनी आलमारी में किताबों की कतारें और गंध बोझिल अतीत की गंध।

---

48. "At the end of all that, despite everything is death" – Albert Camus, The myth of Sysyphus, p.83

दुष्कर वर्तमान की गंध। सूनापन वीरानी चौबीस सालों के अनचाहे, असह्य बोझ की बू . ।"[49] युवा लोगों के मन की पीडा और निरर्थकताबोध उन्हें आत्महत्या की ओर ले जाते हैं। गुलशन को मृत्यु का एहसास तब हुआ जब उसने उनींदी रातों में करवटें बदलते हुए अपनी रोटी को लेकर घरवालों की मन:स्थिति की याद की। तब वह यह निर्णय लेने के लिए मजबूर हो जाता है, "तुम्हारे लिए कुछ भी बदलनेवाला नहीं है। बस, इसीतरह सुबह से शाम करते जाना।"[50] इसी आवेग में आकर गुलशन आत्महत्या की कोशिश करता है। शांत मन से वह सब कुछ करता है, "मेज़ पर टटोला। पर्स। दराज खोली। बहुत हल्की आहट-काठ घिसने की। कई स्ट्रिप थीं। टटोली। एक बाहर निकाली। धुंधली रोशनी में देखी ठीक।

दराज बंद थी। फिर बहुत हल्की किर्र-किर्र।

बाहर निकला। किवाड भेड दिया।

कमरा। लैंप जलाया।

मन बिलकुल शांत था निरुद्विग्न।

कागज़ फाडा। एक गोली निकाली। सफेद। मुंह में रखी। एक घूंट पानी।

---

49. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.3
50. वही, पृ.47

'मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं । इस मृत्यु के लिए मैं खुद ज़िम्मेदार हूँ।' गुलशन

एक निगाह कागज़ देखा। पेपरवेट के नीचे दबा दिया।

सरसरी नज़र कमरे में डाली .. . युसुफे-ज़िंदा . . .

स्ट्रिप फाडी। गोलियाँ मेज़ पर . विरक्ती मन में जागी

जल्दी करो यार, खत्म करो ।

एक गोली, एक घूंट . एक गोली, एक घूंट . एक गोली, एक घूंट।"[51]

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार की महत्वाकांक्षी कन्या है। अपने नीरस जीवन को आस्था देनेवाली अध्यापिका दिव्या के कॉलेज से जाने की खबर ने उसमें अकेलापन और वीरानगी का बोध जगाया। वह अपनी आशा को त्याग कर माया-बंधनों से मुक्ति पाने के लिए तैयार हो जाती है, "रात के आठेक बजे जब वर्षा ने अपने कमरे में धतूरे के बीज खाये, तो वह बिलकुल शांत थी। संसार-त्याग का निर्णय ले लेने के बाद के इन आठ घंटों में उसने अपने को माया-मोह के बंधनों से आजाद कर लिया था। उसे इस बात का भी दु:ख नहीं था कि अभी तक कोई ऐसा समारोह नहीं हुआ, जिसमें वह 'वर्षा वशिष्ठ की असली पसंद' वाली कांजीवरम साडी पहन सके (जिसे उसने मृत्यु-दंड पाये अपराधी की अंतिम इच्छा के समान एक नोट के

---

51. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.47-48

साथ दिव्या के लिए छोड़ दिया था)। "यह दुनिया मेरे योग्य नहीं।" उसने फुसफुसाकर अपने आप से कहा।"[52] लेकिन इससे वह बच गयी। और आगे चलकर उसके नाटक में काम करने के कारण घरवाले बहुत सताने लगे। वह एक बार और आत्महनन की ओर आकृष्ट हो जाती है। छत की मुंडेर पर हाथ रख वह नीचे देखती रही क्या अंतिम घडी आ गयी है? वह रीते आँचल की कचोट के साथ विदा ले ले?"[53] लेकिन उसमें आशा की किरणें जाग गयीं और वह अपना प्लान छोड़ देती है।

कलाकारों की ज़िन्दगी भी भाग्य के आधार पर चलनेवाली है। बहुत कुछ पढ़ने के बाद भी कुछ न बन पाने की स्थिति उसे आतंकित करती है। अपने को बेकार समझ कर वह कुछ न कुछ तो कर ही जाते हैं। जीवन से सरोकार नष्ट हो जाने पर भविष्य की चिंता उन्हें खलती रहती हैं। कल को भी अनिश्चय में पाकर वे आत्महत्या कर लेते हैं। "अंधेर नगरी' के सेट पर फाँसी के फंदे से लटका मधुकर जुत्शी का शव पाया गया था।"[54] चतुर्भुज की टिप्पणी सही थी "संजीदा रंगकर्मी के सामने आत्महत्या के अलावा और कोई विकल्प नहीं?"[55]

जीवन से प्रेम नष्ट हो जाने पर या फिर जिसे अपना समझ रखा था उसका पराया हो जाने पर जीवन को निरर्थक समझनेवाले भी कम नहीं है। वर्षा के प्रथम फिल्म का निर्देशक सिद्धार्थ वर्षा से प्रेम करता था। उसको लगा कि वर्षा भी उससे प्रेम करती है।

---

52. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.58
53. वही, पृ.79
54. वही, पृ.185
55. वही, पृ.185

वर्षा और हर्ष के बीच का संबन्ध समझने पर सिद्धार्थ अपने को काबू में नहीं रख पाया, "उसने नींद की गोलियों का ओवरडोज़ ले लिया था।"[56] बाद में वर्षा को पता चला, "वर्षा की यह धारणा सही निकली कि वह सिद्धार्थ की पहली संजीदा प्रेमिका है। वह बहुत आहत हो गया था। मलाड (पूर्व) के नये खरीदे अपने छोटे से फ्लौट में घुटता रहता है।"[57]

हर्ष तो नाट्यविद्यालय का सर्वश्रेष्ठ अभिनेता था। उसका अहम और अपने को कामयाब कर दिखाने की ललक उसे दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कालेज से बंबई के वर्सोवा बीच तक ले जाती है। वहाँ वह ड्रग्स का ओवरडोज लेकर मृत्यु का वरण करता है। आत्महत्या के विरुद्ध खडे होकर सुरेन्द्र वर्मा वर्षा के जरिए अपना मत यों व्यक्त करते हैं, "जगत-विसर्जन कोई समाधान नहीं" "यह दुर्बलेां और कायरों की अपनी बौनी क्षमता को पहचानने की स्वीकृति है। सच्चे और महान वे हैं, जो अपनी असफलता की कचोट के साथ जिंदा रहते हैं। अपने निकृष्टतम रूप में भी जिंदगी मौत के सर्वश्रेष्ठ ढंग से बेहतर है।"

"आत्महंता को पता नहीं होता कि अपने निकटतम लोगों को वह कैसे सर्वग्रासी दुख के शिकंजे में कसा छोड रहा है। अपनी टुच्ची खुदगर्ज़ी में वह सिर्फ अपने दर्द में डूबा रह जाता है कुत्ते की तरह अपने घाव को चाटता हुआ।"

---

56. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.432
57. वही, पृ.441

"आत्महत्या इतनी जघन्य नहीं है।" दिव्या बोली। "यह एक काले क्षण में आदमी के कमजोर पड जाने का नतीजा है।"

कला-मार्ग पर काले पल बराबर आते रहते हैं। इस तरह तो ज़िंदगी को कोई अवसर मिलेगा ही नहीं।"[58] इसप्रकार युवा पीढी में उभरी आत्महत्या की चिंता को अनावश्यक साबित करने का कार्य किया गया है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में पारुल एक बार आत्महत्या करने की कोशिश करती है, "ससुराल छोड़कर मैं मैके चली गई थी। दस महीने बाद पिता के दबाव डालने पर फिर वापस आना पडा। पिछले महीने मैंने नींद की गोलियों का ओवरडोज़ ले लिया था। पर मेरा नसीब ही खोटा है। बच गई।"[59]

हर व्यक्ति के मन में काले क्षण के वरण की इच्छा होती है। जो उसके परे जाते हैं वही ज़िन्दगी में कुछ बन पाते हैं। अपने पर भरोसा रखकर आस्था सहित आगे बढना है। संत्रासपूर्ण ज़िन्दगी के प्रति उबाऊ भाव ही मृत्यु को ढूँढकर निकलने को विवश कर देता है। इससे मुक्ति पाने वाले ही कुछ कर दिखा सकते हैं। महानगरीय ज़िन्दगी में यह कालेक्षण बराबर आते ही रहते हैं। युवा-पीढी को इससे मुक्त होना ही है।

---

58. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.549
59. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.121

परिवार का बदलता स्वरूप

प्यार की नींव पर खडा हुआ घर है परिवार। समझौता उसका मूल तत्व है। धार्मिक मूल्यों को स्थान देकर अपनी-अपनी सीमा खुद पहचान कर खुशी के साथ परिवार को बढ़ावा देनी चाहिए। एक दूसरे के प्रति लगाव तथा समझने-समझाने की शक्ति पर स्थित परिवार ही खुशी दिला सकता है। धन कमाने की इच्छा और नौकरी की तलाश ने मनुष्य को महानगर पहुँचाया था। वहाँ जीने के लिए कभी अपनी खुशी को त्यागना पडता है कभी प्यार को। धीरे-धीरे व्यक्ति स्वार्थी बन जाता है। पहले तो परिवार थके मन का सहारा था। आज के यांत्रिक जीवन में वह कुछ पल के लिए थकावट उतारने का साधारण कमरा रह गया है। परिवार के मुख्य माँ-बाप माने जाते थे और बच्चे उनका अनुसरण करने वाले। लेकिन अब स्थिति बदल गई है। जिसके पास पैसा है वही मालिक बनता है। रिश्ते में बहुत अन्तर आ गया है। पति-पत्नी के बीच प्यार नहीं है। दोनों अपनी इच्छा के अनुसार विचरण कर सकते हैं। उनके बीच एक ही बाधा है बच्चा। उन्हें पालने का दायित्व एक दूसरे पर आरोपित कर वे अपनी जिन्दगी आराम से जीना चाहते हैं। मध्यवर्गीय परिवार अब भी रूढ़िग्रस्त मानसिकता का शिकार है। नयापन चाहने पर भी वे लोग अपनाते नहीं । हमेशा मन में एक ही सन्देह है लोग क्या सोचेंगे?' माँ-बाप के बीच की स्पर्धा देखकर बच्चे बडे होते हैं। अपने बारे में ही सोचने के कारण वे यह बात भूल जाते हैं कि बच्चे की परवरिश इस झगडालू वातावरण में होने पर उनकी मानसिकता बदल सकती है। कभी तो ऐसे बच्चे गुम-सुम सा अकेलेपन के तनाव में संत्रास और घुटन के साथ चार दीवारी के अन्दर रह जाएँगे या फिर विद्रोही बन जाएँगे ।

बढ़ती भीड़ की व्यस्तता और धन कमाने की इच्छा उन्हें एक ही परिवार में अजनबी होकर रहने के लिए विवश बना देती है। सुबह होते ही अपने-अपने कर्मक्षेत्र की ओर सब निकल पडते हैं। परिवार का विघटन तब पूर्ण हो जाता है जब वहाँ परपुरुष या परनारी का प्रवेश होता है।

'अंधेरे से परे' उपन्यास में गुलशन का घर टूटा हुआ है। वहाँ उसकी बहन उसके पति, माँ और बहन का एक बच्चा सोमू है। लेकिन सभी को एक साथ देखना बहुत मुश्किल है। मम्मी-पपा के व्यवहार के कारण सोमू बहुत दु:खी है। स्कूल से आने के बाद भी वह घर में अकेला ही है, "सोमू दरवाज़े पर दिखाई दिया, 'घर में कोई नहीं?' स्वर में हल्की निराश, जैसे कोई वादा पूरा न किया हो।"[60]

गुलशन की परवरिश भी ठीक सोम की तरह ही हुई थी। उसकी समस्या को जानने पहचानने या समाधान ढूँढ निकालने केलिए कोई नहीं था। सब लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त थे। अत: वह अपने को अंधेरे में बंद करके यंत्रणा सह रहा था, "कल तुम्हारे स्कूल से एक चिट्ठी और तुम्हारी यह कापी आई थी।' 'इसमें तुम्हारा असाइमेंट है, जिसमें तुमने कुछ इस तरह के विचार प्रकट किए हैं कि अंधेरे का एक रंग और खुशबू होती है। उन्हें हर एक देख और महसूस नहीं कर सकता। जिसे बहुत गहराई तक ऐसा अनुभव है, उसी में यह योग्यता हो सकती है। यह सब क्या है? क्या यह किसी सेहतमंद दीमाग की उपज है?"[61] माँ के पूछने पर उसका एक ही जवाब था

---

60. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.14-15
61. वही, पृ.33

कि उसको कुछ पता नहीं। यह एक उत्तम उदाहरण है कि पारिवारिक विघटन बच्चे के कैसे अकेलेपन की जंजीरों में जकड लेता हैं।

पति को नौकरी से सस्पेंड करने के बाद बिंदो और जित्तन के बीच तनाव शुरू होता है। आगे चलकर वह रिश्ता टूट जाता है। बिंदो परपुरुष के साथ घूमने निकल जाती थी। वह जित्तन की परवाह भी नहीं करती थी। बाद में पारिवारिक जीवन का वह दरार वे लोग महसूस भी करने लगे। बिंदो कहती है,"इतना समझ में आता है कि इस आदमी से अब नहीं निभ सकती।' बिंदो ने रबड़-बैंड़ खोला और बाल ठीक करने लगी, कभी-कभी इस बच्चे पर इतना गुस्सा आता है कि . ' निचला होंठ दांतों तले दबाया, 'इतना लगाव मैं इसके साथ रखती हूँ , लेकिन "[62] एक माँ होते हुए भी ममता के बजाय बिंदो के मन में उस बच्चे के प्रति घृणा है।

माँ-बाप के एक दूसरे पर आरोप लगाते देख सोमू के मन में आशंका छा जाती है। वह पहले ही देख चुका था कि मम्मी-पापा के झगडे के बाद पापा घर से निकल जाते हैं। दिन-ब-दिन बदलते आ रहे इस प्रकार के झगडे को लेकर बच्चे के मन में परिवार का संकल्प भी मिट जाएगा। बिंदो के कुछ कहने पर जित्तन खाने की टेबुल से बिना खाये निकल जाते हैं। "सोमू कुछ क्षण नासमझी के भाव से उस दिशा में देखता रहा, जहाँ जित्तन गए थे। फिर बिंदो की तरफ देखा। उसकी आँखों में आहत भाव था, बाल सुलभ नहीं। उनमें पीडा के दंश की छाया थी अपनी उम्र से कहीं आगे की। चेहरे का भाव आँखों के भाव से तालमेल बैठाने का प्रयत्न करता- सा जान

---

62. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.70

पडता था। और यह बोझिल कोशिश चेहरे की रेखाओं से प्रकट हो रही थी। उस पल मुझे लगा कि सोमू बडा हो गया है। ऐसी स्थितियाँ उसे जल्दी बडा बना रही हैं। और जब वह बडा होगा और इन सब घडियों को याद करेगा,तो बिंदो को कभी माफ नहीं कर पाएगा।''[63]

मधु अपने पति के सामने प्रेमी के साथ घूमती है। इससे अनजान पति प्रेमी से अच्छा व्यवहार करते हैं। परपुरुष संबन्ध को बनाये रखके वह पारिवारिक जीवन सहज रूप से निभा रही है। परिवार का बदलता यह रूप महानगर के करोडों परिवारों में संभव्य है।

बिंदो जित्तन के घर में होते हुए भी प्रेमी के साथ घर आती है और घर के सामने ही उससे मधुर भाषण करती है। यहाँ परिवार का कोई महत्व नहीं है। भारतीय परिवार की परिभाषा यहाँ बदल जाती है, ''एक कार गेट पर रुकी इंजिन बंद हो गया। क्षण भर बाद बिंदो की खिलखिलाहट फिर एक पुरुष-स्वर। फिर बिंदो की हँसी। खंभे और बाड की ओर थी, इसलिए दिखाई कुछ नहीं दिया। दृश्य से अंतरंगता ज़रूर छनकर बहीं। बिंदो की प्रफुल्लित 'गुडनाइट' इंजन की आवाज के साथ कुंडे की आहट। दो पलों बाद बिंदो प्रकट हुई। हाथ उल्टा कंधे तक और पर्स पीठ पर झूलता हुआ। होठों पर गुनगुनाहट''[64] जित्तन के पूछने पर वह बता देती है 'मेरी सबसे नजदीकी दोस्त' है और 'होटल डिप्लामैट के बार' से आ रही है। दोनों के बीच खडी लंबी दीवार इससे स्पष्ट हो जाती है। परिवार से जित्तन दूर चला जाता है। पापा के लिए सोमू रोता है तो

---

63. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.78
64. वही, पृ.146

बिंदो कहती है, "अगर रोना उसकी किस्मत में ही लिखा है, तो क्या कर सकता है कोई?"[65]

'मुझे चाँद चाहिए' में कलाकार जीवन का चित्रण अधिक हुआ है। उनकी ज़िन्दगी का वास्तविक चित्रण इसमें देख सकते हैं। गाँव से आनेवाले चतुर्भुज की शादी पहले ही सुशीला के साथ हो चुकी थी। दिल्ली आने के बाद महानगरीय परिवेश में पलने के कारण चतुर्भुज को लगा कि सुशीला उसके योग्य नहीं है, "सोलह की उम्र में मेरी शादी हो गयी थी।" स्नेह के कमरे में चतुर्भुज बोले, "सुशीला मुझसे दो साल छोटी है। दिल्ली आने के बाद मेरी विचारधारा, मेरा व्यक्तित्व सब बदल गया है। सुशीला मेरी भावात्मक ज़रूरत पूरी नहीं कर सकती। मुझे उसके लिए अफसोस है, लेकिन मैं विवश हूँ।"[66] महानगर व्यक्ति को इस तरह बदल देता है कि कोई कभी सोचेगा भी नहीं कि ऐसा भी हो सकता है। महानगर में परिवार का मतलब होता है, जिसके साथ खुशी से रह सकते हैं उसी को लेकर जिंदगी बसाना। जिसे चाहे स्वीकार कर सकते है, जो चाहे कर सकते है। परिवार नाम भी यहाँ नहीं है। कुछ साल के उपरांत चतुर्भुज रंभा को लेकर नया परिवार बना लेते हैं। और उधर से भी निकल कर अंत में अपना सच्चा परिवार याने सुशीला को स्वीकार करते हैं। यहाँ सब कुछ खरीदा जा सकता है माँ, बाप, भाई, बहन, पत्नी, बच्चा सब इसलिए परिवार का कोई खास महत्व नहीं रह गया है।

---

65. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से पर, पृ.153
66. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.225

अनुपमा के साथ का संबन्ध टूटने पर चतुर्भुज अनुपमा के खिलाफ सभी से बातें करते हैं। अनुपमा के विरोध में वर्षा से बात हुई थी, "क्योंकि मेरे साथ अन्याय हुआ है। मेरा पुराना घर भी टूट गया है। और मेरा नया घर भी।"

"क्षमा करें इसकी जिम्मेदारी आप पर कम नहीं। आप अनुपमा से ज्यादा समझदार हैं। आप जानते थे कि वह स्वभाव से अस्थिर है। पर तब आप मॉडर्न बीवी पाने की तरंग में थे। दरअसल अन्याय सुशीला के साथ हुआ है।"

"सुशीला मेरी बौद्धिक और भावात्मक जरूरत पूरी नहीं कर सकती थी।"

"यह आपको आठ साल बाद पता चला? और अगर अनुपमा सीन पर न आती तो? आप वैसे ही सुशीला के साथ गृहस्थी-रथ का एक पहिया बने रहते न?"[67]

परिवार के पहिए के टूटने से पहले उसको स्थिर रखना चाहनेवाले भी उपन्यास में है। दिव्या पहले प्रशान्त से प्यार करती थी। लेकिन प्रशान्त किसी दूसरी के साथ शादी कर लेता है तो वह पूर्णत: टूट जाती है। फिर भी माँ के लिए वह रोहन से शादी करती है, जो उसे बहुत प्यार देते हैं। पूर्णतया रोहन को प्यार करना दिव्या के बस की बात नहीं थी। फिर भी परिवार की इज्ज़त को मन में रखकर वह रोहन के साथ जी रही है।

'दो मुर्दों के लिए गलुदस्ता' में पारुल सोमपुरिया सेठ की बेटी है जो बहुत बडे व्यवसायी हैं। पारुल का पति जयंत है। दोनों को विवाह सोमपुरिया सेठ की जिद्द से

---

67. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.362

हुआ था। जयंत तो काम में व्यस्त था। पारुल से भी ज़्यादा वह काम को पसन्द करता था। पारुल का नील के साथ का संबन्ध जयंत ने जान लिया था और परिवार की इज्ज़त की रक्षा के लिए वह उसके खिलाफ कुछ करने से हिचकता है। उसे मालूम था कि कुछ कहने पर परिवार टूट जाएगा। इसलिए वह नील को बुलाकर कहता है, "मेरा तुमसे एक ही आग्रह है। उसने डिस्क्रीट होने के लिए कहा। टाउन में तुम्हें बगल में बैठाए घूमना, होटलों में हमारे बगल में तुम्हारे लिए कमरा बुक करवाना, ज्यादा घंटों के लिए ऑफिस या घर से गायब हो जाना ये बातें गलत हैं। यह मैट्रोपोलिस हमारे जैसे लोगों के लिए गाँव की तरह है। उसे समझाओं कि सी-ब्रीज या नेबुला में घुसे रहना ज्यादा सुरक्षित है।"[68] ऐसे पति महानगर की संतान है और महानगर में ही देख सकते हैं। परिवार के टूटने पर सामाजिक प्रतिष्ठा धुंधली रह जाएगी। यह कोई नहीं चाहता। नये-नये शिखर आज़माने के लिए पैसे के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा की जरूरत भी चाहिए।

महानगर में जहाँ भी देखो ऐसे नमूने देख सकते हैं। परिवार के बनने-बिगडने में स्त्री और पुरुष दोनों जिम्मेदार हैं। उन्हें अपने बच्चे के बारे में सोचना है। अपनी जिन्द गी के अंतिम छोर पर बच्चे भी वहाँ खडे हो जाएँगे जहाँ सालों पहले माँ-बाप खडे थे। परिवार को लेकर नयी पीढ़ी के मन में क्या कल्पना उपजती है, इसके विस्तृत रूप के बारे में विचार करना है। एक ही शहर में एक ही घर के अन्दर अलग-अलग विचारों के साथ जीनेवाले अपने परिवार के बारे में नहीं सोचते। नन्हे-नन्हे पौधों में अच्छे खुशबूदार फूल के खिलने में जिस तरह पानी और खाद सहायक होते हैं, उसी प्रकार माता-पिता के

---

68. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.164

व्यवहार बच्चों पर असर अवश्य डालते हैं। जहाँ भी जिएँ परिवार को उसकी अर्थव्याप्ति तक ले चलना है। बदलते पारिवारिक सम्बन्धों को सही रास्ता दिखाकर आगे ले चलना है। काल के अनुसार बदलना तो है लेकिन अच्छे अंशों को स्वीकार करके समाज में परिवार की प्रतिष्ठा को बनाये रखना चाहिए।

स्त्री-पुरुष संबन्धों के बदलते आयाम

स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्त्री को अधिक स्वतंत्रता मिली है। पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर वह समाज के सामने आ गयी है। सभी क्षेत्र में पुरुष के बराबर का स्थान उसे भी मिलने लगा। स्त्री और पुरुष दोनों स्वत्वबोध के तहत अपनी-अपनी अस्मिता तलाशने लगे हैं। बदली हुई मानसिकता ने नये-नये विचारों को जन्म दिया और दोनों ने परम्परागत रूढियों पर प्रश्नचिह्न डालना भी शुरू किया। अपने हक की मांग करते वक्त कभी संबन्धों में तनाव आ जाता है। लेकिन इसकी ओर ज्यादा ध्यान न देकर अपनी-अपनी अस्मिता की तलाश में वे आगे बढते रहते हैं।

स्त्री-पुरुष संबन्धों की नयी-नयी परिभाषाएँ भी उजागर होने लगी हैं। स्त्री पुरुष के साथ रस्तराँ, बार जैसी जगहों पर जाने के लिए तैयार हो गयी है और पुरुष मित्र के साथ रात देर तक बातें करके बैठने में उसे कोई संकोच भी महसूस नहीं होता। विवाह संबन्धी परंपरागत मान्यताओं में भी बदलाव आ गया। विवाहहीन दांपत्य, अन्तर्जातीय विवाह और विवाहोपरांत परनारी-परपुरुष के साथ प्रेम संबन्ध ऐसी कई धारणाएँ भी जनम लेने लगी हैं।

मध्यवर्गीय लोगों की अपनी एक दुनिया होती है। उससे बाहर आने का प्रयत्न सभी करते हैं लेकिन अधिकतर लोग असफल हो जाते हैं। समाज द्वारा बनायी गयी रूढ़ियों के बन्धन से जब वे बाहर आ जाते हैं तो यह नयी उमंग उनसे बहुत कुछ करवाती है। तब बंधन तोडे जाते हैं और नये परिवेश में नये संबन्धों को बनाते रहते हैं। पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण और नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण सहज है। संबन्धों का अर्थ तब बदल जाता है जब विवाहित पुरुष परस्त्री पर या विवाहित नारी परपुरुष पर आकृष्ट हो जाते हैं। स्त्री का पुरुष के साथ मिलना और सारी बातों का विमर्श सब महानगरीय परिवेश की उपज है।

पति के सामने खुल्लमखुल्ला बात करने उसकी करनी पर विरोध प्रकट करना आदि नारी के हक बन गए हैं। 'अंधेरे से परे' के जित्तन को नौकरी से सस्पैंड किया गया था। लेकिन वह दूसरी नौकरी की तलाश नहीं करता। इस पर बिंदो असहमत थी। वह कहती है, "सस्पेंड हुए पूरा साल होने को आ रहा है। जो थोडा सा बचाया था, खा-पीकर बराबर कर चुके हैं, अपना नहीं, मेरा नहीं कम से कम बच्चे की तो सोचो।"[69]

पति और पत्नी एक दुसरे पर आरोप लगाते हुए अपने संबन्धों में विद्रोह के नए आयाम रच डालते हैं। महानगर के पति-पत्नी की ज़िन्दगी समझौते के साथ-साथ पैसे के बल पर ही स्थित है। जित्तन के बेकार रहने पर बिंदो अपनी ज़िन्दगी के व्यर्थ होने के बारे में सोचती है। दूसरों के मुँह से यह सब सुनना भी कोई नहीं चाहता।

---

69. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.13

इसलिए मुकुंद के घर से निकलने पर मम्मी उसे ढूँढने की कोशिश करती है और कहती है, "अच्छा नहीं लगता। फिजूल चार लोग सुनेंगे और बात बनाएँगे।"[70]

गुलशन की मित्रता मधु के साथ शुरू हुई और विवाहित मधु अपने पति और प्रेमी दोनों को एक साथ खुश देखना चाहती है। एक बार मधु के घर की एक पार्टी में गुलशन को बुला लेती है और पति रोहन से मिला देती है। "हैलो' . . उसने तपाक से हाथ मिलाया।

उसके लगभग पीछे ही सुनहरे फ्रेम का चश्मा लगाए एक पुरुष था।

'मेरे पति रोहित और उनसे कहा,

'गुलशन गे एडवरटाइजिंग से ।'

'सो नइस टु मीट यू. उन्होंने गर्मजोशी से हाथ दबाया मधु ने आपका जिक्र किया था।"[71]

बच्चे को दिखाने की चेष्टा में मधु गुलशन को अपने बेडरूम तक ले जाती है। जिस पलंग पर मधु के साथ उसके पति ने नैतिक रूप से काम व्यवहार किया था, उसी पलंग पर अवैध ढंग से गुलशन काम व्यवहार करता है। लेकिन संबन्धों के बारे में दोनों आशंकित थे। गुलशन ऐसी एक मानसिकता तक पहूँच गया था कि मधु के बिना

---

70. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.16
71. वही, पृ.80

वह जी नहीं सकता था। इसलिए एक बार वह पूछ ही लेता हैं, "मैं कुछ दिनों से तुमसे कुछ बात करना चाह रहा था।'

मधु ने कहा कुछ नहीं। वैसे ही देखती रही।

'हम दोनों के बारे में।'

मधु यकायक अव्यवस्थित हो उठी।

'अपने संबन्धों को लेकर हमें अब कुछ फैसला कर लेना चाहिए। जहाँ तक मेरी बात है, मैं बिलकुल निश्चित हूँ कि तुम्हारे बिना अब ।"[72] जवाब में मधु ने कुछ कहा नहीं लेकिन वह विचलित थी।

नलिनी में ऐसी हिम्मत थी कि प्रेमी से गर्भवति होने की बात वह गुलशन से कह देती है। और यह सब होने के बाद भी वह अपने को अपराधी भी नहीं मानती। "नलिनी ने सिर घुमाकर मेरी ओर देखा, 'अभी चलकर कॉफी पिएंगे।'

हामी में सिर हिलाया।

'ऐसे क्यों देख रहे हो मेरी तरफ ?'

'तुम्हारे बात करने का ढंग कुछ बदल गया है।'

---

72. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.143-144

पल भर ठहर कर बोली, 'मैं अपराधी महसूस नहीं कर रही हूँ।''[73]

नलिनी ने भी यह सोच लिया था कि अब वह प्रेमी से मदद नही चाहेगी, "मैंने इत्तिला की थी, तो दूसरी ओर से कुछ अजीब सी प्रतिक्रिया हुई। जैसे कि मैं खेल के कायदे नहीं जानती, और कि आदमी को बाद के नतीजों के लिए जिम्मेदार या साझेदार मानना दकियानूसी बात है। 'फिर अहसान-सा जतलाते हुए कहा गया कि ठीक जगह का पता करके बताऊँगा। शनिवार तक बताने की बात थी।' चेहरे पर सख्ती आ गई, 'अब मैं उससे कई मदद नहीं चाहती।''[74] यह संबन्ध कभी बन जाता है तो कभी बिगड भी जाता है। अपनी सुविधा के अनुसार संबन्ध को बना लेने में परिवेश सफल हो गया है।

जित्तन की नौकरी के लिए दूर चले जाने पर बिंदो को दु:ख नहीं हुआ। जित्तन के जाने के तुरंत बाद वह बॉय फ्रेंड के साथ घूमने निकल गयी। मम्मी भी अपने काम में व्यस्त थी। बस सोमू ही एक था जो अकेला रह गया। महानगर का विकल रूप यहाँ दृष्टव्य है।

प्रेम तो व्यक्ति का अधिकार है। वह किसी से भी प्रेम कर सकता है। 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा ने तो मिट्टू से प्यार किया था। मिट्टू के साथ उसका पहला चुंबन संपन्न हुआ। वर्षा कलाकार बनना चाहती थी और मिट्टू विवाहित। दोनों के बीच दूरी आ गयी और नाट्यविद्यालय में हर्ष से मुलाकात हुई। सबसे श्रेष्ठ अभिनेता हर्ष के

---

73. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.165
74. वही, पृ.165

साथ उसका प्यार मानसिक और शारीरिक तौर पर हुआ। फिल्म के सिलसिले में हर्ष के बंबई जाने के बाद वर्षा को भी एक फिल्म का प्रस्ताव मिला था। उसके निर्देशक सिद्धार्थ को वह पसन्द करती थी। और रेगिस्तान में शूटिंग करते वक्त उसका संबन्ध चुंबन तक पहूँच जाता है। बाद में सिद्धार्थ को पता चला कि हर्ष के साथ वर्षा का संबन्ध वास्तविक है। वर्षा और इन तीनों के बीच का संबन्ध पहले एक तरह ही था। अंत में वह हर्ष के साथ ज़्यादा जुड जाती है। सिद्धार्थ और हर्ष के साथ के संबन्धों का अंतर इससे स्पष्ट है, "वे खुली खिडकी के सामने खडे थे। तिरछी बौछार के छींटे भीतर आ रहे थे। हर्ष उसे बाँहों में घेरा था। एक हाथ में उसका हाथ थामे। हर्ष की कलाई जहाँ थी, उसके ठीक नीचे वर्षा का दायाँ नग्न उरोज था। मैं तब से सिर्फ बाथरोब पहने हूँ, वर्षा को कौतुक से भान हुआ। (अगर छेद से झाँकने पर वह हर्ष की जगह सिद्धार्थ को देखती तो दरवाजा खोलने से पहले गउन पहन लेती। भीतर की हल्की मुस्कान के साथ सोचा तो मेरे इन दो रिश्तों में ऐसा अंतर है!)"[75]

दोनों प्रेमियों को एक साथ अपने घर में मिलन का अवसर वर्षा को मिलता है, "हर्ष को भीतर आते देखकर वर्षा ने मुस्कान तो दे दी थी, पर पल भर के लिए तीखी दुविधा से ग्रस्त भी हो गयी थी। ("एक ही शहर में तुम्हारे दो प्रेमी होंगे।" दिव्या की बात याद आयी थी, "यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है।" मुझे इस स्थिति का संजीदगी से विश्लेषण करना चाहिए, उसने सोचा। दुष्यंत, अग्निमित्र और विक्रम सबकी पत्नियाँ थीं और साथ-ही-साथ कम-से-कम एक-एक अदद प्रेमिका।

---

75. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.355

पर 'कीर्तिमान-निर्माण के क्षेत्र में सिलबिल की अद्भुत क्षमता' (सौजन्य दद्दा !) के बावजूत उसने भावनाओं के बँटवारे का तनाव महसूस किया)।"[76]

हर्ष वर्षा के घर में कभी-कभी रहता था। एक दिन बेसुध होकर आने पर वर्षा ने प्रश्न किया तो "प्रश्न पूछकर वर्षा को संकोच हुआ और लगा कि सुनकर हर्ष को। सूर्यभान से लडने पर वर्षा हर्ष को आडे हाथों ले सकती थी, व्यावसायिक फिल्म में छोटी भूमिका स्वीकार न करने पर उसे लताड सकती थी, पर यह बिलकुल निजी क्षेत्र में घुसना था। हर्ष पुरुष और व्यक्ति-दोनों रूपों में मेरा सरोकार है, वर्षा ने सोचा। हमारे बीच कुछ भी निजी और व्यक्तिगत नहीं (स्त्री-पुरुष के संबन्ध का यह नया आयाम उसे किसी चमत्कार से कम नहीं लगा।)"[77]

शादी करना और थोड़ी देर बाद उसे तोडना महानगर का अभिशाप है। स्त्री-परुष संबन्ध की पवित्रता है शादी। लेकिन आजकल उसको कोई मानता नहीं है। वह जब जी चाहे तोड़ सकने की स्थिति में है। चतुर्भुज अपनी पत्नी सुशीला को छोडकर अनुपमा के साथ शादी करता है। चतुर्भुज का कहना था कि सुशीला गँवारी है। महानगर की पेश-कश के अनुरूप व्यवहार करना उसको आता नहीं। अनुपमा की शादी भी टूट गयी। अनुपमा कहती है, "मैंने सोचा था, यह शादी चलेगी"[78] अनुपमा की समस्या यह थी कि जो उसने चतुर्भुज के बारे में सोचा ठीक विपरीत निकला। अनुपमा जोडती हैं, "चंद दिनों बाद ही उनका सॉ

---

76. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए. पृ.371
77. वही, पृ.389
78. वही, पृ.309

न होना उनकी अर्थलैस, उनका सेव ऑफ ह्यूमर सब खलने लगा। दिन में दो घंटों के लिए मिलनेवाले एक रंगमंचीय दोस्त के रूप में नागवार गुजरने लगी।"[79] अनुपमा ने दुबारा शादी कर ली, "बधाई अनुपमा !" वर्षा ने हाथ मिलाया। मुस्कुराती अनुपमा की हाथ की पकड में उमंग का दबाव था। ऑखें खिली हुई। वर्षा के सामने पल भर के लिए अनुपमा की पुरानी छवि कौंधी-मंदिर में चतुर्भुज को माला पहनाते हुए। फिर वह आज की सादी अनुपमा में विलीन हो गयी।"[80] इतना ही है संबन्धों का महत्व।

चतुर्भुज भी रंभा के साथ नयी जिन्दगी शुरू करता है और उसका भी 'ट्राजिक एंड' हो जाता है। अंत में वह पुरानी सुशीला के पास ही लौट आता है। सुशीला उसे स्वीकार करती है। महानगर की कपटता उसमें नहीं हैं। संबन्धों के बीच का विभिन्न आयाम कम उपन्यासों में ही देख सकते हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के नील को कामकला कुमुद ने सिखाई थी। कुमुद की कामवासनाओं की पूर्ति के लिए उसने नील का उपभोग किया। कुमुद ने किसी अन्य पुरुष से शादी करने का निर्णय लिया। इस पर नील बहुत दु:खी था। कुमुद से उसने पूछना शुरू किया, "होनेवाले पति तुमसे कितने साल छोटे हैं?"

कुमुद हँसी। यह शाम की पहली हँसी थी। "मुझ से पाँच साल बडे हैं।"

"उन्हें कब से जानती हो?"

---

79. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.309
80. वही, पृ.482

"छह महीने से।"

उनके बालों में घूमती उसकी उंगलियाँ ठिठक गई। उनके साथ उसकी मैत्री की भी तो यही अवधि है।

कुछ पल मौन रहा।

क्या कुमुद ने एक साथ दो रिश्ता निभाए हैं, उसने सोचा।"[81] कुमुद का वास्तविक रूप नील ने पहचाना। कुमुद ने अपने दोनों संबन्धों के बारे में कहा, "उनके साथ के रिश्ते की प्रकृति बिलकुल दूसरी रही है।" फिर चिरपरिचित चंचल मुस्कान आ गई, "कुछ पुरुष सिर्फ प्रेमी हो सकते हैं और कुछ सिर्फ पति।" फिर पहले-जैसी संजीदगी आ गई, "उन्हें सिर्फ पत्नी की तलाश थी और मैं जानती हूँ, वे आदर्श पति साबित होंगे।" दो पल ठिठककर जोड़ा, "अब जो आशंका तुम्हारे मन में है, उसे भी जुबान पर लाकर साफ कर दूँ। कल सुहागरात में मैं पहली बार आत्मसमर्पण करूँगी। वैसे भी आदर्श पति को शादी से पहले होनेवाली जीवन संगिनी को गर्दन से नीचे नहीं छूना चाहिए।"[82]

यहाँ स्त्री-पुरुष संबन्ध कामवासना पर ही केन्द्रित है। संबन्ध को मजबूत बनानेवाला प्यार उधर नहीं है। एक पुरुष वेश्या के रूप में नील ने बहुत स्त्रियों के साथ शरीर बाँटा है। कुछ लोगों के पति हैं और कुछ विधवा है। सभी कामतृप्ति के लिए आती हैं। पारुल जानती थी कि नील के साथ का संबन्ध पति जयंत ने जान लिया था

---

81. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.88
82. वही, पृ.89

लेकिन वह चुनौती की तरह नील के पास जाती है और रहने के लिए एक फ्लैट भी देती है। परुल को मालूम नहीं था कि नील अन्य स्त्रियों के साथ भी ऐसा व्यवहार करता है।

नील नैन के साथ ब्याह करना चाहता है। नील का पेशा ऐसा था कि एक तरफ नैन से प्यार और दूसरी तरफ जिस्म का बिकाव। परेश के पूछने पर नील पारुल के बारे में कह रहा है, वो सबसे खास थी। उसके साथ थोडा इमोश्नल फ्लैवर था पर उसमें एहसानमंदी का एहसास भी जुडा हुआ था। पहला करीब पैंतीस फीसदी और दूसरा पैंसठ। पर मैं इस कांबीनेशन को प्रेम नहीं कहूँगा। वो सिर्फ नैन के लिए था। कैसे? पारुल के साथ भविष्य के ख्याल ने ही मुझे डरा दिया था, हालांकि जिन्दगी मखमली होती स्विस बैंक एकाउंट और साउथ ऑफ फ्रांस विला, प्राइवेट प्लेन और याच, कैवियार और शैम्पेन से मुलायम बनी। उस सबको छोडकर मैंने नैन के साथ बंगाली मार्किट में रहना पसंद किया, इसलिए तुम्हें मुझे चुनाव करनेवाला लालची कहना होगा, विशुद्ध और घटिया लालची नहीं।''[83] इस प्रकार स्त्री-पुरुष संबन्ध के नये-नये आयाम महानगरीय जिन्दगी की पहचान बन जाते हैं।

अपनी परंपरा को पूर्णतया तोड कर नये की खोज के लिए निकलनेवाले स्त्री-पुरुष यह जान लेने में असमर्थ है कि उन्हें क्या क्या नष्ट हुए हैं। उन्हें अपनी ही आत्मा नष्ट हो जाती है। अन्दर का व्यक्तित्व बाहर से मेल नहीं खा पाता। स्त्री-पुरुष संबन्ध के ये बदलते आयाम सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में महानगरीय परिवेश में अभिव्यक्त हुए हैं।

---

83. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.238

सुख के पीछे भागने के कारण व्यक्ति को हमेशा मुखौटा पहनना पडता है। पारिवारिक विघटन, स्त्री-पुरुष के अनैतिक संबन्ध ये सब मनुष्य के स्वार्थ लोलुपता के परिचायक हैं। महानगर में जीवन इतना ऊबाऊ, यांत्रिक एवं निरूद्देश्य बन गया है कि अवसर मनुष्य कुंठाग्रस्त जीवन बिताने केलिए विवश बन जाता है।

अजनबीपन, अकेलापन, सांस्कृतिक विघटन व्यक्ति का यथार्थ जैसी बातों के परत खोलने में सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास बहुत सहायक निकले हैं। महानगरीय ज़िन्दगी की गन्दगियों का वास्तविक वर्णन इनमें भरे पडे हैं। नइटक्लब, मदिरापान, नकाबी व्यवहार, अफीम का उपयोग, अंडर्वार्लड ये सब महानगर के अनुपेक्षणीय पहलू बन गये हैं। सेक्स और विलास-लोलुपता का चित्रण भी उनके उपन्यासों में पाया जाता है। कोई सन्देह नहीं कि समय के मर्म को पकडने, असामाजिक वृत्तियों से सजग कराने तथा हमारी अपनी संस्कृति की ओर ध्यान दिलाने में सुरेन्द्र वर्मा सक्षम निकले हैं।

पाँचवाँ अध्याय

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का संरचना पक्ष

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का संरचना पक्ष

विषय वस्तु को सुव्यवस्थित ढंग से विकसित तथा उद्घाटित करने का कार्य संरचना पक्ष करता है। कथ्य के विकास में जो सामग्रियां सहायक बनती हैं, वे सब संरचना पक्ष के अंतर्गत आते हैं। रचनाकार के मन के बूँद को लहरों से बचाकर सीपी तक पहूँचाना और मोती बना देने में सहयोग करना संरचना पक्ष का काम है। पर ध्यान देने की बात यह है कि स्वाधीनता-पूर्व के साहित्य का अध्ययन कथ्य एवं शिल्प के स्तर पर संभव था। लेकिन समकालीन साहित्य की सबसे बडी खासियत यह है कि इसमें ऐसा विश्लेषण नामुमकिन है। क्योंकि समकालीन रचना में इन दोनों का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। रचना के साथ ही उसका अलग शिल्प रूपायित होता है।

संवेदना और संरचना

संवेदना को संरचना के जरिए प्रस्तुत करने से ही साहित्यिक कृति बनती है। कृति की सफलता संवेदना और संरचना पर अधिष्ठित है, याने दोनों परस्पर पूरक हैं। जीवन की जटिलताएँ बढती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में मानव को अपने वातावरण की सही पहचान दिलानेवाली कृति ही महत्वपूर्ण बनती है। मात्र कथा की विशेषता से एक कृति सफल नहीं बन पायेगी। उसके लिए सुरुचिपूर्ण ढंग से लिखने की क्षमता भी चाहिए। साहित्य में कई प्रकार की रचनाएँ द्रष्टव्य हैं। पठनीय और स्मरणीय रचनाएँ भी पायी जाती हैं। पाठक को एक साथ भावविभोर बनानेवाली रचना में जहाँ तक संवेदना पक्ष की महत्ता है, उतना ही संरचना पक्ष का भी। लेखक द्वारा संवेदना को संरचनाबद्ध करने से ही रचना बनती है। अत: रचनाकार का सरोकार संवेदनात्मक संरचना में ही है।

उपन्यास में शिल्प

शिल्प वह तत्व है, जिसके द्वारा रचना की विशिष्टता का उद्‌घाटन होता है। लेखक विषय वस्तु को जिन-जिन तरीकों से प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं उन सबका समावेश शिल्प और शैली में होता है। विषय और शैली एक दूसरे के पूरक हैं, जिसके बिना कोई रचना सफल बन नहीं पाती। दूसरे शब्दों में कहें तो कथ्य के विशिष्ट संप्रेषण से ही रचना सार्थक बनती है।

समकालीन हिन्दी साहित्य में कथ्य की दृष्टि से ही नहीं संरचना की दृष्टि से भी क्रान्तिकारी परिवर्तन देख सकते हैं। कथ्य के साथ घुलमिलकार शिल्प आता है। साहित्य में जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न साहित्यकारों ने विभिन्न रूप अपनाये हैं, "शिल्प के स्तर पर निस्सन्देह बहुत-से लेखकों ने अपने-अपने ढंग से नये-नये प्रयोग किये हैं और अपनी भाववस्तु को अधिक से अधिक प्रभावी और चमत्कारपूर्ण ढंग से संप्रेषित करने के लिए कथा की बहुत-सी शैलीगत युक्तियाँ अपनायी है। इस दृष्टि से इधर के उपन्यासों में पर्याप्त विविधता है।"[1] समकालीन साहित्यकार सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में भी संरचना पक्ष की यह विविधता तथा नवीनता हम देख सकते हैं।

स्वाधीनता परवर्ती उपन्यासों में याने कि आधुनिकता के आगमन के उपरान्त के उपन्यासों में शिल्प वैविध्य के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। यहाँ उपन्यासकारों ने नये-नये प्रयोगों को अपनाने का साहस किया है। इसीकारण उपन्यास में विविधता भी आ गयी

---

1. नेमीचन्द्र जैन अधूरे साक्षात्कार, पृ.179

और जीवन के प्रति गहरी संसक्ति लाने में सहायक भी हुई। प्रेमचन्द ने कहा था, 'उपन्यास मानव-जीवन का चित्र मात्र है।' इस चित्र को कलात्मक ढंग से जीवन के सहज सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत करने में ये उपन्यासकार सफल निकले हैं। यह भी नहीं उस समय उपन्यास रचना में लेखक को पूर्ण स्वतंत्रता भी मिल गयी थी। हर एक उपन्यास का अपना एक अलग स्वरूप होता है और इस स्वरूप को सजाने-संवारने का कार्य संरचना पक्ष के अन्दर आता है।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में भी यही खासियत दिखाई देती है। उनके उपन्यास संकेतों से संपन्न हैं। उपन्यास अपने शीर्षकों से ही बहुत अधिक ध्वनित करते हैं। 'अंधेरे से परे' शीर्षक पूरे उपन्यास की अर्थवत्ता को संप्रेषित करनेवाला है। स्वाधीनता परवर्ती भारतीय माहौल में व्याप्त अंधेरे से लडते हुए उसके परे जाने की जिजीविषा रखनेवाले पात्रों से संपन्न उपन्यास है 'अंधेरे से परे'। महानगरीय वातावरण में छाई हुई निराशा, कुंठा, संत्रास एवं अकेलेपन को शब्दबद्ध करने की, अलग सृजनात्मक भाषा का प्रयोग इस उपन्यास की अपनी विशेषता है। पात्रों के संवादों के बीच का सूनापन व्यक्ति संबन्धों में आए हुए फासले को सूचित करनेवाला है।

'मुझे चाँद चाहिए' भी अपनी आस्था एवं सृजनात्मक लक्ष्य को द्योतित करनेवाला उपन्यास है। वर्षा वसिष्ठ को केन्द्र बनाकर लिखे गए उपन्यास में पहले गाँव की तरलता एवं सरलता के साथ रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का सूखा धरातल अनावृत होता है तो धीरे-धीरे उपन्यास वर्षा के साथ शहर पहूँचता है। फिर वहाँ के वातावरण से हमें परिचित कराता है। शहरी माहौल में कितने पात्र अपनी आस्था एवं अभिलाषा को लेकर आते हैं और उससे

टकराकर पराजित होते हैं। पराजय के बावजूद संघर्षरत वर्षा वसिष्ठ के चारित्रिक अंकन में प्रयुक्त भाषा की भूमिका निर्विवाद की है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' भी अपने समय की सांस्कृतिक जीर्णता को सूचित करता है। इसमें महानगरीय परिवेश में असामाजिक वृत्तियों के बढ़ने की ओर उपन्यासकार अपनी आशंका प्रकट करते हैं। 'फ्री सेक्स', पुरुषवेश्या जैसी असामाजिक वृत्तियों की भीषणता की ओर उपन्यासकार पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। एक-एक घटना के साथ दूसरी को जोडते हुए महानगरीय माहौल को उसकी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह उनकी सृजनात्मक क्षमता और भाषाई निपुणता का द्योतक है।

वस्तु विन्यास

समकालीन उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में वस्तुपरक नवीनता देख सकते हैं। 'अंधेरे से परे' उपन्यास की विशेषता यह है कि गुलशन तथा उसके परिवार को केन्द्र बनाकर आधुनिक ज़िन्दगी के तनाव तथा बेकारी की समस्या में उलझे मानव जीवन टूट-फूट से भरे पारिवारिक जीवन आदि को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। अपने ही घर में अकेलेपन से पीडित, निश्चित रोटी से ज़्यादा लेने में संकोच करने वाले तथा दिन काटने की बेबसी का अनुभव करनेवाले अनेक पात्र इसमें देख सकते हैं। प्रेमी से गर्भवती होने के बाद उससे तिरस्कृत नलिनी गुलशन के सहारे बच्चे को मुक्ति देती है। इस तरह नैतिकता का पतन दिखाया गया है। बेकार पति के सामने ही बिंदो का परपुरुष संबन्ध और बच्चे के घुटन का चित्रण आदि कथ्यगत विविधता की ओर इशारा करते हैं।

उपन्यास की कथा गुलशन के एक दिन से शुरू होती है। नीरस ज़िन्दगी काटने की मुश्किल के साथ घर-परिवार के तनाव का चित्रण भी हुआ है। घर में अपने हिस्से से ज्यादा रोटी लेने के अपराध बोध और मम्मी की तीखी दृष्टि से अपने को अपमानित महसूस करते हुए गुलशन की आत्महत्या की कोशिश और दुबारा एक नौकरी में प्रवेश, विवाहित मधु के साथ का प्रेम संबन्ध और दफ्तर की नलिनी के साथ की मित्रता आदि के केन्द्र में गुलशन है। आधुनिक नौजवान की ज़िन्दगी और दांपत्य जीवन का पतन उपन्यास का मूल विषय है। पात्रों की विशेषता यह है कि सभी हमेशा अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं और अपने घुटन का कारण दूसरों पर आरोपित करते हैं। बच्चे का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। माता-पिता के घुटन के बीच अनजाने उनकी भी मानसिकता बदल जाती है। इसप्रकार चरित्रांकन भी महत्वपूर्ण ढ़ंग से किया गया है।

यह उपन्यास सीधा हमें गुलशन की ज़िन्दगी और परिवार के पास ले चलता है। कहीं कोई रुकावट नहीं है। एक मध्यवर्गीय परिवार जिस प्रकार व्यवहार करता है, महानगरीय परिवेश में उसमें कैसा बदलाव आता है उन सबका विस्तृत प्रस्तुतीकरण इसमें हुआ है। गुलशन की ज़िन्दगी खत्म नहीं हुई है। वह आगे बढ़ती ही रहती है। रुकावटों को अनदेखा करके हम भी उसके साथ चलते हैं। उपन्यास पढने के बाद नीरसता की छाया हमारे मन में झलकती है। इस प्रकार 'अंधेरे से परे' उपन्यास मध्यवर्गीय शहरी जीवन के पर्त दर पर्त खोल देनेवाला अवश्य है। वह जो प्रभाव हम पर छोडता है वह कथ्यगत विशेषता के साथ ही साथ शिल्पगत नवीनता का उद्घाटन भी करता है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास की पहली विशेषता उसकी वस्तुपरक नवीनता ही है। उपन्यास का कैनवास इतना विशाल है कि उसमें शाहजहांपुर के रूढ़िग्रस्त जीवन से लेकर दिल्ली बम्बई जैसे महानगरीय जीवन यथार्थ को बडी ही बारीकी के साथ चित्रित किया गया है। रंगमंच और फिल्मी जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कदाचित यह पहला उपन्यास होगा। इसमें नाटक के क्षेत्र में काम करनेवाले अभिनेताओं तथा अन्य कलाकारों के जीवन का यथार्थ अपने वास्तविक रूप में खुल गया है। वैसे ही फिल्मी दुनिया आम आदमी के लिए अनभिज्ञ है। लेकिन सुरेन्द्र वर्मा की लेखनी से उस दुनिया का ईमानदार चित्रण हुआ है। इसप्रकार यह उपन्यास अपने कथ्यगत नवीनता के कारण भी विशेष उल्लेखनीय है।

उपन्यास का घटना क्षेत्र नया तथा प्रभावी है। इसका केन्द्र वर्षा वशिष्ठ का जीवन ही है। उपन्यास की वस्तु एक सीधी लकीर के समान आगे बढ़ती है। शाहजहॉपुर का मध्यवर्गीय परिवार पहला घटना स्थल है। दूसरा कालेज है जहाँ उसकी अध्यापिका दिव्या कत्याल की प्रमुख भूमिका है। तीसरा अखाडा नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा है और चौथा बंबई फिल्म जगत। इसप्रकार वर्षा जहाँ है वहाँ उपन्यास का केन्द्र बन जाता है।

उपन्यास को गहरे अर्थसन्दर्भों की ओर ले जाने की कुशलता सुरेन्द्र वर्मा की अभिव्यक्ति पद्धति में है। इसके सभी प्रमुख पात्र अभिनेता हैं। इसलिए उनका जीवन नाटक से संबन्धित है। उनके जीवन के अनिवार्य सन्दर्भों की चर्चा करते समय उपन्यासकार ने कालिदास, भवभूति, इब्सन, ब्रेख्त, कामू जैसे विश्वप्रसिद्ध नाटककारों के नाटकीय सन्दर्भों को प्रयुक्त किया है। इससे एक ओर घटना गहरी हो जाती है तथा दूसरी और उससे बहुआयामी अर्थ

सन्दर्भ निसृत हो उठते हैं। यह भी नहीं कलाकार के जीवन की (आइरनी) विडम्बना भी अभिव्यक्त हो उठती है। इसप्रकार रचना में एक अव्याख्येय गंभीरता लाने में सुरेन्द्रवर्मा की रचनाशैली का महत्वपूर्ण स्थान है।

'दो मर्दों के लिए गुलदस्ता' एकदम नवीन है। इस उपन्यास का कैन्वास भी विशाल है। मुंबई महानगर का पूरा चित्रण इसमें है। शिक्षा क्षेत्र की कपट राजनीती से लेकर महानगर के कीचड में फँसे राजनीतिज्ञों की बात भी इसमें कही गयी है। उपन्यास की महिमा इसमें भी है कि एक पुरुष वेश्या का इतना गंभीर चित्रण हिन्दी के किसी भी उपन्यास में नहीं मिलता। दिल्ली विश्वविद्यालय का शोध छात्र नील अपनी विवशता के कारण एक अनोखे क्षण में अपने प्रोफेसर के क्रोध पात्र बन गया और उन्होंने अपनी राजनीति के तहत नील को बेकार बना दिया। मायानगरी मुंबई में अपना जिस्म बेचकर नील धनी बन गया। मधुरा से आये भोला नील का मित्र था। वह भी बंबई के अंडर्वार्लड का शिकार बनकर उनके लिए काम करने लगा। इस प्रकार महानगर के परिप्रेक्ष्य में इन दोनों का चित्रण किया गया है।

उपन्यास का प्रारंभ नील के ट्रेन यात्रा से होता है। उसकी याद उसे दिल्ली ले चलती है। इस दौरान भोला से मुलाकात होती है। दोनों कुछ बनने के लिए विराट नगरी में प्रवेश करते हैं। कथा का दूसरा आयाम बंबई में शुरू होता है। भोला चौकीदार बनने के लिए आया था, लेकिन नियति उसे अंडर्वार्लड का विश्वस्त बना देती है। नील को पुरुष वेश्या बना देती है। अधेड उम्र की नारियाँ अपने जिस्म की भूख मिटाने के लिए नील के पास आ जाती हैं। नील सबके साथ एक जैसा व्यवहार करता है। तीसरा मोड उसके पारुल के साथ संबन्ध से शुरू होता है। संपन्न सोमपुरिया परिवार की विवाहित पारुल नील से शादी भी करना

चाहती है। पारुल उसको फ्लैट तक देते हैं। चौथा मोड नैन से मुलाकात होने के बाद आता है। नैन सीधी-सादी गायिका थी। नैन पर नील मोहाविष्ट हो गया। नील नैन के साथ आराम की ज़िन्दगी जीना चाहती है। लेकिन पारुल उसको चकनाचूर करती है। शिकोहाबाद के नील दिल्ली होते हुए बंबई पहूँच जाता है और विराट नगरी बंबई उसे मृत्यू का गुलदस्ता देता है। भोला ज़िन्दा मुर्दे की तरह गुलदस्ता स्वीकार करता है। इसप्रकार नील और भोला सभी अपनी-अपनी भूमिका विशेष रूप से निभाते हैं। इसप्रकार संरचनात्मक नवीनता उपन्यास में दृष्टव्य है।

इस में वाक्यों के गहरे अर्थ लेने की जरूरत नहीं है। सीधा अर्थ ही लेना है। नील और भोला की ज़िंदगी को जीवन्त बनाने तथा बंबई की ओर नई दृष्टि डालने में उपन्यास सक्षम निकला है।

इसप्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यासों में नयापन लाने का प्रयास किया है। उपन्यासों की मुख्य विशेषता यह है कि मुख्य कथा तन्तु के साथ उसके पोषक अन्य छोटी-छोटी कथाओं का सम्मेलन होता है जो अकृत्रिम हैं। वे अलग-अलग कटे हुए नहीं है बल्कि एक दूसरे पर आबद्ध हैं। इसलिए छोटा-सा-छोटा प्रसंग भी अपने आप एक मुख्य भूमिका निभाते हुए दिखाई देता है। इसमें पुराने मूल्यों और विश्वासों को दिखाने के साथ ही साथ आगे बढ़ने में बाधक तत्वों को ताडके नई दुनिया की ओर प्रस्थान करने की मानसिकता अभिव्यक्त हुई है। शीघ्रगति से बदलती नई दुनिया का विस्तारपूर्ण चित्रण सुरेन्द्र वर्मा की निजी विशेषता है।

पात्र चित्रण

पात्रों के बिना कथा नहीं, पात्रों से ही कथा का निर्माण होता है। पात्र की गति के अनुसार कथा भी विस्तृत होती है। एक कथा तब प्रभावपूर्ण बनती है जब उसके पात्र में गहनता और गांभीर्य का समावेश होता है। पात्रों के चित्रण में सूक्ष्म दृष्टि की जरूरत है। पात्र के अनुसार कथा और कथा के अनुसार पात्र का भी व्यवहार होना चाहिए। पात्रों के चयन में सफल होने का मतलब है उपन्यास तथा उपन्यासकार की सफलता। पात्रों का सही ढंग से सही जगह में प्रयोग करना चाहिए। वातावरण और परिवेश के अनुसार पात्रों में बदलाव आना चाहिए। मुख्य पात्रों के अलावा कभी-कभी कहानी के निर्बाध प्रवाह के लिए अन्य कुछ पात्रों को भी जोड़ना अनिवार्य हो जाता है। उपन्यास लेखन में ऐसा कोई नियम नहीं है कि इसमें इतना पात्र होना चाहिए। कितने भी पात्र हों, सब को कहानी के विकास में अनिवार्य भूमिका निभानी चा हेए।

सुरेन्द्र वर्मा एक सफल नाटककार के रूप में बहुत पहले ही ख्याति प्राप्त है। उपन्यासकार के रूप में भी वे सफल सिद्ध हुए है। पात्रों के निर्माण तथा उसके चयन में वे एक जादूगर ही हैं। पात्रों में पर्याप्त गहराई एवं वर्तुलता उनकी विशेषता है। 'अंधेरे से परे' उपन्यास में आधुनिक जीवन की घुटन को गुलशन के ज़रिए प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक पीढी के प्रतिनिधि गुलशन अपने को अंधेरे में बन्द करते हुए दिखाई देते हैं। गुलशन की ज़िन्दगी को चेतना देते हुए अन्य समस्याओं की ओर हमें ले चलनेवाले जित्तन और बिन्दो कथा के अन्य महत्वपूर्ण पात्र हैं। पारिवारिक जीवन की विसंगति, विवाहित पुरुष की बेकारी की समस्या,

महानगरीय परिवेश में पली हुई शिक्षित नारी का स्वेच्छाचारी रूप तथा दांपत्य जीवन में परपुरुष संबन्ध जैसी अधुनातन जीवन की समस्याओं से यह उपन्यास हमें अवगत कराता है।

विज्ञापन क्षेत्र में अपना एक अलग व्यक्तित्व गुलशन बना लेता है। पर वहाँ तक के उसके रास्ते परिचित कराते हुए उपन्यास का प्रारंभ होता है। ममा के साथ उसका रिश्ता इससे स्पष्ट होता है, "कहाँ से आ रहे हो?' बिंदो ने एक दूसरे कप में पानी डालते हुए पूछा।

ममा के होठों के कोने व्यंग्य भरे ढंग से तनिक सिकुड़ते लक्षित किया। मन ही मन थोडा संकुचित हुआ।"[3] खाली बैठते वक्त उसने अखबार से कुछ अनुवाद किया था। वह देखकर ममा कहती है, "सहसा ममा ने भौहें चढ़ाकर मेरी ओर देखा, 'बडी ऊँची नौकरी मिल गई है!' फिर बिंदो की ओर, 'अमेरिकन प्रेसीडेंट के स्पीच राईटर हो गए हैं।' अगर ये सब हिमाकतें छोडकर जरा संजीदगी से सोचो कि तुम क्या हो और क्या होने जा रहे हो "[4]

नौकरी मिलने के बाद गुलशन में थोडा बहुत परिवर्तन तो आ ही गया। महानगर के अनुरूप वह भी बदलने लगा। उसने समझ लिया था सबकी अपनी-अपनी ज़िन्दगी है और उसमें दख़ल देने के लिए वे किसी को भी अनुमति नहीं देते। महानगर के इस महासत्य को पहचानकर वह भी उसी भीड़ में खो जाने के लिए निकल जाते हैं। "घडी देखी। ग्यारह। सिर्फ ग्यारह बजे थे। घर कुछ अजीब ढंग से खामोश था मनहूस-सा। खाली बरामदा। खाली कमरे। चुप्पी। गहरी। और बोझिल।

---

3. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.10-11
4. वही, पृ.11

देखते-देखते यकायक लगा कि नहीं, अब और नहीं। तेज़ तेज़ अन्दर आया। फोन के पास रुका। नंबर डायल करने लगा।

'नलिनी है?'

एकाध मिनट के बाद नलिनी की आवाज़ सुनाई दी, 'हैलो'

'क्या कर रही हो?'

'कुछ नहीं।'

'बाहर आओगी?'

'जरूर।'

'थोडी देर बैठेंगे। दोहपर के शो में कोई फिल्म देखेंगे।'

'ओक्के

'पन्द्रह-बीस मिनट बाद रैम्बिल

'ठीक।' अलमारी से पर्स लिया। लैच की चाबी घुमाई और बडे-बडे कदमों से बाहर निकल आया।''[5]

---

5. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.281

आधुनिक ज़िन्दगी का तनाव, परिवार के साथ का संत्रास, नौकरी की तलाश तथा साक्षात्कार के लिए कायर जनता की मानसिकता गुलशन के जरिए इसप्रकार व्यक्त करते हैं, ''आज पूरा दिन घर में ही काट दिया अखबारों, पत्रिकाओं और किताबों के सहारे।

'आज तुम्हारी छुट्टी थी?'

'नहीं।'

'तुम आज काम पर थे?'

'नहीं।'

ये कैसे उत्तर हैं तर्क से परे।

'खैर. दिन भर तुमने क्या किया ?'

'कुछ नहीं।'

'कल क्या करोगे?'

'कुछ नहीं।'

'तुम्हारे जवाबों में नहीं बहुत आता है?'

'मैं कम से कम अपनी नकारात्मक भावनाओं के बारे में आश्वस्त हूँ।'

सुबह से दोपहर हुई। दोपहर से शाम। शाम से रात। मेरे लिए कोई अंतर नहीं पडा।

किस सन् का कौन सा महीना है, क्या दिन है, कौन-सी तारीख है इन सबकी मेरे निकट कोई प्रासंगिकता नहीं। घड़ी और कैलेंडर, दोनों मेरे लिए अर्थहीन है। मैं समय के अनंत विस्तार में जीवित हूँ। तीव्र स्वच्छंद प्रवाह में बहा जा रहा हूँ।''[6] इससे उस पात्र की मानसिकता तथा जीवन के प्रति आस्थारहित मन की गहराई जान सकते हैं। अन्य कोई पात्र इसके अन्दर नहीं आता।

बिंदो गुलशन की बहन है। जित्तन उसका बहनोई। दोनों की ज़िन्दगी टूटी-फूटी है। अपने बच्चे सोमू के साथ बिंदो और जित्तन बिंदो के घर में है। बिंदो एक महानगरीय शिक्षित नारी है जो नौकरी भी करती है। पति की नाकामयाबी पर उसे शर्म है। जित्तन एक कंपनी के असिस्टेंट मैनेजरी से सस्पेंड होकर घर बैठा हुआ है। दोनों की दृष्टि में जो अंतर है, वह इससे स्पष्ट है, ''सस्पेंड हुए पूरा साल होने को आ रहा है। जो थोडा सा बचा था, खा-पीकर बराबर कर चुके हैं अपना नहीं, मेरा नहीं, कम से कम बच्चे की तो सोचो।'

जित्तन ने सोचा। फिर झुंझला पडे, 'घर-घर जाकर स्टेनलैस स्टील के बर्तनों का आर्डर लेना मेरे जैसे आदमी के लिए कितनी जलालत का काम है।''[7] यह सुनकर बिंदो पूछती हैं, ''ससुराल में इस तरह रहते हुए तुम्हें कोई जलालत महसूस नहीं होती?''[8]

---

6. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.40
7. वही, पृ.13
8. वही, पृ.13

जितन की मानसिकता से ऊबकर बिंदो, अलग जगत में जाती है और एक अन्य पुरुष के साथ संबन्ध बनाती है। इसके बारे में उसका कथन है, "मैं कुछ नहीं कर सकती। मेरे बस में कुछ नहीं रहा। उसने हताशा से हथेलियाँ फैलाई। 'मैं नहीं चाहती थी कि कुछ ऐसा हो। पर अब मैं बिलकुल विवश हूँ।"[9] व्यक्तिगत तथा पारिवारिक संघर्ष को इन दोनों के द्वारा चित्रित किया है।

गुलशन के जीवन में मधु के आ जाने पर गुलशन थोडा और निखर आता है। लेकिन विवाहित तथा एक बच्ची की माँ होने के कारण मधु की दुनिया थोडी और रहस्यमय है। और फिर नलिनी आती है, जिससे वह मैत्री करता है। नलिनी एक ऐसी पात्र है जो अपने प्रेमी से गर्भवती हो जाती है और तिरस्कृत भी। गुलशन की ज़िन्दगी नलिनी के साथ की मित्रता से आगे चलती है। अंधेरी दुनिया के परे की दुनिया की ओर चलने के लिए तैयार होते दिखायी देती है। एक-एक पात्र की अपनी एक ज़िन्दगी और दुनिया होते हुए भी एक दूसरे के पूरक के रूप में पूरे उपन्यास में दिखायी देते हैं।

उपन्यास का एक खास पात्र सोमू है जो अपने माता-पिता के बीच आशंका के साथ चुप बैठता है। खामोशी उसकी विशेषता है। बच्चा होने पर भी वह जिद नहीं करता। पूरे उपन्यास में वह एक ही बार पापा को देखने के लिए ज़िद करते हुए दिखायी देता है। अपनी-अपनी दुनिया में बसनेवाले माता-पिता की संतान होने के कारण वह अन्य बच्चों से ज़्यादा समझदार पाया जाता है। उसका एकमात्र सहारा जुगुनू नामक बिल्ली थी। एक दिन वह मर

---

9. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.132

जाती है। जित्तन तो वह बात सोमू से कहना चाहता था। और गौतम बुद्धवाली बात के साथ शुरू किया तो सहसा सोमू पूछता है, "क्या जुगुनू मर गई?' सोमू का स्वर समतल था।

जितन पल भर को निश्चल हो गए। उन्हें इतनी जल्दी सोमू के विषय तक पहूँचने की आशा तक नहीं थी। उन्होंने हामी में सिर हिलाया।

सोमू पूर्ववत् सामने देखता रहा। खुली हथेलियाँ हत्थे पर दबाए। क्षण को उसके चेहरे पर कातरता का भाव आया अकेलेपन की तीखी अनुभूति की दयनीयता। फिर वही सूनापन आँखों में उभरने लगा।

उसके चेहरे पर वयस्कों के जैसा सच्चाई से साक्षात्कार का दृढ संकल्प था।"[10]

गुलशन सोमू को अच्छी तरह पहचान सकता था क्योंकि आज का सोमू कल का गुलशन है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में एक एक मध्यवर्गीय परिवार के महत्वाकांक्षी लडकी अपने सपनों को संवारते हुए पायी जाती है। अपनी ज़िंदगी में बाधा डालनेवाले बन्धनों को तोडकर अपनी ज़िन्दगी जीने के लिए निकल जाती है। ब्राह्मण परिवार तथा मध्यवर्गीय होने के कारण परंपरागत रूढ़ियों का पालन करनेवाले परिवार की वर्षा अपनी सीमा पहचानकर वहाँ तक जाने का निश्चय करती है। वर्षा जैसे पात्र के ज़रिए एक मध्यवर्गीय कन्या की मानसिकता को स्पष्ट करतें हैं। उधर से दिव्या के सहारे बदकिस्मती का राग रटने के बजाय जीवन का अर्थ

---

10. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.141

खोजने के लिए घर से निकली वर्षा अपने परिवार को पूरी तरह समझकर अपना रास्ता खुद चुन लेती है। वर्षा में नियति के साथ लडने की ताकत है और उसकी महत्वाकांक्षा उसे उच्च पद तक पहूँचाती है। अपनी कलायात्रा में बहुत कुछ भोगकर वह सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री बन जाती है। मदिरापान तथा विवाहपूर्व प्रेमी के साथ शारीरिक संबन्ध तक वह करती है। फिर भी अन्दर ही अन्दर अपनी संस्कृति को वह मान भी लेती है। ईश्वर पर आस्था तथा 'क्लैसिक्स' के साथ उसका गहरा रिश्ता है। वर्षा के पात्र की विशेषता इससे स्पष्ट होती है, "पिता के कारण जीवन-शैली बदल गयी थी। इस स्थिति ने एक बडे अंतर्द्वंद्व को जन्म दिया था। अगर पिता न होते, तो वह जब एक्टर्स एकेडमी गयी थी, तभी लौटते हुए हर्ष को घर ले आती। सिर्फ झल्ली और हेमलता ही होती, तब भी खास हिचक न होती। हर्ष को अपने मास्टर बेडरूम में ही रख लेती पर जब पिता के दुर्बल चेहरे का क्लोज-अप सामने आया, तो वर्षा ऐसा साहस नहीं जुटा पायी। वह हर्ष को लेकर वर्षा की आशंका नहीं समझेंगे और इस बात की व्याख्या इस रूप में करेंगे कि सिलबिल आत्मनिर्भर है, इसलिए मनमानी कर रही है। पिता के साथ वयस्क ज़िन्दगी में पहली बार आत्मीयता पनपी थी। वह उन्हें आहत करने के विचार से कमज़ोर पड गयी।"[11] वर्षा के चरित्र की एक और विशेषता यह थी कि फिल्मी दुनिया में अपनी अलग पहचान बनाने के बाद भी वह थिएटर नहीं छोडती। और अपने पुराने मित्रों से भी बराबर संपर्क करती रहती है।

प्रेमी हर्ष की मृत्यु हो जाने पर वह भावात्मक विधवा बन गयी थी। "वर्षा ने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरी। फिर अस्फुट स्वर में कहा, "मेरे वास्ते चन्द्रमा हमेशा के लिए बुझ

---

11. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.522

गया है ।''[12] अविवाहित नारी का गर्भवती होना ठीक बात नहीं है। हर्ष की मृत्यु के बाद ही पता चला कि वह माँ बननेवाली है। "मैं हर्ष के बच्चे को स्वीकार करूँगी, यह धारणा बलवती होती जा रही थी। हर्ष उसके अबतक के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण पुरुष था।

यह निर्णय कंटक पथ साबित होगा, यह समझना मुश्किल नहीं था। हर्ष के आत्मसंहार को उसने कायरता माना था। क्या वह भी कायरता दिखाये और क्लिनिक में मुक्ति पाकर बाहरी तौर पर धुली-पूँछी। ज़िन्दगी जीती रहे?

उसे अंदाज़ा था, इस जीव की स्वीकृति उसके आगामी जीवन की दिशा और प्रकृति बदल देगी।

पेडों के झुरमुट के बीच सूखे पत्तों पर चलते हुए उसने मन-ही-मन कहा, मैं इस फैसले का मूल्य चुकाने को तैयार हूँ. ।''[13]

हर्ष के परिवार के विरोध के बावजूद वह बच्चे को पालने का निश्चय करती है। उसे बहुत कुछ सहना पडा। फिर भी अपने अन्दर वह बहुत खुश थी। कलारूपी चन्द्रमा को पाकर उसके हाथ से जीवन रूपी चन्द्रमा हमेशा के लिए विलुप्त हो गया। महत्वाकांक्षी वर्षा आधुनिक नारी के साथ-साथ आदर्श भारतीय नारी भी साबित होती है।

---

12. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.547
13. वही, पृ.522

उपन्यास में वर्षा के अलावा बहुत पात्र आते हैं जो वर्षा के चरित्र को आगे बढ़ाने तथा निखारने के लिए सहायक होते हैं। दिव्या कत्याल एक और पात्र है जो वर्षा की अध्यापिका है। वर्षा को राह दिखाने का कार्य वही करती है। उपन्यास का प्रारंभ ही इस प्रकार होता है, "अगर मिस दिव्या कत्याल उसके जीवन में न आती, तो वह या तो आत्महत्या कर चुकी होती या रूँ-रूँ करते चार-पाँच बच्चों को संभालती, किसी क्लर्क की कर्कश, बोसीदी जीवन-संगिनी होती।"[14] महानगरीय परिवेश में पलने के कारण दिव्या में परंपरागत रूढ़ियों को तिरस्कृत करने की क्षमता है। वर्ष के अन्दर के अभिनय को बाहर निकालने का श्रेय दिव्या को ही मिलता है।

हर्ष वर्षा के लिए चन्द्रमा है। हर्ष ही उसके जीवन का महत्वपूर्ण पुरुष है। उसकी जिन्दगी हर्ष से जुडी है। हर्ष की मृत्यु के बाद भी वह अविवाहित होकर हर्ष के बच्चे का पालन करती है।

इसके अलावा उपन्यास में वर्षा का पूरा परिवार है, पिता किशनदास शर्मा, माँ, बडा भाई महादेव, भाभी, जिज्जी गायत्री, छोटा भाई किशोर, छोटी झल्ली। परिवार के वयस्क लोग वर्षा की करनी को पसन्द नहीं करते। वे मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार की मानसिकता लेकर जीनेवाले हैं। उनका कहना है, "मुझे इस लडकी के लच्छिन ठीक दिखायी नहीं देते। करोंदे की झाडी दोहद के बाद का खिला अशोक बनना चाहती है. ।"[15] मध्यवर्ग की सीमा तथा डर इन पात्रों में देख सकते हैं।

---

14. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.13
15. वही, पृ.34

दिव्या के पति रोहन, वर्षा के घर में काम करनेवाली झुमकी, हर्ष की मम्मी, सुजाता, मामा, शिवानी ये सब कथा के अंतर्गत हैं। वर्षा जब दु:ख से भर उठतीहै तो ये सब उसे सहारा देते हैं। इसके अलावा नाट्यविद्यालय के चतुर्भुज, स्नेह, रीटा, आदित्य, अनुपमा, सूर्यभान, नाट्यविद्यालय के प्रिंसिपल डॉ.अटल, फिल्मी दुनिया के विमल और परिवार, कंचनप्रभा, नीरजा और वर्षा से प्रेम करनेवाला सिद्धार्थ सभी उपन्यास में अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं। इन सभी की व्यक्तिगत ज़िन्दगी का भी थोड़ा चित्रण उपन्यास में मिलता है। इतने सारे पात्रों के होते हुए भी उपन्यास में कोई जटिलता नहीं है। सागर की तरफ बहनेवाली महानदी की तरह रुकावट के बिना आगे चलता है। इस उपन्यास की प्रमुख विशेषता यह है कि एक-एक पात्र अपने-आप एक उपन्यास है, याने अपने आप में पूर्ण होते दिखाई देते हैं। इस प्रकार अनेक छोटी-छोटी नदियों से यह एक महानदी बन जाती है और सागर की तरफ बह रही है।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में माया नगरी बंबई को एक पात्र के रूप में ले सकते हैं। नये नये सपनों को लेकर आनेवाले लोगों को अपनी चालाकी नजर से आकृष्ट करके उसी में फँसानेवाले आधुनिक उपनिवेशवादी ताकत के प्रतीक के रूप में महानगर को ले सकते हैं। एक पल की भूल के लिए अपनी सारी जिन्दगी लेनेवाले दिल्ली से नाता छोडकर काम की तलाश में तथा अधूरे थीसिस की पूर्ति के लिए बंबई पहूँचे नील इसके दो प्रमुख पात्रों में एक है। नील व्यक्तित्व के दो स्वरूप उपन्यास में पाये जाते हैं। पहले वह एक सीधा-सादा शोध छात्र तथा एक कालेज की अध्यापिकी करनेवाला मध्यवर्गीय आदमी था। उसका चरित्र उसके ही बातों में ऐसा देखा गया है, वह तो अल्हड नहीं था। संजीदा और चिंतनशील था। बहुत होनहार था। खुद उसे आसपास के लोगों को उससे कितनी उम्मीदें थीं। पहले सत्र का एक-तिहाई खतम होते ही वह कॉलेज के सबसे लोकप्रिय अध्यापकों में गिना जाने लगा था।

स्टडी सर्किल में पढ़ा गया उसका पर्चा 'कुषाण युग की मुद्राओं का सांस्कृतिक अध्ययन' बहुत सराह गया था। डॉक्टर शर्मा ने एक भावविभोर क्षण में कह दिया था, "तुम मेरे एकेडेमिक उत्तराधिकारी हो।"[16]

पर ज़िन्दगी सरल एवं सुगम नहीं वह जटिल है। उसको लेकर कोई पूर्व निश्चय ले नहीं सकते। उसमें कुछ भी किसी भी समय हो सकता है। "संसार की जीवन शैली कितनी जटिल और रहस्यमय है। धरती के एक कोने से एक अणु आकर दूसरे से टकराता है और सारी व्यवस्था ध्वस्त हो जाती है।"[17] इस एक पल नील की ज़िंदगी के दूसरे अध्याय की शुरूआत होती है। दिल्ली के सभी दरवाज़े जब उसके सामने बन्द हो गये तो वह बंबई की ओर प्रस्थान करने के लिए तैयार हो गया। उधर उसे एक विधवा के कंपेनियन के रूप में काम मिल गया। उसने सोचा था बीचों बीच अपने शोध प्रबन्ध भी पूरा कर सकता है। लेकिन इसी बीच कुमुद से परिचय हो गया और कुमुद से कामकला की दीक्षा ली, "उसे पता था, नारी जाति का बडा वर्ग आमतौर से उसके शरीर में आक्रामक आकर्षण पाता था।"[18] इससे उसे बंबई जाकर फायदा मिला, "मुझे अपना नया स्लॉट बनाना है, बंबई आने के पहले दिन उसकी यही चिंता थी। उसने ऐसा कर लिया। अब संयोग से उसके लिए दूसरा स्लॉट भी निकल आया है। वह उसमें भी अपने को स्थापित करने की कोशिश क्यों न करे? मेहताबजी की नौकरी विश्वविद्यालय की अध्यापिकी नहीं है। एक महीने के नोटिस पर कभी भी उसकी छुट्टी हो सकती है। फिर क्या नौकरी पेशा लोग ओवरटाइम नहीं करते? अर्थ को एक

---

16. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.8
17. वही, पृ.8-9
18. वही, पृ.8

पुरुषार्थ माना गया है, तो काम भी तो दूसरा पुरुषार्थ है। वह सौभाग्यशाली है, जो उसने दोनों का संयोजन कर लिया है !''[19] और आखिर उसने नव-उपनिवेशवादी संस्कृति के अनुकूल जीने का निश्चय भी किया, ''हम जिस पूँजीवादी समाज में जी रहे हैं, उसमें हमारे सामने पेट भरने का एक ही रास्ता है अपनी किसी काब्लियत को बाजार में बेच पाना।''[20]

नव-उपनिवेशवादी संस्कृति के शिकार बने लोगों की जिन्दगी की ओर इशारा करते हुए सुरेन्द्र वर्मा बुनियादी तौर पर नील के माध्यम से अपनी संस्कृति की ओर नवयुवकों का ध्यान आकर्षित करने का कार्य किया है। नील का तीसरा एवं अंतिम मोड नैन को देखने के बाद है। उसके मन में भी पारिवारिक जीवन की चाह पैदा होती है। अपने मित्र परेश के घर जाकर उसकी गृहस्थी से मोहाविष्ट होकर नील सोचते हैं, ''एक अदद पत्नी और एक अदद पति मिलकर अपने में एक संपूर्ण इकाई बन जाते हैं, यह एहसास उसके भीतर मोहिनी-परेश को देखकर ही जागा था। अब वे दोनों सोफे पर सामने बैठे थे एक-दूसरे-से सटे, हाथ थामे। उनके बीच साहचर्य की जो ऊष्म तरंगे थीं, उनसे घर भी थरथराता मालूम देता था। इस घर में आकर उसे ज़िन्दगी में आस्था होने लगती थी। विवाह के प्रति आकर्षण पनपने लगता था।''[21] इसप्रकार उपभोक्ता समाज में वह अंततोगत्वा अपनी संस्कृति की ओर लौट जाना चाहता है। लेकिन मायानगरी की राजनैतिक कुटिल चाल उसे फाँसी देती है। पारुल के घरवाले सुपारी देकर नील को मृत्यू दंड दिलाते हैं। नील से यह पता चलता है कि महानगर में जितना भी

---

19. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.82-83
20. वही, पृ.145
21. वही, पृ.165-166

लालची हो, जितना भी धन कमाओ अंत में अपनी संस्कृति की प्यास में राजनैतिक चाल का शिकार बनकर उसी में समा जाएंगे।

उपन्यास का दूसरा मुख्य पात्र भोला है। मधुरा से आया भोला माफिया में पड जाता है और उनके लिए खून करता है। फिर भी नील के पेशे से वह सहमत नहीं था। दो साल में एक लाख रुपया कमाने के लिए भोला बंबई आता है। लेकिन वह भी इसके अन्दर फँस जाता है। अपने पेशे की सफाई वह इस प्रकार देते हैं, "मैं तो बाहरी ढाँचे को ही खोखला कर रहा हूँ, पर तुमने तो आत्मा को ही डस लिया है। विवाह की संस्था समाज की रीढ होती है। दूसरे के नाम मंगलसूत्र पहने और दूसरे के बच्चे की माँ का धर्म भ्रष्ट करके तुम समाज को रसातल में ले जा रहा हो।"[22] रस्तराँ में नाचनेवाली शालू के साथ वह शादी करता है।

नील की मृत्यु हो जाने पर पहले वह मुर्तज़ा के पास चीखते हुए जाते हैं। लेकिन मुर्तज़ा से पता चलता है कि वह अनिवार्य था तो वह चुप हो गया। अंत में भोला शालू से कहता है, "इलाहाबाद जाकर त्रिवेणी में विसर्जन करूँगा। जीते-जी तो नील भैया मायानगरी से मुक्त नहीं हो पाए, कम-से-कम उनकी राख तो हो जाए।"[23] भोला को मालूम है कि उसका भी अंत इस शहर में होगा।

इनके अलावा उपन्यास में और भी पात्र आते हैं। कुमुद, पारुल जैसे पात्र अपनी अतृप्त कामावासना के साथ आती है। नील की माँ और नैन आदर्श रूप धारण करके प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इस प्रकार उपनिवेशवादी संस्कृति का प्रभाव और बुरा असर दिखाने के साथ हमारी

---

22. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.145
23. वही, पृ.248

संस्कृति की महत्ता एवं युवा पीढियों के मन में भी उसकी गरिमा का गहन अन्दाज़ दिखाने की कोशिश सुरेन्द्र वर्मा करते हैं।

इसप्रकार सुरेन्द्र वर्मा ने उपन्यासों में सामाजिक जीवन का खुला चित्रण अपने पात्रों के माध्यम से किया गया है। पात्रों की परिकल्पना करते समय उस पात्र पर जो दायित्व सौंप दिया है, वह निभाने की कोशिश करते वक्त पात्रों की अंतरंग अनुभूति को भी सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करने का साहस भी उन्होंने किया है। उनके सभी उपन्यासों में जो पात्र दिखाई देते हैं, वे कभी-कभी आस-पास की या कभी अपने अन्दर की परछाई सी महसूस होते हैं। इस प्रकार पात्र परिकल्पना में वर्मा जी ने अपनी अद्भुत क्षमता दिखाई है।

शैली

लेखक को अपनी रचना पर पूरा हक है। कथा कैसे कहना है, किस प्रकार कहना है? यह सब उस के ऊपर निर्भर है। कथा प्रथम पुरुष शैली में कह सकता है और उत्तम पुरुष शैली में भी। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में दोनों देख सकते हैं। 'अंधेरे से परे' उपन्यास में प्रथम पुरुष दृष्टिकोण है। पूरी कथा गुलशन से उजागर होती है। इसमें गुलशन ने दृष्टाऔर भोक्ता इन दोनों भूमिकाएँ निभाई हैं। अपनी कथा के विस्तार के साथ, बिंदो-जित्तन, ममा, मधु, नलिनी इन सबकी बातें भी, जो उसने देखा-सुना है कही गयी हैं। अपनी निजी जिन्दगी की विफलता को प्रस्तुत करते समय वह आत्मालाप भी करते हुए दिखाई देता है। अपने से जुटे अन्य पात्रों को भी उसकी निजता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में तृतीय पुरुषशैली अपनाया है। और इसमें लेखक को विशेष सुविधा भी मिलती है। नायिका वर्षा के अव्यक्त, उलझे हुए अनुभवों तक को लेखक ने शब्दबद्ध किया है। वर्षा की ज़िन्दगी को, उसके तनाव को, शारीरिक मिलन को, संघर्ष को स्वाभाविक ढ़ंग से चित्रित किया है। और यह दृष्टिकोण कभी-कभी बदलता भी है, जैसे वर्षा की अनुभूतियाँ तथा स्मृतियाँ जो उसको छूती है और झकझोरती है, वे आत्मकथात्मक ढंग से वर्णित है। तृतीय पुरुष दृष्टिकोण की एक विशेषता यह है कि इसमें लेखक के मत को भी जोड़ सकते हैं। कथा वाचक के समान अपनी दृष्टि डाल सकते हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में दो नायक है और इसीलिए तृतीय पुरुष दृष्टिकोण ही है। एक-एक उपन्यास में अलग-अलग दृष्टिकोण रखने पर भी सभी में वे सक्षम दिखाई देते हैं। कथा को जिस दृष्टिकोण से देखना चाहिए, उस दृष्टिकोण से देख पाने की क्षमता तथा उसको सफल बनाने का कार्य सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यासों में किया है।

आत्मकथात्मक शैली

'अंधेरे से परे' उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। गुलशन उपन्यास का नायक है। गुलशन के माध्यम से प्रथम पुरुष का प्रयोग किया गया है, "और उसी क्षण मुझे लगा कि क्या होगा। सांत्वना औरआश्वासन के कुछ शब्द। भविष्य में कुछ करने का झूठा प्रतीत होता वादा। मेरे सामने चौबीस घंटों का तनाव और जद्दोजहद घूम गई। कल इस समय दफ्तर से निकलते हुए मुझमें चुनौती का सामना करने का उत्साह था अपनी परख में सही उतरने का संकल्प,पर कुछ पलों बाद मैं फिर उसी दरवाज़े से निकल रहा होऊंगा, फिर

उसी तरह किसी-न-किसी प्रकार खाली समय को भरने के दबाव के साथ। मुझे लगा कि मैं निराश हो रहा हूँ। क्षण भर को अपने पर वितृष्णा भी हुई कि मैं अभी तक आशा निराशा जैसी टुच्ची चीज़ों के साथ बंधा हुआ हूँ।''[24] इसप्रकार पूरा उपन्यास इस शैली में लिखा गया है।

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास के बीच-बीच में आत्मकथात्मक शैली दिखायी देती है। वर्षा के दु:ख या अनुभूति के क्षणों में आत्मकथात्मक शैली देख सकते है, ''मैं तुम से नाराज़ हूँ? खुश हूँ? मुझे पता नहीं। शायद इन दोनों के बीच कही हूँ। मैं उलझ गयी हूँ। भूगोल और समय के व्यवधान से धुंध छा गयी है।''[25]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास भी तृतीय पुरुषशैली में लिखा गया उपन्यास है। इसमें नील अपने कुकर्म के साथ जुटी बातों को आत्मकथात्मक शैली में प्रस्तुत करता है, ''और मेरी प्रतिबद्धता कैसी है, मैं अपने भावनाहीन स्पर्श का भुगतान लेता हूँ, थोड़े भानवाओंवाले स्पर्श लेनेवाली स्त्री से मूल्यवान भेंट लेता हूँ औरआज उस स्त्री के पति से अपने अँधेरे रिश्ते को बाहरी धूप से बचाये रखने के लिए मैंने रिश्वत ली है।''[26]

इसप्रकार आत्मकथात्मक शैली के ज़रिए व्यक्ति चरित्र की गहराई को प्रस्तुत किया गया है।

---

24 सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.61
25. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.237
26. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.166

एकालाप शैली

व्यक्ति जब अपने को अकेला पाता है या फिर अपने अन्तर्मन की बात को स्पष्ट करना चाहता है जिससे अपने को सकून मिले तब एकालाप शैली जन्म लेती है। इसके ज़रिए व्यक्ति जीवन की गहराई की ओर सुरेन्द्र वर्मा पाठकों को ले जाते हैं।

'अंधेरे से परे' उपन्यास के गुलशन को नौकरी मिलने पर ऐसा अनुभव होता है, तो आखिरकार तुमने अपने आपको प्रमाणित कर दिया।' संतोष की एक सांस के साथ एकालाप शुरू हो गया, 'हीनता और आत्मभर्त्सना के जिस दलदल में तुम फंसने जा रहे थे,उससे बचने के लिए एक मज़बूत कमंद तुम्हारी ओर फेंक दी गयी है।' एक हाथ जेब में डाला और कागज़ का चिकनापन महसूस किया। अब तुम्हारे पैरों के नीचे ठोस ज़मीन है। अब उस खौफ़नाक, दमघौटू शिकंजों के कसाव तुम्हें जीवन और मृत्यु की उस संधि रेखा पर नहीं ले जाएंगे, जहाँ जब कभी अपने को संकट में फंसा हुआ महसूस होता है, तब एकालाप का सहारा मिलता है, ''यह सब क्या हो रहा है दोस्त? एकालाप टेप चलने लगा, 'आखिर यह सब क्या हो रहा है? क्या मतलब है इस अनहोनी का? क्या प्रामाणिक होने के लिए पिछला मौका काफी नहीं था? अब दूसरी बार फिर परीक्षा होगी? फिर नसों का तनाव? फिर आत्मविश्वास का संकट

'ह', उस चीज का संकट, जो तुममें कभी थी ही नहीं।''[28]

---

27 सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.65

28. वही, पृ.123

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास में, नाट्यविद्यालय में, अभिनेत्री के रूप में वर्षा के सफल सिद्ध होने का एक कारण चेखव के 'सीगल' नाटक था। और नाटक के दौरान उसे वह अपनी ही कथा महसूस होती है और चेखव के साथ भावात्मक रूप से निकट हो जाती है।

"अकेले में अवसर उसका एकालाप जारी रहता, "एंटन पावलोविच, तुम्हारे पास पहूँचने का रास्ता इंट्यूशन और फीलिंग का है। तुम्हारी नाट्यकृति के मोहक अंत प्रवाह उसे तेजस्वी बनाते हैं। तुम्हारे चरित्रों की 'अक्रियशीलता' उनके जटिल भावजगत का चित्तरंजक आवरण है। तुम्हारे मंचीय कार्यकलाप के गूढार्थ को समझने पर ही प्रस्तुति में प्राण फूँके जा सकेंगे। तुम्हारे चरित्रों को 'जिया' जाना चाहिए, तभी उनके आत्मिक विकास की गहन अंतर्रेखाएँ उजागर होंगी। "[29]

एकालाप शैली अकेलेपन का सहारा है। जो बात हम दूसरों से नहीं कह पाते या जो बात दूसरों से कहने में हिचक होती है, वह सब एकालाप द्वारा कहने से मन का बोझ दूर हो जाता है।

पूर्वदीप्ति शैली / फ्लैशबैक शैली

पूर्वदीप्ति शैली बहुत प्रचलित शैली है। 'अंधेरे से परे' उपन्यास में इस शैली का प्रयोग किया गया है। जित्तन बचपन के बारे में बात कर रहा था। जित्तन कहता है, "उन दिनों इतवार को कभी-कभी हमारे घर अनाथालय का बैंड आता था पाँच-छह से लेकर पन्द्रह सोलह साल तक के लडके। उनमें एक लडका बिगुल बजाता था। दुबला-पतला।

---

29. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.137

सांवला। बजाते समय गाल फूले और जबडे की हड्डियाँ उभरी हुई। उसके चेहरे पर हमेशा आक्रामक क्रूरता का भाव रहता था। वह बराबर बात करता था, चिढे हुए ढंग से जैसे यह उसका अधिकार हो उसे कुछ दीजिए तो ऐसे लेगा, जैसे सूदखोर पठान अपनी माहवारी किस्त वसूल कर रहा हो। वह ऐसा अहसास कराता था, जैसे उसके अनाथ होने में कहीं न कहीं हमारा कसूर है। कुछ पलों की चुप्पी के बाद जित्तन असहाय से मुस्कुराए यह बचपन ही क्या चीज है।''[30]

बचपन की याद गुलशन को भी आ गयी, ''माँ मुझे बहुत प्यार करती थी। दु:ख के लमहों में और भी ज्यादा। जब भी मैं बाहर से मार खाकर आता, दौड में पीछे छूट जाता, या टैस्ट में नंबर कम पाता, तो मां हमेशा अतिरिक्त प्यार से कमी पूरी कर देती। कभी-कभी मुझे लगता था के वो ऐसे मौकों की ही तलाश में रहती है। गहरी सांस। मेरी परवरिश ही इस तरह हुई थी कि मैं असफल बनूँ।''[31]

'मुझ चाँद चाहिए' में हर्ष की मृत्यू को पूर्वदीप्ति शैली में चित्रित किया है, ''कुछ समय बाद वर्षा इस योग्य हुई कि पुराने दृश्यों को रिप्ले कर सके।''[32] इसके बाद एक-एक घटना को याद करती है। चतुर्भुज का गृहप्रवेश, उसको पद्मश्री मिलने के समाचार, डॉ. अटल से हर्ष की बातचीत और फिर उसका गायब होना। अंत में वर्सोवाबीच पर हर्ष की लाश मिलना।[33]

---

30. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.30-31
31 वही, पृ.31
32. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ. 544
33. वही, पृ.544-545

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' के नील की ज़िंदगी को भी कभी-कभी पूर्वदीप्तिशैली से उजागर किया गया है, "अनायास ही न चाहते हुए भी पाँच वर्ष पहले का वह दिन याद आया, जब वह उमंग से भरा हुआ अपने बक्से और बिस्तरबंद के साथ इसी स्टेशन पर, उतरा था। फिर न चाहते हुए भी बाइफोकल चश्मा लगा डॉक्टर शर्मा का सख्त चेहरा सामने आ गया।

आँख का आँसू पल भर में सूख गया। नमी की जगह क्रोध और प्रतिहिंसा की चिनगारी सुलग उठी।

"एक दिन मेरा भी आएगा डॉक्टरशर्मा !" उसने बुदबुदाकर कहा,"मैं नए सिरे से अपने को जमाकर दिखा दूँगा।"[34]

सुरेन्द्र वर्मा ने पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग यथावत् किया है। स्मृति के सहारे भूतकाल के अन्धेरे क्षणों को रोशानी देने की प्रक्रिया पूर्वदीप्ति में है।

प्रतीकात्मक शैली

प्रतीक के माध्यम से लेखक अपनी प्रतिभा से भाषा में नए-नए अर्थ भर लेते हैं। यह कभी प्रतीक, कभी बिंब आदि के प्रयोग से संभव होता है। समकालीन साहित्य में प्रतीकों का विशेष महत्व है क्योंकि समकालीन जीवन की जटिलताओं को अभिव्यक्त करने के लिए कभी कभी प्रतीकों का सहारा लेना पडता है। लेखक जो बात सामान्य भाषा में कहता है उसे प्रतीकों के माध्यम से और अधिक प्रभावी ढंग से कह सकता है।

---

34. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.7

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का शीर्षक भी अपने आप में एक प्रतीक है। 'अंधेरे से परे' उपन्यास का 'अंधेरा' गुलशन के अकेलापन, तनाव, संत्रास एवं घुटन का प्रतीक है। वह उसमें जीना चाहता है। अंधेरे से बाहर आना वह चाहता नहीं। आधुनिक पीढ़ी का एक अभिशाप है यह अंधेरा। अपने ही घर में अकेलापन महसूस करनेवाले बहुत होते हैं। इससे मुक्ति पाना ही है। लेकिन अंधेर से बाहर आने पर सब कुछ अजीब-सा लगता है। लेकिन हमें अंधेरे से परे जाना ही है। अकेलेपन के कारण धीरे-धीरे अंधेरे को पसन्द करनेवाला गुलशन अंधेरे के बारे में कहता है, "अंधेरे का एक रंग और खुशबू होती है। इन्हें हर एक देख और महसूस नहीं कर सकता। इसके लिए अकेलेपन का अहसास बहुत जरूरी है। जिसे बहुत गहराई तक ऐसा अनुभव है, इसी में यह योग्यता हो सकती है।"[35]

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास के शीर्षक का 'चाँद' वर्षा वसिष्ठ की महत्वाकांक्षा का, उसकी इच्छा का प्रतीक है, जो उसे सब कुछ देता है। पर अंत में आसमान से गिरा भी देता है। चाँद एक अप्राप्य लक्ष्य को द्योतित करता है। फिर भी उसको पाने की इच्छा हर एक के मन में बनी रहती है। ज़िन्दगी में कोई पूर्ण रूप से तृप्त नहीं है। सभी एक एक करके सब कुछ जुटाना चाहते हैं। चाँद को देखने पर लगेगा कि थोडी और ऊँचाई पर जाने से वह मिल जाएगा। लेकिन जितनी ऊँचाई पर जाए वह कभी हाथ में नहीं आयेगा। महत्वाकांक्षा रूपी चाँद न मिलने पर लोग हताश हो जाते हैं, टूटकर गिर जाते हैं। इस पतन की त्रासदी को लेकर हर्ष हमारे सामने आता है। आसमान तक पहूँचने पर भी चाँद को न पकड पाने की विसंगति झेलनेवाली है वर्षा। पात्रों के वास्तविक जीवन को अन्य नाटकों के जरिए प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य भी किया गया है। 'सीगल' नाटक का वाचन चलते समय वर्षा को

---

35. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.33

अपना बचपन याद आता है, ''जहाँ तक नीना के चरित्र की आन्दोरिक बनावट का प्रश्न है, उसका आधार सिलबिल ही है। तीसरी बार नाटक के वाचन के बाद वर्षा की यह धारणा बलवती हो गयी। नीना के चरित्र की पारिवारिक रूपरेखा रंग कामना और कलाललक में सिलबिल ही स्पन्दित हो रही थी। नीना के पिता ने उसके आवागमन पर सख्त पाबन्दी लगा रखी है और वह उसके रंगाकर्षण के भी खिलाफ हैं।''[36]

हर्ष तो कालिगुला की भूमिका में प्रसिद्ध हो गया था। कालिगुला अपनी जिन्दगी में चाँद चाहता है, ''अचानक मुझमें असंभव के लिए आकांक्षा जागी। अपना यह संसार काफी असहनीय है। इसलिए मुझे चन्द्रमा या खुशी चाहिए।''[37] वापसी कालिगुला नही कर सका। दो कुत्तों के बीच, कुत्तों की मौत मरा था। सुबह एक कुत्ता उसके पैरों के पास बैठा पाया गया था और दूसरा उसका मुँह चाटते हुए ।''[38] हर्ष की मृत्यु भी इसी प्रकार हुई थी दो कुत्तों के बीच।

नाट्यविद्यालय की रीटा भी महत्वाकांक्षा लेकर आयी थी। वर्षा के साथ कलात्मक टकराव भी हुआ था। उसकी शादी के बारे में सुनकर वर्षा पूछती है, ''पर अभी शादी कर लेने से तुम्हारे कला-स्वप्न का क्या होगा?' वर्षा ठिठककर बोली।

---

36. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.130
37 वही, पृ.5
38. वही, पृ.546

"यही एक कांटा है, जो मेरे मन में चुभा है।" रीटा ने उसका हाथ थाम लिया और आवेग को दबाने के लिए दांतों-तले निचला होंठ काटा। वर्षा मैं सुकुमार को नहीं खो सकती और महान अभिनेत्री भी होना चाहती हूँ।

इतने स्पष्ट शब्दों में अपनी सौंदर्यबोधीय महत्वाकांक्षा रीटा ने पहली बार प्रकट की थी।''[39]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' दो व्यक्तियों, नील और भोला की कथा है। जो महानगर में जिंदा रहने के लिए आता है, लेकिन नील तो असली मुर्दा बन ही गया और भोला जिन्दा मुर्दे की तरह जीवन बिताता है। अपने मन के सदाचार को धार्मिकता को अन्दर ही छुपाकर एक अन्य व्यक्ति की तरह काम करनेवाले बन जाते हैं, उपन्यास का शीर्षक उन लोगों का प्रतीक है। सुरेन्द्र वर्मा ने उपन्यास शुरू होने से पहले ही एक माफिया सूक्ति लिखी है,

''इस एकतरफ़ा रास्ते पर

आदमी ज़िंदा आता है और मुर्दा जाता है।''[40]

इसप्रकार हम देखते हैं कि सुरेन्द्र वर्मा ने अपने उपन्यासों के शीर्षक से लेकर उपयुक्त तथा स्वाभाविक प्रतीकों का प्रयोग करके मानव जीवन की विडम्बनाओं को प्रतीकीकृत करने का कार्य किया है।

---

39. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.151
40. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.5

स्मृति चित्रों का प्रयोग

स्मृतिचित्रों का प्रयोग कभी-कभी अनिवार्य है। एक व्यक्ति की जिन्दगी अतीत से भी जुडी हुई होती है। अतीत के सहारे ही वर्तमान में जी सकते हैं। भविष्य की ओर बढने की ताकत भी यही देता है। सुरेन्द्रवर्मा के उपन्यासों में बीच-बीच में इसका प्रयोग किया गया है।

'अंधेरे से परे' उपन्यास का गुलशन बचपन से ही अकेलेपन के तनाव में जी रहा है। जित्तन के बचपन की खुशियों के बारे में जिक्र करने पर उसका अन्तर्मन इसप्रकार था, "शायद मन ही मन कहा खुशी बचपन । सामने की हरियाली धीरे-धीरे धुंधली हुई और आडे-तिरछे बदरंग धब्बों में बदल गई। एक-दूसरे में घुलते मिलते और गहरे होते हुए, बहुत पीछे कहीं तेजी से फिसलना, फिर यकायक झटके से थम जाना।"[41]

घर में अकेले हो जाने पर उसे घर के अन्य लोगों की याद आती है, "कुछ देर पहले वे लोग यहीं थे चाय पीते हुए बातचीत करते हुए। शायद इस निश्चिंतता के साथ कि शाम खाली नहीं है। मन में इस बात का हिसाब था कि तैयार होने में कितना समय लगेगा, और पहूँचने में कितना और वह बिंदु आते ही वे उठ खडे हुए। बीच-बीच में अंदर से आती आहटें। गुसलखाने में गिरते पानी की आहट आलमारी खुलना, कमरे के दरवाज़े का बंद होना।"[42]

---

41 सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.32

42. वही, पृ.43

बारिश के कारण एक दिन घरवाले घर में ही थे। लेकिन अपने अंधेरे क्षणों की याद ने गुलशन को सताया, "उन तमाम बौछारों की स्मृतियाँ मन में उभर आई, जो इस घर में देखी हैं! शाम को खिडकी के सामने सलाखें थामे हुए। आधीरात को बिस्तर में मुँह छिपाए। दोपहर को बाहर निकलते-निकलते। दीवारों, पेड-पौधों को भिगोती हुई बारिश। खाली घर के सूनेपन को और गहरा बनाती हुई बौछार निरंतर टप् टप् टप् अकेलेपन व उदासी को तीखा करती। जब बार-बार लगता था कि क्या सारी ज़िन्दगी ऐसे ही बीत जाएगी? क्या सुबह से शाम तक इसी तरह अपने-आप से ही एकालाप करता रहूँगा ?"[43] इस प्रकार स्मृति के सहारे गुलशन का अतीत स्पष्ट हो जाता है।

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा नाट्यविद्यालय में 'सीगल' पढ रही थी। नीना का चरित्र देखकर वर्षा नीना में उसको ही पहचान लेती है, "जब उत्तेजना से लरजती नीना ने त्रिगोरिन को बताया, मैं ने फैसला कर लियाहै। मैं रंगमंच पर जा रही हूँ। कल तक मैं जा चुकी होऊँगी। मैं अपने पिता को और सब कुछ छोडकर नयी जिन्दगी शुरू कर रही हूँ। मैं मॉस्को जा रही हूँ, "तो सिलबिल को एयरबैग लेकर शाहजहॉपुर से निकलने का दृश्य याद आ गया।"[44]

रिर्पटरी में चिंतामणी नया आया था, "वर्षाजी !" रिहर्सल के पहले दिन चिंतामणि उसके पास आया, "मुझे आपकी शुभकामनाएँ और कृपादृष्टि चाहिए।" उसके चेहरे पर प्रख्यात कलाकारों के साथ जूझने का तनाव, अपने सामर्थ्य का अनिश्चय और डिक्टेटर का

---

43. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.101
44. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.130

आतंक था। वर्षा को याद आया, 'अपने-अपने नर्क' की शुरुआत में उसने हर्ष के सामने ऐसे ही याचना की थी।''[45]

कलारूपी चाँद तक वर्षा पहूँच गयी थी। वर्षा को लेकर एक किताब निकलनेवाली थी। उसमें उसकी प्रतिक्रिया पूछने पर उसे कुछ याद आयी, ''उसे 'आशामहल' की शूटिंग के दौरान रॉबर्ट से हुई अंतरंग बातचीत के बाद की अपनी प्रतिक्रिया याद आयी कुछ छीना अवसाद थोडा गुनगुना पाछतावा और अपने आप पर तनिक झिझका-सा संदेह आयू के एक पडाव तक पहूँचने पर कुछ रचनालीन, संवेदनशील व्यक्ति भीतरी खालीपन, हल्के आक्रोश और बेचैन करने वाली अर्थहीनता से जूडने लगते हैं खासकर शो बिजनेस से जुडे हुए लोग। क्योंकि चुनौतियाँ, तनाव और दर्दभरे विरोधाभास उनके आसपास बहुत है।''[46]

दिव्या को कैंसर था यह सुनकर वर्षा अवसाद में पड गयी। ''वर्षा को प्रागैतिहासिक काल में शाहजहॉपुर की वह गहराती शाम याद आयी, जब रोहन और मिट्टू तीन दिन रहकर लखनऊ वापस लौट गये थे। तब दिव्या और वर्षा दोनों उदास थी। दिव्या के लिए तो वह कुछ नहीं कर सकती थी, पर दिव्या ने उसे धीरज बँधाया था। अगर ड्रामा स्कूल में प्रवेश न मिले, तो लखनऊ में मेरे पास रहना। तुम्हारा वैकल्पिक जिन्दगी का बंदोबस्त हो चुका है।''[47]

---

45. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.249
46. वही, पृ.568
47 वही, पृ.570

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' का नील ट्रेन पर बैठ रहा है, माँ को भेजने की चिट्ठी देखकर उसकी स्मृति उन दिनों की ओर हो गयी। "फिर माँ का वह प्रफुल्लित चेहरा याद आया, जो रामजस कॉलेज में उसे प्राध्यापिकी मिलने पर देखा था। अभी नियुक्ति अस्थायी पद पर थी। पर डॉक्टर शर्मा ने चिंता न करने का आश्वासन दिया था। उसे एम.ए. में पहली श्रेणी के साथ पहली पोजीशन मिली थी, पर इससे भी बडी बात यह थी कि वह प्रोफसर और विभागाध्यक्ष का सबसे प्रिय छात्र था।

इसी लक्ष्य के चलते आई.ए.एस. में उसका रुझान नहीं था। लिखित परीक्षा में क्वालिफाई करने के बावजूद वह इंटर्व्यू के लिए नहीं गया था। उसे अध्यापन और सुकून पसंद था, सरकारी अफसर की प्रभुता और तनाव नहीं।

अगर होता तो आज वह डॉक्टर शर्मा की गिरफ्त से बाहर होता।"[48]

भाषा

मन की बात को बाहर प्रकट करने का माध्यम है भाषा। कला के सन्दर्भ में अनुभूति को शब्द और अर्थ के साथ संप्रेषित करने का, साधन है भाषा। अनुभूति मात्र से साहित्य नहीं बनता। उसको प्रकट करने के लिए एक सशक्त माध्यम की ज़रूरत होती है और वह है भाषा। सशक्त का मतलब यह नहीं है कि उसमें कटु भाषा का प्रयोग हो। विषयवस्तु, स्थिति, औचित्य आदि को ध्यान में रखकर भाषा का सहज प्रयोग करना है। उपन्यास की भाषा में गतिशीलता की ज़रूरत है, उसमें कोई दुरूहता नहीं होनी चाहिए। आधुनिक उपन्यास में

---

48. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.8

भाषा का नया रूप और प्रयोग देख सकते हैं। आधुनिक उपन्यासकार भाषा के प्रति सजग है। बाहरी यथार्थ को अपने अन्दर समेटकर अनुभव के स्तर पर प्रस्तुत करता है। भाषा में सूक्ष्मता और संवेदन क्षमता को सिद्ध करने का प्रयास हर उपन्यासकार करते हैं।

समकालीन उपन्यासकार सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में भाषा का एक अपूर्व संयोग हम देख सकते हैं। उनके उपन्यासों में उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग आते है। उनके लिए उपयुक्त भाषा का प्रयोग करके उपन्यासकार ने स्वाभाविकता लाने की कोशिश की है। उपन्यासों में पात्रों की भाषा कहीं भी आरोपित नहीं लगती बल्कि स्वाभाविक एवं गतिशील है। उनकी भाषा में सूक्ष्म अभिव्यक्ति क्षमता एवं संवेदनशीलता देख सकते हैं।

संकेतात्मक भाषा

किसी घटना को व्यक्त करने के लिए संकेतों का प्रयोग भाषा में होता है। अकेलापन और जीवन की निरर्थकता दिखाने के लिए 'अंधेरे से परे' के गुलशन के ज़रिए सुरेन्द्र वर्मा सूचित करते हैं, "बाई ओर न दिखाई देनेवाली स्टेज पर कोई रिहर्सल चल रही है। नृत्य की। घुंघरुओं की छम-छम और तबले की छाप बीच-बीच में सुनाई दे जाती है।

एक घंटा हो गया।

पैसे मेज़ पर रखता हूँ।

एक कॉफी के सहारे और कितनी देर बैठ सकता हूँ ! धीरे-धीरे बंगाली मार्किट तक आता है। कोने की दूकान से सिगरेट लेता है। सुलगता हूँ। अब कहां जाया जा सकता है? कहीं नहीं, अब किससे मिला जा सकता है किसी से नहीं।''[49]

गुल शन की ज़िन्दगी की अनिश्चितता एवं संत्रास इससे स्पष्ट होता है, ''कागज़ मेज़ से उड़कर फर्श पर बिखर रहे थे। रैक से कुछ किताबें बिस्तर पर गिर गई थीं। कमीज़ ने उडकर बिस्तर को ढ़क लिया था। पत्रिकाओं के पन्ने यहाँ वहाँ फडफडा रहे थे।

कुछ पल जैसे दूर से यह दृश्य देखता रहा। अस्तव्यस्त बेतरतीब किवाड़ की खट्खट कागज की सरसराहट पीछे कहीं तेज हवा ।''[50]

गुलशन की मानसिक प्रतिक्रिया को इससे संकेत मिलता है।

'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा की भाभी उसे बहुत सताती है। कुछ भी बोलती नहीं थी। इसके बदले वह ऐसा व्यवहार करती थी, ''एक स्त्री दूसरी को नहीं सह सकती, अगर वह सच है। तो मोहिनी इसका सटीक नमूना साबित हुई। घर के तेज पर्यवेक्षण के बाद वह तुरंत सिलबिल के प्रति उदासीनता से रुखाई पर उतर आयी। इस कार्यशैली की सुंदरता यह थी कि सामने मुँह से एक शब्द नहीं कहा गया। सिलबिल का सुखाया गया कपडा गुडी मुडी करके छत पर फेंकने, उसकी किताबों को तितर बितर करने, सिलबिल के सामने खाने की थाली

---

49. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.9-10
50. वही, पृ.30

पटकने और रोटी जलाकर देने जैसी बारीकियों से मोहिनी ने संप्रेषण के नये प्रतिमान स्थापित किये।''[51]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में नील की मृत्यु का संकेत इसप्रकार किया हैं, ''इंजन फिसलता हुआ आगे जा रहा था। 'चर्चगेट' के अक्षर चकम रहे थे। भीड का दबाव उन्हें आगे ले आया। शकील ने उसका हाथ पकड कर उसे अपने पास खींचा अचानक नील को अपनी पीठ पर धक्के का एहसास हुआ और अगले क्षण वह नीचे गिर रहा था और इंजन उससे कुछ इंच की दूरी पर था ''[52]

इसप्रकार संकेतों के जरिए उपन्यासों को आगे बढाने का कार्य सुरेन्द्र वर्मा ने किया है।

चित्रात्मकता

प्रकृति वातावरण या मौसम के चित्रण में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है। शब्दों द्वारा चित्र खींचने का कार्य सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में देख सकते हैं, ''जून के पहले हफ्ते में दोपहर को ढाई बजे की धूप। ऊपर निगाह उठाते ही आंखों में सुलगती चकाचौंध भर गई। और तत्क्षण पलकें बैद कर लेने के बाद भी लगा, जैसे आंख के सारे सफेद व काले हिस्से पर तपिश की एक परत पुत गई हो।

---

51. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.76
52. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्त, पृ.246

गोल डाकखाने से गुरुद्वार तक पूरी सडक बिलकुल सुनसान थी। किनारों पर जहाँ-तहाँ डामर पिघलता हुआ हवा तेज़। तीखी। पेडों को झकझोरती हुई। पत्तों में ऐसी तरल सरसराहट, जैसे क्रंदन कर रहे हों। सड़क के दोनें किनारों पर जब तब उडते घूल के बगूले मेढक से फुदकते हुए। बीच-बीच में सूखे पत्तों को हुलकारते।''[53]

गुलशन को अपने ही घर में अकेलापन महसूस होता है । उसे चित्रात्मक ढंग से इसप्रकार व्यक्त करते हैं, ''खिडकी के सामने आ, पर्दे का एक किनारा समेटकर बाहर देखा बहुत धूमिल आलोक पर छाई बारिश की परत। कमरे में अंधेरा था और बाहर वर्षा के बावजूद गहरा सन्नाटा जैसे कहीं कोई न हो। लगा, जैसे किसी निर्जन जहाज में हूँ, जो आधी रात की ठोस कालिमा और निस्तब्ध मौन के बीच अक्षितिज में फैले किसी सूने समुद्र में फंस गया है।''[54]

''बायीं तरफ पुराने किले का ऊँचा, मेहराबदार दरवाजा था और जर्द, काई-लगी दीवार दूर तक चली गई थी। फसीलें कंगूरे और गुंबद। फिर तराशी हुई घास वाले जमीन के छोटे-बडे कई टुकडे। दायीं ओर पेडों व झाडियों के आसपास जंगले गुफाएँ और बावडी। और कच्चे पक्के रास्तों की भूलभुलैया।

शुरू मार्च की धूप। पीली। म्लान। हल्की ऊष्मा जगती। वातावरण में नाजुक बंदनवार-सी टंगी हुई और कहीं अदृश्य धागे से गुंथा इतवार होने का अहसास।''[55] उपन्यासों में बीच-बीच वातावरण का चित्रात्मक वर्णन देखने को मिलता है।

---

53. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.35
54. वही, पृ.36
55. वही, पृ.163

'मुझे चाँद चाहिए' में भी वातावरण व मौसम की चित्रात्मक भाषा दृष्टव्य है "दोपहर ढल रही थी। उत्तरोत्तर पीछे टटती सर्दी अपनी मद्धिम पडती छाया छोड गयी थी।

हवा के एक साथ तीन-चार झोंके आये, तो यहाँ और डाइनिंग-ड्राइंग रूम के सभी दरवाजों-खिडकियों पर लगे पर्दे डालने लगे। इधर से तीनों कमरों के फर्श व दीवारों पर जहाँ तक निगाह जाती थी, धूप और छाया की आँख मिचौनी चल रही थी।"[56]

रेगिस्तान की रात का वर्णन यों लिखा गया है, "चाँद निकल आया था। दूर-दूर तक दिखायी देते बालू के ढहों पर चाँदनी फैली थी। अटनों और कैरों के कँटीले झाड गुमसुम खडे थे। दिन भर की तपिश ठंडी होने लगी थी। हवा में तरल छुअन थी।

वे दोनों धीरे-धीरे टहलते हुए आगे निकल आये थे। आसपास गहरी खामोशी दूर कहीं से बासुरी की हल्की ध्वनि आ रही थी।"[57]

वर्षा के फार्म हाऊस का चित्रण इसप्रकार किया गया है, "फार्म के एक हिस्से में आम जामुन और नारियल के पेड थे, दूसरे में सब्जियाँ उगती थी। बायीं ओर लंबे चौडे बाग से घिरी कॉटेज थी। जिस कमरे की खिडकी खोलो, हरियाली सीधे आँखों मे उतरने लगती थी।"[58]

56. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.52
57 वही, पृ.301
58. वही, पृ.528

चाँद और चाँदनी को लेकर चित्रात्मक भाषा का प्रयोग उपन्यास में जगह-जगह पर देख सकते हैं। "बाग में उजली चाँदनी झर रही थी। कटी हुई घास, पौधों और पेडों की टहनियों पर शुभ्रता की झीनी परत लगी हुई थी। हवा निर्दोष थी।

आसपास गहरा मौन था। मौन की ऐसी प्रकृति मैंने यही महसूस की है, वर्षा ने सोचा।

पीछे कॉटेज की खिडकियों में उजाला भरा था, जिसकी धवल पृष्ठभूमि में पौधे हिलडुल रहे थे।

हवा का झोंका आया, तो मेज पर रखे पन्ने फड़फड़ाने लगे।"[59]

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में महानगर का चित्रात्मक वर्णन पाया जाता है, "वाह कैसा धवल दृश्य !" भोला विभोर भाव से बोला।

हैंगिंग गार्डन के निकटवर्ती नाज रस्तरॉ की सबसे ऊपरी मंजिल से वे सिरीस्केप निहार रहे थे कफ परेड की बहुमंजिली इमारतों के गुच्छे, फिर एक्सप्रेस टावर, फिर एयर इंडिया बिल्डिंग, फिर मैरिन ड्राइव की भवन श्रृंखला चौपाटी में समाहित हो गई थी। दाईं ओर समुंदर का विस्तार था, आकुल अनंत दीवार सेटकरा रहा था। मद्धिम फेन बन रहा था, बूँदों की जाली में बदल रहा था। पीछे दूर सूरज क्षितिज में डूब रहा था। लालिमा की अनेकानेक सीधी तिरछी छायाएँ पानी की सतह पर प्रतिबिंबित हो रही थीं।"[60]

---

59 सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.567

60. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.20

पारुल के घर को इसप्रकार खींचा है, ''ताड के पेडों और हरियाली के झुरमुटों के पीछे बाग के पश्चिमी कोने पर छोटी-बडी खिडकियों वाला दिमंजिला सफेद ढाँचा हर जगह बेलों से ढंका। तरणताल के बगल में बारबेक्यू और बार लगा था। ड्राइंगरूम में घुसते ही पीतल की चमकती नॉद से लहराती बेल छत को छू रही थी। सामने को आधी दीवार पर स्लाइडिंग काँच की खुली खिडकी के सिरे पर फूलों की कतारें हिल-डुल रही थीं। नीचे तीन मखमल-मढे बडे सोफों के बीच में रखी मेज पर पतले, पारदर्शी काँच का फूलदान था। खिडकियों सीलिंग, डोर पैनल और पार्टीशनों में तरह-तरह के सजावटी काँच का इस्तेमाल किया गया था।''[61]

नील और पारुल का पहला शारीरिक मिलन भी इसी रूप में व्यक्त किया गया है। ''वह धीमे कदमों से निकट आया। आज उनकी सुगंधि हलकी थी दिन की धूप की तरह सजग और कार्यशीलता से अनुशासित।

उस स्पर्श के स्पंदन को नील ने अपने भीतर वैसी ही महसूस किया, जैसे सोख्ते पर स्याही की बूँद फैलती जाती है।

पारुल ने तिरछी निगाह से उसे देखा वह दृष्टि कैसी थी सीने में तीर चुभोए क्रौंच पक्षी की तरह असहाय और कातर।''[62]

---

61 सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.105

62. वही, पृ.120

इसप्रकार सुरेद्र वर्मा ने अपने उपन्यासों में प्रकृति वातावरण और मौसम को अनुभूति के तहत चित्रात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है।

शब्दात्मकता

उपन्यासों का प्राण ही शब्द है। शब्दात्मकता कभी-कभी चित्रात्मकता के साथ भी दिखाई देती है। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में इस प्रकार की भाषा देख सकते हैं।

'अंधेरे से परे' में बारिश को शब्दात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है, तभी ऊँची गडगडाहट के साथ शुरुआत हुई। तेज़ तीखी खिडकी के कांच पर आवाज कुछ ऐसी थी, जैसे तिरछी बौछार नहीं एक के बाद एक मुट्ठी भर कंकड हों। छत पर भी उसी तरह की आहट थी। खिडकी के सामने आ बाहर देखने की कोशिश की। गहरे अंधेरे पर बारिश की मटमैली परत का ही आभास हुआ। फिर गडगडाहट क्रमश: मंद होते हुए दूर तक जाती और बौछार की गरज और भी तीखी होती हुई। तभी रोशनदान के किसी कोने से फर्श पर कुछ गिरने की आहट हुई जैसे काँच की गोली, जो चिकनी खनखनाहट के साथ किनारे तक फिसल गई।''[63]

''टनन् टनन्. एकदम चौंका। कान वर्षा के साथ गूंथे ठहराव के ऐसे अभ्यस्त हो चुके थे कि यह व्यतिक्रम चिंगारी की छुअन-सा अचानक बौखला गया।''[64] बारिश और फोन की घंटी का तालमेल इसके माध्यम से द्रष्टव्य है।

---

63. सुरेन्द्र वर्मा अंधेरे से परे, पृ.99
64. वही, पृ.100

'मुझे चाँद चाहिए' में वर्षा को कोयल का कूक पुकार-सा लग रहा थ।, "खाई में एक कोयल कूकी और उसकी सुरीली गूँज आसपास भर गयी। सिलबिल को लगा, जैसे यह उसकी विकराल, कुरूप ज़िन्दगी के लिए सौंदर्य के साथ एकाकार हो जाने का आह्वान है।"[65]

हर्ष और वर्षा के मन की शान्ती के वापस आये हुए एक पल में शीतलता को व्यक्त करने के लिए शब्दात्मकता को अपनाया गया है, "दूर कहीं बाँसुरी की तान उभरी-धीमी उमंग भरी। शांति में बारीक-सी सेंध लगा रही थी, पर फिर भी दृश्य का हिस्सा लगती थी।"[66]

हर्ष की मृत्यु के बाद वर्षा की मानसिकता इससे स्पष्ट है, शाम के स्तब्ध सूनेपन में सुनसान जंगल के पुल पर से रेल गुजरी। इंजन लंबी सीटी दी, जो अगले पल डिस्को की उन्मत्त लय में बदल गयी और जलते-बुझते रंगीन कुमकुमों की लहरियाँ पंक्ति शार्प फोकस में आने लगे।"[67] इसप्रकार मन की अनुभूति तथा दु:ख को शब्दों के जरिए व्यक्त करते हुए दिखाई देते हैं।

'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' में नील को प्रथम दृष्टि में नैन से प्रेम हो गया था। नैन गा रही थी। सुरों को इसप्रकार प्रकट करते हैं, "तानों के सुर उसे घेरे हुए थे। उन्होंने उसके इर्द-गिर्द फूलों की बाड-सी बना दी थी। वे उसकी चेतना पर छाए जा रहे थे। उसकी तप्त आत्मा पर गुलाब जल की तरह छिडकाव कर रहे थे। नील को ये सुर ऐसे ही प्रदीप्त लगे।

---

65. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.79
66 वही, पृ.530
67. वही, पृ.542

वे लंबे चौडे ड्राइंगरूम में भरे हुए थे, अल्हड हिरण-शावकों की तरह अठखेलियाँ कर रहे थे। मनोरम कंदुकों की तरह एक दीवार से दूसरी पर उनका नर्तन चल रहा था।''[68]

'मुझे चाँद चाहिए' उपन्यास का केन्द्रीय थीम राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय और नाटक होने के कारण बीच-बीच में विभिन्न नाटकों के संवाद और उसके परिवेश आते ही रहते हैं। फिर भी इसकी भाषा में कोई गतिरोध दिखाई नहीं देता। वरन् ये उपन्यास के स्वाभाविक विकास में सहायक भी सिद्ध होते हैं। 'सीगल' की नीना, 'अभिशप्त सौम्यमुद्रा' की सौम्यमुद्रा, 'कालिगुल' नाटक के कालिगुला जैसे पात्र उपन्यास के पात्रों के साथ आदि से अंत तक तादात्म्य स्थापित करते हुए दिखायी देते हैं। यह विशेषता सुरेन्द्र वर्मा की अभिव्यक्ति क्षमता की परिचायक ही है। यही वजह है कि उपन्यास में नाटक के संवाद और उपन्यास के प्रसंग एक दूसरे के साथ पिरोये हुए से लगते हैं,

''प्रसेनजीत: (हताश स्वर में) बेटी हर आय की अपनी अवश्यकता होती है। बचपन में तुम्हें कपोत और मृगशावक से खेलना भाता था। अब तुम्हें भावना की ऊष्मा चाहिए। सौम्यदत्ता (तनाव के साथ) तात ! मैं क्या करूँ? किसीकी दृष्टि मुझमें भावना की ऊष्मा नहीं जगाती किसी का स्वर मेरी कामना में सिहरन के तार नहीं छेडता मैं अपने आप से पूछ-पूछकर थक गयी हूँ कि मेरे भीतर ऐसा भावात्मक शून्य क्यों है ?

रात को वर्षा इधर अपने कमरे में सोच रही थी, अगर सौम्यदत्त सिर्फ सौम्या होती और प्रसेनजीत होते राजकीय पाठशाला के प्राध्यापक तो दृश्य कुछ इस तरह होता:

---

68. सुरेन्द्र वर्मा दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता, पृ.166-167

प्रसेनजीत (क्रोधित स्वर में) दुष्टे आधी रात को तेल फूंक रही है।

सौम्य (सहज स्वर से) नींद नहीं आ रही तात? तुम्हारे साथ-साथ मुझे भी अपने ब्याह की चिंता सता रही है।

प्रसेनजीत (चिढा हुआ) कल तुझे देखने कुशीनगर के लिपिक कुमार विक्रम आ रहे हैं।

सौम्या (चौंक कर) वह तो लंगडे और काने हैं।

प्रसेनजीत (चेतावनी के ढंग से) देख सौम्या, रामजी की गाय की तरह जिस खूँटे पर ले जाया जाये, चुपचाप बॉध जा।''[69]

अभिशप्त सौम्यमुद्रा का यह संवाद उपन्यास और नाटक का मिलन प्रस्तुत करता है।

'कालिगुला' की तरह हर्ष भी महत्वाकांक्षी था। 'कालिगुला' नाटक में हर्ष ने ही कालिगुला की भूमिका निभायी थी। हर्ष की मौत भी कालिगुला की तरह होती है। ''कालिगुला दो कुत्तों के बीच कुत्ते की मौत मरा था।'' चतुर्भुज ने बताया, वर्सोवा गॉव के किनारे समुद्र तटसे लगी चौपाल थी। चतुर्भुज के घर से निकलकर कहीं से ड्रग्स का जुगाड करके हर्ष यहीं आया था। उसने व्यग्रता में या जानबूझकर ओवरडोज ले

---

69. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए. पृ.31

लिया था । सुबह एक कुत्ता उसके पैरों के पास बैठा पाया गया था और दूसरा उसका मुँह चाटते हुए ''[70]

उपन्यास में बीच-बीच कालिदास की रचनाओं का उद्धरण भी पाया जाता है । उपन्यास की कथा के साथ उसका तालमेल होता है, ''रघु के सिंहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो गयी, फूलों की सुगंधि बढ गयी और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वों के गुण भी बढने लगे ।' मिस कत्याल की मैत्री वर्षा के जीवन में ऐसे ही सुखद परिवर्तन हुए ।''[71]

इसप्रकार उचित भाषा प्रयोग के जरिए उपन्यासकार पाठक को विभिन्न परिवेशों में अनायास भ्रमण करा लेते हैं। यह भाषा-प्रयोग की अद्वितीय क्षमता का परिणाम ही है।

मनुष्य की चेतना को सूक्ष्म रूप में अभिव्यक्त करने के लिए संरचना पक्ष में ध्यान देना आवश्यक है। अपनी-अपनी शैली में उपन्यास सृजन के जरिए उपन्यास जगत में अपनी एक अलग पहचान बनाने में उपन्यासकार सफल सिद्ध हुए हैं। इसप्रकार विषयवस्तु की नवीनता, वस्तुविन्यास की सरलता, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति शैली, सार्थक एवं सरल भाषा प्रयोग के जरिए सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का संरचना पक्ष भी अत्यंत नवीन निकला है। जाहिर है कि कथावस्तु एवं संरचना की दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास बिलकुल सफल तथा समसामयिक जीवन के यथार्थ का वहन करने में सक्षम निकले हैं।

---

70. सुरेन्द्र वर्मा मुझे चाँद चाहिए, पृ.546
71. वही, पृ.50

उपसंहार

उपसंहार

अपने समय से कलह करना साहित्य का फर्ज़ है। इस फर्ज़ को अपने में समाविष्ट रचना है सुरेन्द्र वर्मा की। एक रचना तभी समकालीन बनती है जब वह अपने समय के साथ के सरोकार को बनाए रखते हुए हर काल के साथ संवाद करने की क्षमता प्राप्त करती है। सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों में यह विशेषता सहज ही वर्तमान है। क्योंकि एक ओर उन्होंने रूढ़ परंपरा के विरुद्ध संघर्ष करनेवाली नारी के विद्रोही व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है। युग-युगों से शोषित- पीडित एवं उपेक्षित नारी यहाँ अपनी हैसियत को पहचान लेती ही नहीं वह उसके लिए लड़ती भी है। यह लड़ाई दरअसल स्वत्वबोध प्राप्त नारी का पुरुष वर्चस्ववादी समाज एवं सामाजिक नीतियों के खिलाफ की लड़ाई है। यह व्यक्ति के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करने तथा स्वीकृत कराने के सक्रिय संघर्ष का परिणाम है। दूसरी ओर नारी जाति के एक ऐसे वर्ग को भी प्रस्तुत किया है जो पाश्चात्य संस्कृति में डूबे हुए अपनी महान सांस्कृतिक विरासत का तिरस्कार करनेवाले हैं। ये दोनों निस्सन्देह समकालीन यथार्थ हैं।

महानगरीय परिवेश और नव उपनिवेशवादी संस्कृति की पहचान दिलाते हुए हमारी संस्कृति की गरिमा तथा अस्मिता को बनाये रखने की कोशिश उपन्यासों में विद्यमान है। परंपरा के निषेध का पूर्ण समर्थन सुरेन्द्र वर्मा ने नहीं किया है। पर ऐसी परंपरा का निषेध अवश्य कराया गया है जो व्यक्ति, समाज तथा देश के विकास में प्रगति के पथ में नाकामयाब हैं। गोया कि वर्मा जी के मान्यता यह है कि रूढ़ियों को तोडते हुए नए का वरण ही प्रगति है, इसके बिना गति असंभव है।

भाषापरक विशेषता के सन्दर्भ में उल्लेखनीय बात यह है कि किसी पात्र से उसकी भाषा को अलगाकर अध्ययन करना मुश्किल बनता है। वैसा एक अद्भुत मिश्रण हुआ है पात्र और भाषा के बीच। प्रत्येक पात्र की अपनी भाषा है जिससे उसकी चारित्रिक विशेषताएँ अनावृत हो उठती हैं। यह उपन्यासकार की भाषा-क्षमता की ओर इशारा करनेवाली है।

संक्षेप में सुरेन्द्र वर्मा एक ऐसा जागरूक कलाकार है जिन्होंने अपने समय की जटिलताओं को भलीभाँति समझकर उसके साथ सतत संघर्ष किया हैं। उनका संपूर्ण साहित्य इस संघर्ष का परिणाम है। समकालीन सन्दर्भ की विशेषता यह है कि मनुष्य आतंक की स्थिति से गुज़र रहा है। इस आतंक की स्थिति को बनानेवाले तत्व बिलकुल सूक्ष्म एवं प्रच्छन्न हैं। इन सूक्ष्म एवं प्रच्छन्न मानवशोषक तत्वों को पकड पाना सचेत कलाकार से ही संभव है। वर्माजी ने इस कार्य में अवश्य सफलता पाई है। क्योंकि उनकी रचनाएँ मानवजीवन में व्याप्त आतंक की स्थिति को चित्रित करनेवाली ही नहीं उनके खिलाफ समझौता विहीन संघर्ष करनेवाली भी हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूचि

सुरेन्द्र वर्मा की रचनाएँ

उपन्यास

1 अंधेरे से परे — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.स.1980

2. मुझे चाँद चाहिए — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, सातवाँ संस्करण 1998

3. दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प.सं.1998 पहली आवृत्ति 2000

कहानियाँ

4. कितना सुन्दर जोडा — नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं.1982.

5. प्यार कीं बातें तथा अन्य कहानियॉ — वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1999

नाटक

6. तीन नाटक — भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली,प्र.सं.1972

7 सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली,प्र.सं.1975

8. आठवाँ सर्ग — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि.नई दिल्ली, 1976

9. छोटे सैयद बडे सैयद — नाशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र.सं.1981

10. शकुतला की अंगूठी — नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र.सं.1990

11, कैद-ए-हयात — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली,प्र.सं.1993

एकांकी

12. नींद क्यों रात भर नहीं आती — राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., दिल्ली, प.सं.1976
चौथी आवृत्ति 1998

व्यंग्य

13. जहाँ बारिश न हो — नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली,प्र.सं.1980

संदर्भ ग्रन्थ

14. अधूरे साक्षात्कार — नेमीचन्द्र जैन
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वि.सं.1989

15. आज का हिन्दी उपन्यास — इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966

16. आज का हिन्दी साहित्य — प्रकाशचन्द्र गुप्त
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली,प्र.सं.1966

17 आज का साहित्य संवेदना-दृष्टि — रामदरश मिश्र
अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं.1975

18. आज की राजनीति और भ्रष्टाचार — नरेन्द्र मोहन
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, सं.1997

19. आधुनिक बोध आधुनिकता पर संकलित निबन्ध — रामधारी सिंह दिनकर
पंजाबी पुस्तक भण्डार, दिल्ली, सं.1973

20. आधुनिक हिन्दी उपन्यास — संपादक नरेन्द्र मोहन
मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि., दिल्ली,
प्र.सं.1975

21 आधुनिक हिन्दी नाटक और रंगमंच — नेमीचन्द जैन

22. आधुनिक हिन्दी साहित्य — सच्चिदानन्द वात्यायन
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, प्र.सं.1976

23. आधुनिक हिन्दी साहित्य मूल्य और मूल्यांकन — निर्मला जैन
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1980

24. आधुनिक हिन्दी उपन्यास सृजन और आलोचना — चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र.सं.1985

25. आधुनिकता और समकालीन रचना सन्दर्भ — डॉ.नरेन्द्र मोहन
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1973

26. आधुनिकता और सृजनात्मक साहित्य — इन्द्रनाथ मदान
राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली, संस्करण 1978

27 आधुनिकता और हिन्दी साहित्य — इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.1973.

28. आधुनिकता का उत्तरोत्तर — कैलाश वाजपेयी
सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प.सं. 1999

29. आधुनिकता के पहलू — डॉ. विपिन कुमार अग्रवाल
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1972

30. आधुनिकता के प्रतिरूप — धनंजय वर्मा
विद्या प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, प्र.सं.1986

31 आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय — धनंजय वर्मा
विद्या प्रकाशन मन्दिर, निल्ली, प्र.सं.1984

32. आलोचना की छवियाँ — ज्योतिष जोशी
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.1996

33. उपन्यास का पुनर्जन्म — परमानन्द श्रीवास्तव
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1995

34. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा — डाँ. परमानन्द श्रीवास्तव
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं.1976

35. उपन्यास की शर्त — जगदीश नारायण श्रीवास्तव
किताब घर, नई दिल्ली, प्र.सं.1993

36. उपन्यास स्वरूप और संवेदना — राजेन्द्र यादव
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.1997

37 उपन्यास स्थिति और गति — डॉ.चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1993

38. औपनिवेशिक भारत में सांस्कृतिक और विचारात्मक संघर्ष के.एन. पणिक्कर
ग्रथ शिल्पी प्रा.लि. दिल्ली, प्र.सं.2003

39. औरत के हक में तस्लीमा नसरीन
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.1994

40. काम, प्रेम और परिवार जैनेन्द्र कुमार

41 कुछ विचार प्रेमचन्द
सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1939

42. गद्य के प्रतिमान विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1996

43. दलित चेतना और समकालीन डॉ.मुन्ना तिवारी
संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, प्र.सं.2001

44. दलित चेतना साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार रमणिका गुप्ता
समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, सं.सन् 2001.

45. द्वितीय महायद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

46. नयी कहानी की भूमिका कमलेश्वर
शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, सं.1978

47 नये उपन्यासों में नये प्रयोग डॉ. दंगल झाल्टे
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं.1994.

48. नारीवादी विमर्श — राकेश कुमार
आधार प्रकाशन, हरियाणा,प्र.सं.2001

49. नारी : ोषण आइने और आयाम — आशाराणी व्होरा
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, द्वि.सं.1996.

50. प्रेमच·द की विरासत और अन्य निबन्ध — राजेन्द्र यादव
अक्षरा प्रकाशन, सं.1978

51 फ्रीजर में लगे संबन्ध श्रेष्ठ सचेतन कहानियाँ कुलदीप बग्गा

52. बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध हिन्दी कहानी नरेन्द्र मोहन
कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1996

53. भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार आशारानी व्होरा

54. भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद — बिपनचंद्र
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, दिल्ली,
प्र.सं.1996

55. भूमण्डलीकरण की चुनौतियाँ — सच्चिदानन्द सिन्हा
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2003

56. मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास भूपसिंह भूपेन्द्र
श्याम प्रकाशन, जयपुर, सं.1987

57 रचना और आलोचना — देवीशंकर अवस्थी
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1995

58. विद्रोह और साहित्य — संपादक नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर
साहित्य भारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1974.

59 शास्त्रीय आलोचना से विदाई — डॉ.नरेन्द्र मोहन
प्रतिमान प्रकाशन, दिल्ली, सं.1991

60. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ — अशोक हजारे, डॉ.माधव सोनटक्के
विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं.1988

61 समकालीन की पहचान — डॉ.नरेन्द्र मोहन
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1987

62. समकालीन भारतीय कविता और स्त्री। - के. सच्चिन्दानन्द

63. समकालीन साहित्य एक नयीदृष्टि — इन्द्रनाथ महान
लिपि प्रकाशन, दिल्ली।

64. समकालीन साहित्य चिंतन — डॉ. रामदरश, डॉ.महीप सिंह
ज्ञान गंगा प्र. दिल्ली, सं.1955.

65. समका ीन साहित्य समीक्षा अपनी शताब्दी के नाम — डॉ.चन्द्रभान रावत
एवं रामकुमार खण्डेलवाल।

66. समका ीन सिद्धांत और साहित्य — डॉ. विश्वंभर नाथ उपाध्याय
माकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, सं.1976

67 समकालीन हिन्दी उपन्यास — डॉ. विवेकी राय
राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र,सं.1987

68. समकालीन हिन्दी उपन्यास की आधुनिका — डॉ. प्रतिभा पाठक
हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली, सं.1992

69. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका — डॉ. रणवीर रांग्र
जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली, सं.1986

70. समकालीन हिन्दी नाटककार — गिरीश रस्तोगी
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, सं.1982

71 समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच — जयदेव तनेजा
तक्षशिला प्रकाशन,नई दिल्ली, 1978

72. समकालीन हिन्दी नाटक चेतना के आयाम — सरला गुप्ता भूपेन्द्र
पंचशील, जयपुर,1987

73. समकालीन हिन्दी साहित्य विविध परिदृश्य — डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1995

74. स्त्री उपेक्षिता सीमोन द बोउवार — प्रस्तुती डॉ.प्रभा खेतान

75. साठोत्तर हिन्दी उपन्यास बदलता व्यक्ति — ममता

76. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना — डॉ.जितेन्द्र 'वत्स'
साहित्य रत्नाकर, कानपुर, प्र.सं.1989

77 स्वातंत्र्य-पूर्व के हिन्दी-उपन्यास — कान्ती वर्मा
रामचन्द्र पाण्डे कंपनी, दिल्ली।

78. हिन्दी उपन्यास उपलब्धियाँ — डॉ.लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.1970.

79. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा — रामदरश मिश्र
राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पुनर्मुद्रित सं.1992

80. हिन्दी उपन्यास का विकास- — मधुरेश
सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.1998

81 हिन्दी उपन्यास का पुनरावतरण — धनंजय वर्मा
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.2003

82. हिन्दी उपन्यास की दिशाएँ — डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
गोविन्द प्रकाशन,मधुरा,प्र.सं.2003

83. हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण — बिन्दु अग्रवाल
राधाकृष्ण प्रकाशन प्र.लि. दिल्ली, सं.1968

84. हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श — डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी

85. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक — जयश्री बरहटे,
संचयन, कानपूर, प्र.सं.1988

86. हिन्दी उपन्यास सार्थक की पहचान — मधुरेश
सवराज प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.2002

87 हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धांत — नरेन्द्र कोहली
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र,सं.1989

88. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना — डॉ. सुरेश सिन्हा
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.1964

89. हिन्दी उपन्यासों में रूढिमुक्त नारी — राजरानी शर्मा
अग्रवाल साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, प्र.सं.1989

90. हिन्दी कथा साहित्य-समकालीन संदर्भ — डॉ. ज्ञान अस्थाना
जवाहर पुस्तकालय, नयी दिल्ली, प्र.सं.1981

91 हिन्दी साहित्य का इतिहास — आ.रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा, काशि.

92. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास — डा.बच्चन सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सं.1996

93. हिन्दी साहित्य गतिविधि और उपलब्धियाँ हिन्दी उपन्यास पचास के बाद
संपादक निर्मला जैन, नित्यानंद तिवारी
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं.1987

94. हिन्दी साहित्य संवेदना का विकास — रामस्वरूप चतुर्वेदी
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

ENGLISH REFERANCE BOOK

95 The myth of sysyphus — Albert Camus

MALAYALAM REFERANCE BOOK

96. Feminism — Jancy James
Kerala Bhasha Institute, Thiruvananthapuram, 2000

97 Nava Sidhanthangal – I Utharadhunikatha - C.B. Sudhakaran
D.C. Books, Thrissur

98. Nava Sidhanthangal – II Vimarshanatmaka Sidhantham - V.C. Shreejan
D.C Books, Thrissur, 1999

99 Nava Sidhanthangal – 4 Sthree Vadam — K. .Devika

100. Sthree Sahitya Pravarthaka Sahakarana Sangham

101. Sthree; Sthree vadam, Sthree Vimochanam .K. Saradamani
D.C Books, Thrissur, 1999.

पत्र-पत्रिकाएँ

1. आजकल जून 1976
2. आलोचना अंक 76 मार्च 1986
3. आलोचना सहस्राब्दी अंक एक 2000 अप्रैल-जून
4. अक्षरा अक्टूबर-दिसंबर 2000
5. गगनांचल वर्ष 24, अंक 4, अक्तूबर-दिसम्बर 2001
6. दस्तावेज जुलाई-सितम्बर 1999
7 नया प्रतीक अक्टूबर 1970
8. नया प्रतीक नवम्बर दिसम्बर 1978
9 नया ज्ञानोदय सितम्बर 2004
10. हंस जून 1998
11 हंस जनवरी 2001